'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार-परम्परा का विवेचनात्मक अनुशीलन'

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी
की
पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध
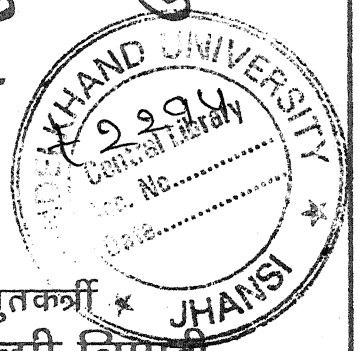
शोध-पर्यवेक्षक-
डॉ०देवलाल मौर्य
वरिष्ठ रीडर,
हिन्दी-विभाग,
पं०जवाहरलाल नेहरू
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)

प्रस्तुतकर्त्री
शिल्पी त्रिपाठी
शोध-छात्रा,
हिन्दी-विभाग,
पं०जवाहरलाल नेहरू
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)

हिन्दी-विभाग
कला-संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)
वसन्त-पंचमी-2007

प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार-परम्परा का विवेचनात्मक अनुशीलन' शोध-छात्रा शिल्पी त्रिपाठी का निजी एवं मौलिक प्रयास है । यह शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में सम्पन्न हुआ है । इसमें मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार-परम्परा के सन्दर्भ में उपलब्ध तथ्यों पर अभिनव प्रकाश डाला गया है । शोध-छात्रा ने अत्यन्त श्रम, निष्ठा एवं अनवरत अध्ययन प्रवृत्ति के साथ प्रस्तुत शोध कार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न किया है जोकि सर्वथा उपयुक्त और समीचीन है । इन्होने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय परिनियमावली द्वारा वांछित अवधि तक कार्य करने के साथ-2 विभाग में निर्धारित उपस्थिति भी दी है ।

शोध-पर्यवेक्षक

डॉ0 देवलाल मौर्य

वरिष्ठ रीडर,

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,

दि0-7.2.07........

पं0जवाहरलाल नेहरू पी0जी0कालेज, बाँदा (उ0प्र0)

आमुख

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के प्रारम्भ में अपने विनम्र हृदयोद्गार व्यक्त करते हुये मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है । प्रारम्भ से ही हिन्दी और संस्कृत–साहित्य के अध्ययन के प्रति मेरी विशेष रूचि रही है । जिसके फलस्वरूप मुझे हिन्दी और संस्कृत दोनों ही विषयों में स्नातकोत्तर परीक्षायें उत्तीर्ण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था । उभय–विषयों के तुलनात्मक अध्ययन से मुझे यह प्रतीति हुई है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के गुम्फन में पूर्ववर्ती संस्कृत–साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । जिस प्रकार प्रत्येक नया चिन्तन अपने पूर्ववर्ती चिन्तनों से प्रभावित होता है उसी प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य भी अपने पूर्ववर्ती पुराण–साहित्य से पूर्णतया प्रभावित है । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के अध्ययन के अवसर पर मुझे उसमें पुराण साहित्य में वर्णित अवतारवाद का प्रतिबिम्ब परिलक्षित हुआ है । अन्य विषयों के अतिरिक्त पुराण की प्रमुख प्रतिपाद्य विषय–वस्तु अवतारवाद है जिसकी छाया मध्यकालीन हिन्दी–साहित्य में अनुभव की जा सकती है । दोनों में इस साम्य को देख कर ही मेरे मन में इस विषय पर अग्रेतर शोधात्मक और विवेचनात्मक अध्ययन करने की तीव्र इच्छा का उदय हुआ है । उक्त विषयक अध्ययन के प्रति मेरी रूचि को देख कर गुरूवर्य डॉ0 देवलाल मौर्य वरिष्ठ रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी–विभाग, पं0 जवाहर लाल नेहरू पी0जी0 कालेज, ने मुझे 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार परम्परा' विषय पर शोधात्मक अध्ययन हेतु अपनी कृपापूर्ण अनुमति और सहमति प्रदान की है । यह शोध–प्रबन्ध उनकी कृपा और सत्प्रेरणा का ही सुपरिणाम है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध डॉ0 देव लाल मौर्य, वरिष्ठ रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी–विभाग पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बांदा के विद्वत्ता–पूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । वे प्राच्य विद्या–विशारद और हिन्दी साहित्य के उद्भट विद्वान् हैं । उनका विद्वत्तापूर्ण निर्देशन मेरे लिये गौरव की बात है । उन्होंने समय–समय पर कृपा पूर्वक शोध–कार्य सम्बन्धी अपना दिशा–निर्देश देकर मुझे उपकृत और अनुगृहीत किया है । उनके आशीर्वाद से इस शोध–प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करने का शुभ–अवसर अब मुझे हस्तगत हुआ है ।

भारतवर्ष के मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद एक शक्तिशाली प्रेरक तत्व के रूप में काम करता रहा है । इस लिये इस महत्वपूर्ण विषय पर अनेक विद्वानों ने अपनी भिन्न–भिन्न दृष्टियों से अपने विचार व्यक्त किये हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भ्रमर गीत–सार' की भूमिका तथा सूर और तुलसी साहित्य पर लिखित कतिपय निबन्धों में अवतारवाद के सामाजिक व लोकपरक रूपों से परिचित कराया है । इसी प्रकार डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थों 'मध्यकालीन–धर्म–साधना', 'नाथ–सम्प्रदाय', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' आदि ग्रन्थों में अवतारवाद के विभिन्न तथ्यों पर प्रकाश डाला है । इनके अतिरिक्त डॉ0 बड़थ्वाल, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ0 दीन दयाल गुप्त, डॉ0 माता प्रसाद गुप्त और डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानों ने अपने निबन्धों और लेखों में अवतारवाद विषय पर अपने अपने स्फुट विचार व्यक्त किये हैं । उक्त विद्वानों के चिन्तन और गुरूगहन विचार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के गुम्फन में मुझे 'कृतवाग्द्वार' की तरह प्रतीत होते हैं

यद्यपि उनके उक्त अध्ययन से अवतारवाद के कतिपय उपादानों पर प्रकाश पड़ता है किन्तु मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार–परम्परा के सन्दर्भ में समन्वित रूप का अध्ययन अब भी अपेक्षित रह जाता है । मुझे विश्वास है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार परम्परा के सन्दर्भ में सम्पन्न यह समन्वित और समाहारात्मक शोध कार्य इस क्षेत्र में अग्रेतर अध्ययन करने वाले परवर्ती अनुसन्धित्सु छात्रों के लिये रोचक और उपादेय सिद्ध हो सकेगा ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय प्रस्तावना परक है जिसके अन्तर्गत अवतार शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, और उसके प्रथम प्रयोग पर चर्चा की गई है । ऋग्वेद में अवतार शब्द का प्रथम प्रयोग हुआ है तथा इसके अध्ययन से यह भी विदित होता है कि अवतारवाद के बीज वैदिक साहित्य में विद्यमान है । अवतारवाद के संकेत की प्रतीति न केवल ब्राह्मण ग्रन्थों बल्कि उपनिषद् ग्रन्थों से भी होती है । इस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि महाकाव्य काल रामायण और महाभारत में अवतारवाद का पल्लवित रूप देखने को मिलता है । अष्टादश पुराण तो अवतारवाद की धुरी पर ही घूम रहे हैं । अवतार का प्रयोजन, सज्जनों का परित्राण, दुष्टजनों का विनाश, धर्म की स्थापना इत्यादि रहा है । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इसी प्रयोजन को शब्दान्तरों में व्यक्त किया गया है । रामायण में अवतारवाद तथा अवतार के प्रयोजनों का सुस्पष्ट परिचय मिलता है । जहां विष्णु श्री राम के रूप में अवतरित होते हैं । इसी प्रकार महाभारत में भी अवतारवाद और उसके प्रयोजन सुपष्ट रूप से व्यक्त किये गये हैं । गीता में अवतारवाद का विशिष्ट रूप देखने को मिलता हैं । पुराणों में

भागवत पुराण में अवतार की संख्याओं का निर्देश किया गया है । किन्तु मुख्य रूप से दशावतार ही परवर्ती साहित्य में स्थान पा सके हैं । गोस्वामी तुलसीदास ने दशावतारों में प्रमुख अवतार श्रीरामावतार की कथा का अपने महाकाव्य रामचरित–मानस में वर्णन किया है और रामावतार की कथा को 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' कहा है ।

द्वितीय अध्याय में पूर्व मध्यकाल में प्राप्त नाथ–साहित्य में विद्यमान अवतार भावना का वर्णन किया गया है । जिसके अनुसार नाथ साहित्य के प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाथ और गोरखनाथ को शिव का अवतार बतलाया गया है । नाथ सम्प्रदाय में नौ नाथों का वर्णन प्राप्त होता है । जो सभी शिव के अवतार माने जाते हैं । इनके अवतार का प्रयोजन योग साधना का प्रचार और प्रसार भी बतलाया गया है । नाथ सम्प्रदाय में शिव और शक्ति के अटूट सम्बन्धों की चर्चा की गयी है और शक्ति में भी अवतारत्व की भावना के उदय पर प्रकाश डाला गया है । इसके अनन्तर इसी अध्याय में द्रुततर गति से संक्षेप में यह भी बतलाया गया है कि बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य में भी अवतारवाद की प्रबल भावना विद्यमान रही है । जिसके अनुसार महात्मा बुद्ध तथा जैन तीर्थकरों को अवतारी माना जाता रहा है । इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि वैदिक वांङ्मय से उद्भुत अवतारवाद का यह गंगाप्रवाह नाथ साहित्य, बौद्ध और जैन साहित्य को संस्पर्श करता हुआ परवर्ती मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को आप्लावित करने के लिये अग्रसर है । यह अध्याय प्रस्तावना की उत्तरपीठिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

तृतीय अध्याय में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार—परम्परा के सम्बन्ध में यह बतलाया गया है कि इस परम्परा का प्रारम्भ महाभारत और पुराण साहित्य में मिलता है जिसके अनुसार मत्स्य, कूर्म इत्यादि दस अवतारों का परिगणन प्राप्त होता है और इस सम्बन्ध में भी मत—मतान्तर देखे जा सकते हैं । इनकी क्रमबद्धता भी विवादास्पद है फिर भी मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतारों का क्रम बाद में रूढ़िबद्ध हो गया था और इसी क्रम में देवगढ़ में निर्मित दशावतार मंदिर की मूर्तियों के गुप्त काल के निकटवर्ती काल में प्रतिष्ठित होने की बात का उल्लेख भी किया गया है । यह भी बतलाया गया है कि क्षेमेन्द्र और गीतगोविन्दकार जयदेव के समय में दशावतारों की समाज में व्याप्ति हो गयी थी ।

प्रस्तुत अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और संत साहित्य में पूर्ववर्ती दशावतार परम्परा के वर्णन अधिकाधिक मिलते हैं । तदनुसार पृथ्वीराज रासो काव्य में दशावतारों का मधुर वर्णन मिलता है तथा उसमें राधा कृष्ण के श्रृंगारी रूप के माधुर्य का चित्रण भी किया गया है । इसके अतिरिक्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के निर्गुण संतों के पदों में भी दशावतारो के प्रासंगिक और आनुषंगिक वर्णन प्राप्त होते हैं । निर्गुण शाखा के प्रमुख संत—कवि कबीर दास यद्यपि दशावतारों का खंड्डन करते हैं और दशावतारों की सम्पूर्ण सृष्टि को माया की रचना बतलाते हैं । किन्तु उनके इस खंड़न और दशावतार सम्बन्धी आलोचना से तत्कालीन समाज में दशावतारों की उपासना के व्यापक प्रचार

और प्रसार होने की बात का पता चलता है । प्रस्तुत अध्याय में गुरू ग्रन्थ साहिब, सत्रहवीं शताब्दी के कवि मयूर भट्ट विरचित धर्म–पुराण, मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति, भक्त कवि चण्डीदास आदि की कृतियों में दशावतार सम्बन्धी सुमधुर वर्णन उपलब्ध होने का वर्णन किया गया है ।

इस में यह भी बतलाया गया है कि कविवर सूरदास विरचित सूरसागर और सूरसारावली इत्यादि ग्रन्थों में दशावतारों का क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त होता है । फिर भी सूरदास ने दशावतारों में कृष्णावतार के वर्णन में अपना ध्यान अधिक लगाया । इसी प्रकार रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने भी अपने काव्यों में दशावतारों के वर्णन किये हैं । फिर भी इन्होंने रामावतार के वर्णन में अपना ध्यान प्रमुख रूप से केन्द्रित किया है । इसी प्रकार कविवर केशवदास ने भी दशावतारों का सुमधुर वर्णन किया है । अवतार का प्रयोजन दुष्ट–दलन और भू–भार हरण बतलाया गया है । भक्त कवि कन्धर दास, सुकवि चन्द्रवरदाई और ठाकुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पं0 तथा अन्य सन्त कवियों के ग्रन्थों में दशावतार परम्परा के अविछिन्न वर्णन प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत अध्याय में सामूहिक अवतार की बात का भी उल्लेख किया गया है । जिसके अनुसार राम और कृष्ण अवतारों की सहायता के लिये अनेक देवगण सामूहिक रूप से अवतार ग्रहण करते हैं । इससे यह प्रतीत होता है कि दशावतार सन्दर्भित अवतारवाद हमारी भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व रहा है । जिससे आज भी मध्यकालीन हिन्दी साहित्य जीवन्त बना हुआ है । इस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि दशावतारों के सुन्दर वर्णनों के कारण समाज में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठा

कोटि–कोटि जनों के मध्य आज भी बनी हुई है ।

चतुर्थ अध्याय में मध्यकालीन संत साहित्य में अवतारत्व की बात का दिग्दर्शन कराया गया है । इस संत साहित्य में उत्क्रमणवाद की प्रवृत्ति दिखायी देती है । जिसके अनुसार मनुष्य ही उत्कृष्ट कर्म करते–करते अपने उर्ध्वगामी गुणों के कारण एकेश्वरवादी ईश्वर के समान उसका पर्याय बन जाता है । संतों के अनुसार मनुष्यों के मनुष्यत्व का विकास उसके चरम उत्कर्ष में दिखायी देता है । जब वह पूर्ण ईश्वर या उपास्य के समान प्रतीत होने लगता है । मध्यकालीन संतों की यह अवधारणा दशावतार सन्दर्भित अवतारवाद से भिन्न प्रतीत नहीं होती । महापुरूषों में अवतारत्व का विकास उनमें निहित कतिपय उर्ध्वगामी और उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण ही होता है । जिसके कारण समाज में मनुष्य की देवत्व के रूप में प्रतिष्ठा हो जाती है । इसी लिये सृष्टि में मानव देह दुर्लभ कहा जाता है । साधना के फलस्वरूप जो पद मनुष्य प्राप्त करता है वह देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते । मध्यकालीन संतों के संत भाव में ब्रह्म और ईश्वर के दर्शन होते थे । कबीर दास ऐसे सन्तों को राम से अभिन्न मानते हैं और संतों को प्रत्यक्ष देवता के रूप में स्वीकार करते हैं । अपने उर्ध्वगामी गुणों के कारण गुरूवर नानक, कबीरदास और दादूदयाल इत्यादि संत ईश्वर के अवतार के रूप में पूजे जाते रहे हैं । इस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि ईश्वर के अवतार की भांति संतों के अवतार का भी प्रयोजन समाज का मंगल सम्पादन और उद्धार कार्य रहा है ।

पंचम अध्याय में दशावतार सन्दर्भित अवतारवाद के विविध

रूपों पर विचार किया गया है । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवतारवाद के जिन विविध रूपों की अभिव्यक्ति हुई है । वह प्राचीन साहित्य का ही परिवर्तित और परिवर्धित रूप है । इसके अन्तर्गत अंशावतार, कलावतार, विभूति अवतार, युगला अवतार, रसावतार, लीलावतार, पूर्णावतार, और अर्चाअवतार इत्यादि विविध अवतारों की चर्चा की गयी है । इस अध्याय के अन्तर्गत मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कवियों के अनुसार उनके विविध अवतारों से सम्बन्धित मधुर वर्णनों का सार संक्षेप प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के अनुसार दशावतारों का परिगणन और निरूपण प्रस्तुत किया गया है । इसमें यह बतलाया गया है कि प्राया सभी सन्त कवि और भक्तगण दशावतार परम्परा को ही प्रमुखता देते हैं । दशावतारों के क्रम के अनुसार 1– मत्स्य 2– वराह 3– कूर्म 4– नृसिंह 5– वामन 6– परशुराम 7– राम 8– कृष्ण 9– बुद्ध 10– कल्कि आदि का चित्रण किया गया है । यह भी बतलाया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कवियों ने अपनी कृतियों में दशावतारों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत किया है । इस अध्याय में अवतार प्रयोजन की भी चर्चा की गयी है। इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतारों के बहुविध काव्यात्मक मधुर वर्णन मिलते हैं ।

शोध प्रबन्ध का सप्तम अध्याय उपसंहारात्मक है जिसमें दशावतार सम्बन्धी निष्कर्ष का सार संक्षेप प्रस्तुत किया गया है । इसमें यह बतलाया गया है कि दशावतार सन्दर्भित अवतारवाद भारतीय संस्कृति का न केवल हृदय प्रदेश है अपितु वह उसका प्राण तत्व भी है । इसी प्राण तत्व

के कारण ही भारतीय संस्कृति आज भी जीवन्त बनी हुई है । और निरन्तर पल्लवित एवं पुष्पित हो रही है । आज भी देवमन्दिरों में विद्यमान दशावतारों की मूर्तियां प्रतिष्ठित है और समाज का संताप हरण कर रही है । दशावतारों में विशेष रूप से श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्ध आज भी विशेष रूप से वन्दनीय और पूजनीय बने हुये हैं । दशावतार के विभिन्न आयामों के अतिरिक्त इस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि इन अवतारों में विकासवाद का सिद्धान्त दिखायी देता है । मानव के विकास में प्राणियों की मुख्य आठ दशाओं में मत्स्यावतार प्रथम, कूर्मावतार द्वितीय, वराहावतार तृतीय, नृसिंहावतार चतुर्थ, वामनावतार पंचम, परशुरामवतार षष्ठ, रामावतार सप्तम और कृष्णावतार में अष्टम मानव दशा का विकास दिखायी देता है । इसलिये विकासवाद का सिद्धान्त पाश्चात्य विद्वानों की देन नही है । इसके बीज उपर्युक्त दशावतारों में खोजे जा सकते हैं । अन्त में यह बतलाया गया है कि आज भी देश भारत में आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये, दुष्टजनों के संहार के लिये, सज्जनों के परित्राण के लिये, अशान्ति की इस आंधी को रोकने के लिये और सर्वोपरि राष्ट्र राज्य की सम्पूर्ण रक्षा के लिये आज भी किसी विशिष्ट अवतार की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

आभार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध आदरणीय गुरुवर्य डॉ0 देवलाल मौर्य, वरिष्ठ रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, पं0 जवाहरलाल नेहरू पी0जी0कॉलेज, बाँदा के वैदुष्यपूर्ण गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । वे हिन्दी–विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की आचार्य–परम्परा में दीक्षित विद्वान् हैं । उनका आशीर्वचन और पथ–प्रदर्शन इस शोध–प्रबन्ध की पूर्ति में मेरा सबल, सम्बल रहा है । मैं हृदय से उनका आभार व्यक्त करती हूँ । मैं अपने आदरणीय पिता डॉ0 आर0ए0त्रिपाठी, निवर्तमान संस्कृत विभागाध्यक्ष, पं0 जवाहरलाल नेहरू पी0जी0कालेज, बाँदा का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी प्रेरणा और आशीर्वाद मुझे इस शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में निरन्तर मिलता रहा । यह शोध–प्रबन्ध जो आज अपने इस रूप में आप सबके सामने है मैं इसे गुरुजनों की महती अनुकम्पा का ही सुपरिणाम समझती हूँ ।

पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा के हिन्दी विभाग के आचार्यगण डॉ0 राम गोपाल गुप्त, डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', डॉ0 ज्ञान प्रकाश तिवारी, डॉ0 श्रीमती मनोरमा अग्रवाल, डॉ0 अश्विनी कुमार शुक्ला एवं डॉ0 श्रीमती सुमन सिंह का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होने अपने विचारों और आशीर्वाद से मुझे बहुत उपकृत किया ।

पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा के प्राचार्य डॉ0 नन्दलाल शुक्ल एवं श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय, पुस्तकालयाध्यक्ष का भी आभार व्यक्त कर रही हूँ जिन्होने मुझे इस शोध कार्य के लिए महाविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त दुर्लभ ग्रन्थों, पाण्डुलिपियों और शोध–पत्र, पत्रिकाओं

के पढ़ने का सुअवसर प्रदान किया है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक विघ्न–बाधाओं का सामना करना पड़ा है और उनसे जो मैं पार लग सकी हूँ, इसे मैं अपने स्वजनों, गुरुजनों, शुभ–चिन्तकों और विद्वज्जनों के आशीर्वाद और शुभकामना का ही सुपरिणाम समझती हूँ ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में पूर्व के अनेक विद्वज्जनों और मनीषियों के ग्रन्थों, लेखों, चिन्तनों और अनेकानेक शोध–पत्र, पत्रिकाओं से सहायता ली गई है । उन सभी विद्वानों के प्रति मैं नतमस्तक हूँ और अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । जिस प्रकार छोटी–2 नदियाँ महानदी गंगा से मिलकर अपने लक्ष्य समुद्र तक की यात्रा पूरी कर लेती हैं उसी प्रकार महापुरुषों और आदरणीय गुरुजनों की शुभकामनाओं से मुझ जैसे छोटे लोग भी सफल हो जाते हैं । फलस्वरूप गुरुजनों का शुभाशीर्वाद ही मेरे इस शोध कार्य को सफल बनाने का मुझे प्रथम और सुगम साधन सोपान प्रतीत होता है । द्रुतगति से टंकित इस शोध–प्रबन्ध में कतिपय त्रुटियां और अशुद्धियां सम्भावित हैं तदर्थ अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक विनयावनत होते हुये मैं क्षमा–प्रार्थिनी हूँ ।

अन्त में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रेरणा–स्रोत जगदीश्वर विष्णु के दशावतारों का मधुर नाम स्मरण कर सम्प्रति आत्मिक सुख का अनुभव करती हूँ ।

मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरुषहरिवपुर्वामनो जामदग्न्यः ।
काकुत्स्थः कंसहन्ता सच सुगत–'मुनिः कल्किनामा च विष्णुः ।।

शोधकर्त्री

शिल्पी त्रिपाठी

शिल्पी त्रिपाठी

हिन्दी विभाग
पं0जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ0प्र0)।

विषयानुक्रम

विषयानुक्रम

तृतीय अध्याय –

चतुर्थ अध्याय –

अध्याय –

अध्याय –

प्रथम अध्याय
प्रस्तावना
विषय-प्रवेश

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश – प्रस्तावना

अवतार शब्द, व्युत्पत्ति :-

महावैयाकरण आचार्य-प्रवर ''पाणिनि के अनुसार'' 'अव' उपसर्ग पूर्वक तृतरणे' धातु से 'धञ्' प्रत्यय होने पर 'अवतार' शब्द की रचना होती है और उन्होंने इसके उदाहरण के लिये 'अवतारः कूपादेः' कहा है । यहां पर इसका अर्थ कूपादि में उतरना है । इससे स्पष्ट है कि पाणिनि के काल में अवतार शब्द का प्रयोग अवतरण या उतरने के अर्थ में होता रहा है ।[1] इतिहासकारों के अनुसार पाणिनि का रचनाकाल ईसापूर्व सप्तम शताब्दी के लगभग है ।[2] पाणिनीय अष्टाध्यायी के परवर्ती भाष्यकारों और टीका–कारों ने भी पाणिनि के पूर्वोक्त उदाहरण को ही बार–बार प्रस्तुत किया है । इन व्याख्याकारों ने अवतार शब्द का कोई नवीन अर्थ नहीं बतलाया है । परन्तु 'हिन्दी-विश्व-कोषकार' श्री नगेन्द्र-नाथ बसु ने अवतार शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनीय सूत्र के आधार पर बतलाते हुये इस शब्द के अनेक अर्थ बतलायें हैं । इनके कथनानुसार ऊपर से नीचे आना, उतरना, पार होना शरीर धारण करना, जन्म ग्रहण करना, प्रतिकृति, प्रादुर्भाव, अवतरण और अंशोद्भव के लिये अवतार शब्द का प्रयोग होता रहा है ।[3] अवतार शब्द के पर्याय के रूप में इन शब्दों के प्रयोग विभिन्न ग्रन्थों में यत्र–तत्र उपलब्ध होते हैं ।

अवतार शब्द का प्रथम प्रयोग एवं अर्थ :-

वैदिक साहित्य में यद्यपि अवतार शब्द का स्पष्ट प्रयोग नहीं

मिलता, किन्तु 'अव+तृ' से बनने वाले अवतारी और अवतर शब्दों के प्रयोग वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं । ऋग्वेद संहिता 6.25.2 में अवतारी शब्द का प्रयोग हुआ है ।[4] आचार्य 'सायण' के अनुसार इस मंत्र का अर्थ है, 'हे इन्द्र ! तुम इन मेरी स्तुतियों से शत्रु सेनाओं की हिंसा करती हुई हमारी सेना की रक्षा करों और शत्रु के कोप को नष्ट कर दो । इन स्तुतियों से ही यज्ञादि कर्म के लिये पूजन करने वालों को अन्तराय, विघ्न और संकट से पार कर दो । सायण ने इस मंत्र में प्रयुक्त अवतारी शब्द का तात्पर्य अन्तराय, विघ्न या संकट से लिया है। जो यज्ञादि कर्म के लिये जतन करने वालों को अन्तराय से पार करना है ।[5] उक्त अर्थ के अनुसार विष्णु के परवर्ती अवतार कार्य से इस शब्द का कुछ साम्य दिखायी पड़ता हैं क्योंकि विष्णु का अवतार ही संकट से मुक्त करने के लिये होता रहा है । अतः इस शब्द के तात्पर्य के अनुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि इन्द्र जिस प्रकार यज्ञादि कर्म करने वाले यजमानों का विघ्न नष्ट करता रहा है । बाद में इस कार्य को विष्णु ने किया । सम्भवतः इसीलिये उनके मानव रूप को अवतार कहा गया है । अवतार–वाद के मुख्य प्रयोजनों में रक्षा भी एक प्रयोजन रहा है । सायण चौदहवीं शताब्दी में हुये थे और मध्यकालीन अवतारवाद से भी वे अवश्य परिचित रहे होगें ।

शुक्ल– यजुर्वेद 17.6 में 'अवतर' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[6] इस मंत्र में प्रयुक्त 'अवतर' शब्द का अर्थ 'उतरने' के अर्थ में हुआ है । अंग्रेजी टीकाकार 'ग्रिफिथ' ने 'अवतर' का अर्थ उतरना किया है । 'अवतर' से 'अवतार'

का विकास हुआ है । 'अवतारवादी साहित्य' में 'अवतार' शब्द का अर्थ अन्य अर्थो के अतिरिक्त 'उतरना' किया जाता रहा है ।

इस परिशीलन से यह विदित हो जाता है कि मध्यकालीन या आधुनिक भाष्यकारों अथवा टीकाकारों के अनुसार 'अवतारी' और 'अवतर' वैदिक शब्दों के 'अवतार' परक अर्थ किये जा सकते हैं । किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि 'अवतारी' और 'अवतर' शब्द वैदिक काल के व्यापक और अधिक प्रचलित शब्द में नहीं है । किन्तु फिर भी 'अवतारवाद' का बीज खोजने पर वैदिक–ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से मिल जाते हैं और यह ऋग्वेद संहिता के मंत्रों में उपलब्ध होता है । अवतार का सम्बन्ध पुनर्जन्मवाद के साथ घनिष्ठ रूप से माना जाता है और विद्वानों के अनुसार पुनर्जन्म अथवा आत्मा के संसरण के सिद्धान्त ऋग्वेद के मंत्रों में यत्र–तत्र पाये जाते है । ऋग्वेद 6.4718 में कहा गया है कि इन्द्र अपनी मायाओं के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप धारण कर लेता है । इसी प्रकार ऋग्वेद 3.53.8 में 'मघवा' अर्थात् 'इन्द्र' को अपनी माया की सहायता से अनेक रूप धारण करने वाला बतलाया गया है ।[7] आचार्य सायण ने इन वैदिक मंत्रों में माया शब्द का अर्थ ज्ञान, शक्ति अथवा आमीय संकल्प बतलाया है । परवर्तीकाल में ब्रह्म और माया के संदर्भ में माया का अर्थ सत् तथा असत् व अनिर्वचनीय कहा गया है ।[8] वह ब्रह्म की शक्ति सत्व, रज और तमों गुणवाली है । सांख्य शास्त्र में इसी 'माया' को पुरूष की शक्ति बतलाया गया है ।, जिसके सहयोग से सृष्टि का निर्माण होता है ।[9] महाभारत में अनुशासन–पर्व 75.25 में ऋग्वेद के अनुसार इन्द्र के लिये 'बहुमायः' इस विशेषण का प्रयोग

किया गया है । उसमें कहा गया है कि इन्द्र विविध रूपों को धारण करता है वह बहु मायावी है । 'महाभारत' में यह प्रयोग नवीन अर्थ में किया गया है ।

वैदिक साहित्य में अवतारवाद के संकेत :-

ऋग्वेद संहिता 1.51.13 में कहा गया है कि 'इन्द्र' 'वृषणस्व' की 'मेना' नाम की दुहिता का रूप धारण करते हैं । 'इन्द्र' के द्वारा 'मेना' नाम की नारी के रूप में अवतार ग्रहण करने की आख्यायिका का 'शाट्यायन' और 'ताण्डव-ब्राम्हण' में बहुशः वर्णन मिलता है । इसके अतिरिक्त इन्द्र को ऋग्वेद संहिता में 'श्रृंग-वृष' के पुत्र का रूप धारण करने वाला बतलाया गया है । परवर्ती-साहित्य में 'अहिल्या-प्रकरण' में 'इन्द्र' के द्वारा उसके पति ऋषिवर 'गौतम' के रूप धारण की कथा से भी यह प्रमाणित हो जाता है कि पुराण-काल और महाकाव्य-काल में भी 'इन्द्र' बहुमायावी था और अनेक रूप धारण कर लेता था । इन्द्र के उक्त वैदिक आख्यान से उसके अवतार का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

भगवान् का प्रथम अवतार पुरूष के रूप में होता है । ऋग्वेद का प्रख्यात 'पुरूष-सूक्त' इसका प्रमाण है । 'श्रीमद्-भागवत' महापुराण में कहा गया है कि भगवान् महदादि शक्तियों के साथ षोडश-कलाओं से युक्त होकर संसार की रचना करने की इच्छा से पुरूष रूप धारण करते है ।[10] ऋग्वेद का पुरूष सूक्त विराट् ब्रह्म के अवतरण का ही रूपक है । भागवतकार 'वेदव्यास' 'ऋग्वेद' के पुरूष-सूक्त में वर्णित 'पुरूष' को भगवान् का प्रथम अवतार ही नहीं

मानते प्रत्युत नानावतारों का बीज भी मानते हैं ।[11]

ब्राह्मण ग्रन्थों में अवतारवाद :–

अवतार के संदर्भ में ऋग्वेद–संहिता में उपलब्ध बीज ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेष रूप से पल्लवित हुये हैं । शत पथ–ब्राह्मण' 1.8.1.1, 24.1.2.11 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'प्रजापति' ने 'मत्स्य' कूर्म और 'वराह' का अवतार लिया था । इस बात का समर्थन 'तैत्तिरीय–ब्राह्मण' 1.1.3.5 में किया गया है । 'शुक्ल–यजुर्वेद' की 'काठक संहिता' 8.2 भी उक्त बात का समर्थन करती है । 'रामायण' और 'महाभारत' में क्रमशः 2.110 तथा 3.187 में उक्त अवतारों की कथा उपलब्ध होती है । पहले इन्हें 'प्रजापति' का अवतार माना जाता था, बाद में इन्हें 'विष्णु' का अवतार माना जाने लगा । विष्णु के नानावतारों की चर्चा अन्यत्र की जायेगी ।

प्रारम्भिक अवतारवाद का सम्बन्ध मुख्य रूप से 'विष्णु' से ही समझा जाता रहा है । वैदिक 'विष्णु' अपने प्रारम्भिक रूप में अन्य देवों के समान एक देवता मात्र रहे हैं । फिर भी उनमें कुछ ऐसी विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं जिनके कारण वे महान् व श्रेष्ठ बने हुये हैं । अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में रक्षा या असुरोंसे युद्ध के निमित्त जिस बल अथवा पराक्रम की आवश्यकता मानी जाती है । वह वैदिक 'विष्णु' में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया है कि 'विष्णु' ने अपने तीन पगों से इस जगत् को नाप लिया है । जिससे सम्पूर्ण जगत् उनके पैरों की धूलि से धूसरित है ।[12] इसी मण्डल में आगे कहा गया है कि 'विष्णु' जगत् के रक्षक है । 'विष्णु के कार्यो

के बल पर ही यजमान अपने व्रतों का अनुष्ठान करते हैं ।" इन्हें इन्द्र का परममित्र बतलाया गया है ।[13] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में बतलाया गया है कि 'द्यु' लोक में उनका परम पद स्थित है । ऋग्वेद के सप्तम–मण्डल में कहा गया है कि 'विष्णु' सुन्दर गौवाली पृथ्वी के धारक है । ऋग्वेद के 1.15.5.6 के अनुसार 'विष्णु' ने काल के 94 अंशों को चक्र के अनुसार संचालित कर रखा है । वे नित्य तरूण और कुमार हैं । वे युद्ध में निमन्त्रित होने पर शीघ्र जाते हैं । तीन चरणों के प्रक्षेप से तीनों लोकों को नाप लेने के लिये कारण संसार उनकी स्तुति करता है । वे सिंह के समान पराक्रमी हैं । यजमान, स्वमी, शत्रु, वृद्ध और तरूण नर और नारी 'विष्णु के पौरूष की प्रशंसा करते हैं । ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के चालीसवें सूक्त के पाँचवें मंत्र में देवताओं को विष्णु का अंश बतलाया गया है ।[14] इसी मण्डल में कहा गया है कि 'विष्णु' ने मनुष्यों के निवास के लिये ही पृथ्वी का पदक्रमण किया था और विस्तृत निवास स्थान बताया था ।[15] इसी मण्डल में यह भी कहा गया है कि विष्णु युद्ध में अनेक रूप धारण करते हैं ।[16] शतपथ ब्राम्हण 1.9.39 के अनुसार विष्णु अपने तीन पद–विक्षेप के द्वारा सभी देवों की शक्ति प्राप्त कर श्रेष्ठ बन जाते हैं । तैत्तिरीय–संहिता के अनुसार 'विष्णु' अपने तीन पद–चंक्रमण से वामन रूप धारण कर तीनों लोकों को जीत लेते हैं ।

विष्णु के उक्त रूपों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु इन्द्र सखा, बल, विक्रम से युक्त मनुष्य के हितैषी, अपने तीन पद–चंक्रमण से पृथ्वी को जीतने वाले तथा उसके धारण–कर्ता स्वामी हैं । वे सभी देवताओं की

शक्ति से युक्त होने के कारण सर्वश्रेष्ठ देव हैं । अवतारवादी उपादानों की दृष्टि से विष्णु के वामनावतार और नृसिंहावतार के मूल रूप का अनुमान किया जा सकता है । अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में भू–भार हरण करना एक अन्यतम प्रयोजन है । यह बात परवर्ती पुराणों से विदित होती है । वैदिक साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि इन्द्र और देवगण असुरों से पृथ्वी की रक्षा के लिये एकेश्वर–वादी विष्णु से सहायता लेते है । अथर्वं–संहिता के पृथ्वी–सूक्त के मंत्रों से उक्त प्रयोजनों के मूल रूपों का आभास मिलता है । अथर्व–संहिता के पृथ्वी–सूक्त के मंत्रों से उक्त प्रयोजनोंके मूल रूपों का आभास मिलता है । अथर्ववेद 11.1.7 के अनुसार शयन न करने वाले देवता सदैव सावधानी से पृथ्वी की रक्षा करते हैं । अश्विनी कुमारों द्वारा विनिर्मित पृथ्वी का विष्णु ने विक्रमण किया था और इन्द्र ने उसको शत्रु रहित करके अपने वश में कर लिया था ।[17] अथर्ववेद के इन प्रसंगों से देवता, इन्द्र तथा विष्णु से उन्हीं सम्बन्धों की प्रतीति होती है जिनका पुराणों में एकेश्वरवादी विष्णु के अवतारों से रहा है । अथर्ववेद 12.1.48 में यह कहा गया है कि शत्रु को भी धारण करने वाली, पाप पुण्य से युक्त शवों को सहने वाली बड़े–बड़े पदार्थों को धारण करने वाली और वराह जिसको खोज रहे थे, वह पृथ्वी वराह को प्राप्त हुई थी । इससे विष्णु के वराहावतार का संकेत मिलता है ।

विष्णु के अवतारवादी रूप :–

इस प्रकार वैदिक साहित्य में विष्णु के अवतारवादी रूपों में नृसिंहावतार, वामनावतार और वराहावतार का संकेत मिलता है । मत्स्य, कूर्म

अवतारों के आख्यान तैत्तिरीय–संहिता एवं ब्राहाण ग्रन्थों में मिलते हैं । वहां उनका सम्बन्ध विष्णु की अपेक्षा प्रजापति से स्थापित किया गया है । बाद में विष्णु के देवाधिदेव होने के कारण कालान्तर में उन्हें विष्णु का अवतार मान लिया गया है । इसी प्रकार वैदिक इन्द्र से सम्बन्ध कतिपय अवतारवादी उपादानों का आरोप बाद में विष्णु पर किया गया है । विशेष रूप से अवतार–वाद का सम्बन्ध जहां माया से उत्पन्न होने या विविध रूप धारण करने से है । वहां इस प्रवृत्ति का विशेष सम्बन्ध सर्वप्रथम वैदिक इन्द्र से लक्षित होता है । ऋग्वेद के एक मंत्र में इन्द्र के द्वारा अपनी माया की सहायता से अनेक रूप धारण करने की चर्चा की जा चुकी है ।

उत्पत्ति–सूचक अवतारवाद की प्रवृत्ति का दर्शन सर्वप्रथम यजुर्वेद के प्रयुक्त 'पुरूष–सूक्त' के एक मंत्र में दृष्टि–गोचर होता है । इस सूक्त में पुरूष को अजन्मा होते हुये भी जन्म लेने वाला बतलाया गया है ।[19] इसके पश्चात् महानारायणोपनिषद् में इस प्रवृत्ति का और विस्तार पूर्वक उल्लेख करते हुये अजन्मा पुरूष को अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में जन्म लेने वाला बतलाया गया है ।[20]

उपनिषदों में अवतारवाद के पोषक तत्व :–

केनोपनिषद् में एक स्थान पर सर्वशक्तिमान् ब्रह्म के यक्ष रूप में प्रकट होने का वर्णन मिलता है ।[21] इससे विदित होता है कि वैदिक काल में अवतारवाद के मूल प्रेरक उपादान अवश्य विद्यमान थे । केनोपनिषद् में प्राप्त यक्ष–कथा के अनुशीलन से यह विदित हो जाता है कि उसमें प्रारम्भिक

अवतारवाद के तत्व उपलब्ध हैं । जिस प्रकार से विष्णु प्रारम्भिक अवतारवाद में देवताओं का पक्ष लेने वाले ईश्वर माने जाते हैं, उसी प्रकार केनोपनिषद् में वर्णित ब्रह्म का यक्षावतार भी देवताओं का पक्ष लेने वाला ईश्वर है । केनोपनिषद् में 3.1 में यह भी वर्णित है, कि ब्रह्म ने देवताओं के लिये विजय का वरण किया था और उस ब्रह्म की विजय की वजह से देवगण गौरवान्वित हुये थे ।

कुछ इतिहासकार यक्ष–कथा के अवतारवादी रूप को देखकर, केनोपनिषद् को परवर्तीकाल का समझते है । किन्तु इस उपनिषद् में वर्णित 'यक्षावतार' का समर्थन और उल्लेख इसके पूर्ववर्ती वृहदारण्यकोपनिषद् 5.4.1 में किया गया है । इसमें यक्ष को प्रथम उत्पन्न सत्य–ब्रह्म के रूप में माना गया है । इससे स्पष्ट विदित होता है कि उपनिषद् काल में ही आविर्भूत ब्रह्म या देवाधिदेव को सत्य ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था । कालान्तर में विष्णु या मध्यकालीन उपास्यों के आविर्भूत रूप को इसी अवतारवादी परम्परा में सत्य माना गया है । केनोपनिषद् में उपलब्ध यक्षावतार की कथा से ब्रह्म की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है । यक्षावतार कथा में अभिमान चूर्ण करने की बात कही गई है । इसीलिये इस कथा में अवतारवादी प्रयोजन का अस्तित्व भी विद्यमान है । अतः वैदिक यक्षावतार कथा को भी अवतारवाद का प्रारम्भिक स्रोत माना जा सकता है ।

उपनिषदों में अवतारवाद के पोषक कतिपय अन्य तत्व भी मिलते हैं जिनका अवतारवादी साहित्य में व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ । इन उपादानों में श्याम वर्ण भी महत्वपूर्ण है । विष्णु और उनके राम, कृष्णादि अवतारों के शरीर श्यामवर्ण के माने जाते रहें हैं ।

इस संदर्भ में छन्दोग्योपनिषद् 8.13.1 के मंत्र में ब्रम्ह के उपास्य रूप की चर्चा करते हुये कहा गया है, मैं श्याम ब्रह्म से शबल ब्रह्म को प्राप्त करूं

और शबल ब्रह्म से श्याम बह्म को प्राप्त करूँ । इस मंत्र में जो श्याम वर्ण का प्रतिपादन किया गया है उससे विष्णु के परवर्ती, अवतारी, उपास्य रूपों में श्याम वर्ण का आरोप किया जा सकता है । क्योंकि परवर्ती काल में 'विष्णु' के अवतारी 'राम' और 'कृष्ण' श्याम वर्ण के ही थे ।[22]

'विष्णु' और 'वैष्णव' सम्प्रदाय के अवतारी उपास्य रूपों में समग्र ऐश्वर्य आदि गुणों का संयोग माना जाता है ।

ऐश्वर्यादि गुण जिनके पास होते है उन्हें भगवान् कहा जाता है । यह ईश्वर के दिव्य गुण हैं । परवर्ती काल में इन दिव्य गुणों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है । श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.8 में इन दिव्य गुणों में से कुछ का वर्णन प्राप्त होता है । इस उपनिषद् में ब्रह्म के दिव्यगुण, ज्ञान, बल और क्रिया बतलाये गये हैं ।

इसके अतिरिक्त ऐतरेय उपनिषद् 3.1.2 में उक्त दिव्य गुणों के अतिरिक्त ज्ञान, विज्ञान एवं प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, घृति, मति, मनीषा, स्मृति, संकल्प, वसु और काम आदि गुणों का विकास भी परिलक्षित होता है । अवतार ग्रहण करने वाले ब्रह्म के उक्त दिव्य गुणों से अवतारवाद के बीज का संकेत मिल जाता है ।

अवतारवादी साहित्य में अवतारों के शरीर के दिव्य शरीर समझे जाने की परम्परा रही है । यही कारण है कि दिव्य शरीरों के जन्म और मृत्यु को लेकर अनेक अलौकिक कथाओं और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति होती रही है । अवतारवादी ब्रह्म के दिव्य देह का जन्म उस प्रकार नहीं होता जिस प्रकार

से अन्य प्राणियों का जन्म होता है । वे प्रसवकाल के समय प्रकट हो जाते हैं । उनका जन्म अलौकिक होता है । अवतारवादी ब्रम्ह की अलौकिकता का संकेत उपनिषदों के विभिन्न मंत्रों में मिल जाता है । जिनके अनुसार उपनिषदों में मानव शरीर को ब्रह्ममय या देवमय बतलाया गया है ।

ऐतरेयोपनिषद् :–

1.2.2.3 में कहा गया है कि गो और अश्व इत्यादि का शरीर देवताओं के निवास के लिये अपर्याप्त है यह समझकर परमात्मा ने मनुष्य शरीर का निर्माण किया है । इस उपनिषद् के अनुसार मानव शरीर में सभी वैदिक देवता निवास करते हैं । किन्तु इसके आगे ऐतरेय ब्राह्मण 1.3.2. यह बात भी प्रतिपादित करता है कि मानव शरीर भी अपूर्ण है । इसलिये वह स्वयं मानव शरीर में प्रवेश कर अवतार लेता है । इसीलिये उपनिषदों के इन वर्णनों और उपकरणों के आधार पर अवतारी ब्रह्म के दिव्य गुणों से युक्त दिव्य–देह के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है ।

दिव्य–देह के विकास में केवल अवतरणशील शक्तियों का ही नहीं अपितु उत्क्रमणशील साधनात्मक शक्तियों का भी योग रहा है । अवतारवादी दिव्य–देह में सामान्य रूप से ईश्वरीय अंश या शक्तियों का अवतार माना जाता रहा है पर अवतारवादी की कोटि में वैसे साधकों को भी गिना जाता रहा है जिन्होंने सर्वात्मवादी सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था । दोनों में मूल अन्तर यह प्राप्त होता है कि अवतरण में ईश्वर की ओर से प्रयत्न करने का भाव है और उत्क्रमण में मनुष्य के ऊर्ध्वगामी उत्क्रमणशील प्रयत्न का बल है ।

उक्त उत्क्रमणशीलता की सैद्धान्तिक चर्चा ऐतरेय ब्राहण में मिलती है । जिसके अनुसार महर्षि वामदेव–इस उत्क्रमणशील साधना के द्वारा ब्रह्म रूप हो गये थे ।[23]

वृहदारण्यकेपनिषद् :–

4.1.4 में यह बात बतलायी गई है कि सर्वप्रथम, वह ब्रह्म ही था जिसने अपने आप को जाना कि 'अहंब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ' अतः सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी हो गया ।[24] इसी प्रकार जिन–जिन देवों ने उस ब्रह्म को जाना वे भी तद्रूप और ब्रह्ममय हो गये । इसी प्रकार ऋषियों और मनुष्यों में भी जिस–जिस ने उस ब्रह्म को जाना वह तद्रूप हो गया । वेदान्तसार में कहा गया है कि 'ब्रह्म' को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है ।[25] रामचरित मानस–कार 'गोस्वामी' तुलसीदास जी' ने भी कहा है कि जो ब्रह्म या ईश्वर को जान लेता है वह ब्रह्म या ईश्वर ही हो जाता है ।[26] इस प्रकार हम देखते हैं कि वामदेव इत्यादि ऋषियों में ऊर्ध्वगामी और उत्क्रमणशील प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है । प्रश्नोपनिषद् 4.9 मन्ता, बोद्धा और कर्ता को विज्ञानात्मा पुरूष कहा गया है । वृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.25 में कहा गया है कि जो ब्रह्म को जानता है वह निर्भय हो जाता है । ब्रह्म को न जानने वाला व्यक्ति ही जन्म–मरण, सुख–दुःख, उत्थान–पतन, मान–अपमान आदि के द्वन्द्वों में फंसा रहता है ।

उपनिषदों के उक्त संदर्भो से यह प्रतीत होता है कि अवतारवादी दिव्य–देह के विकास में अवतारशील और उत्क्रमणशील दोनों प्रवृत्तियों का योगदान रहा है । उक्त दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां हमें उपनिषद्–साहित्य में

उपलब्ध होती है । जिनमें अवतारवाद के बीज खोजे जा सकते हैं ।

उपनिषद्–साहित्य में ब्रह्म का विचार निर्गुण और सगुण भेद से ही किया जाता रहा है । इस कारण से दार्शनिक विचारों का ध्यान अवतारवादी उपादानों की ओर बहुत कम गया है । अवतारवाद की सीमा को देखते हुये ब्रह्म का सगुण रूप अधिक व्यापक हो जाता है । अवतारी ब्रह्म की कुछ अपनी विशेषतायें हैं । उसका उपनिषदों के कुछ मंत्रों में सीमित रूप दृष्टिगत होता है । उपनिषद्–साहित्य में विशुद्ध रूप में ब्रह्म अप्रमेय, ध्रुव, निर्मल आकाश से भी सूक्ष्मतर अजन्मा, आत्मा महान् और अविनाशी है ।[27] किन्तु वह ब्रह्म मनुष्य के ज्ञान और अनुभूति से परे होने के कारण सहज ग्राह्य नहीं हैं । इसी से उपनिषद् काल के ऋषि उपासना की दृष्टि से दो प्रकार के बह्म की ओर संकेत करते हैं । ईशावास्योपनिषद् के चौदहवें मंत्र में विनाशशील और अविनाशी दोनों की उपासना समीचीन बतलाई गयी है । उपनिषदों में ब्रह्म के दोनों रूपों का समान रूप से उल्लेख किया गया है । बृहदारण्यकोपनिषद् 2.3.1 में बह्म के दोनों रूपों की चर्चा की गई है । इसके अनुसार ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमर्त्य, स्थिर और अस्थिर, सत् और असत् बह्म के दो रूप हैं । इनमें मूर्त, मर्त्य, अस्थिर और असत् रूप अवतारी की सीमा के अन्तर्गत आते हैं । यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपास्य ब्रह्म वास्तविक रूप में ज्ञानियों के ज्ञान से परे होते हुये भी भावना और अनुभूति के अन्तर्गत होने के कारण संवेदनशील हैं । कठोपनिषद् 1.2.9 के अनुसार वह ब्रह्म बुद्धि और तर्क से प्राप्त होने योग्य नहीं हैं । उसमें आगे कहा गया है कि वह प्रवचन, मेधा, और बहुश्रुत

होने से भी उपलब्ध नहीं हो सकता । किन्तु जहां अनुभूति और भावना का प्रश्न उठता है वहां उपनिषद् के ऋषि मौन दिखायी देते हैं । सचमुच ब्रह्म के संवेदनशील जिस रूप की चर्चा उपनिषदों में प्राप्त होती है उससे व्यक्त ब्रह्म उपास्य रूप में भक्ति और भावना के अधिक निकट प्रतीत होता है । ब्रह्म के संवेदनशील रूप में सर्वप्रथम उसकी कामना का अस्तित्व मिलता है वह जीवात्मा रूप से नाम और रूप की अभिव्यक्ति की इच्छा करता है । तैत्तरीय उपनिषद् 2. 5.1 में ब्रह्म आनन्द–मय और भावात्मक रूपधारी है । व्यक्त ब्रह्म की कामना और इच्छा से युक्त होने के कारण मनुष्य का उपास्य हो सकता है । क्योंकि मनुष्य सदा से ब्रह्म के कल्याण रूप का उपासक रहा है । उपनिषद्काल के भक्तगण ब्रह्म के कल्याणकारी रूप का दर्शन करते हैं । वृहदारण्यकोपनिषद् 5.15.1 में यह उल्लिखित है कि तेरा जो अत्यन्त कल्याण–मय रूप है, उसे मैं देखता हूँ छान्दोग्योपनिषद् 3.14 में शाँडिल्य ने सर्वात्मा और अन्तर्यामी की उपासना की चर्चा की है । वहाँ भी उसका सगुण रूप भावात्मक है ।[29]

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है कि वैदिक उपनिषदों से एक ऐसे भावात्मक उपास्य ब्रह्म की रूप-रेखा का विस्तार हुआ है । जिसने परवर्ती अवतारी उपास्यों को साहित्य और काल में व्याप्त और विकसित होने में सहायता प्रदान की है । इसमें संदेह नहीं है कि वेदों में अवतारवाद के संकेत सुस्पष्ट नहीं है, प्रत्युत यह कहा जा सकता है कि वेदों में अवतारवाद का बीजांकुरण पूर्णरूपेण हो चुका था । इसलिये रामचरित–मानसकार 'गोस्वामी तुलसीदास' 'रामावतार' की कथा को 'निगमागम–सम्मतम्' कहते हैं । यहां पर

निगम से तात्पर्य वेदों से है । रामचरित–मानस में वर्णित रामकथा पूर्णरूप से वेद–सम्मत है ।[30] और उसमें प्राप्त अवतारवाद के विकास का मूल वैदिक साहित्य में ही है । शुक्ल यजुर्वेद 39.19 मंत्र में प्रयुक्त 'अजायमानो बहुधाविजायते' से उक्त बात की परिपुष्टि होती है ।

रामायण में अवतारवाद :—

वाल्मीकि–प्रणीत रामायण आदि महाकाव्य है । वैदिककाल के बाद महाकाव्यकाल प्रारम्भ होता है । महाकाव्यों में वाल्मीकि 'रामायण' का प्रथम स्थान है और द्वितीय स्थान 'महाभारत' का है । अवतारवाद की दृष्टि से दोनों महाकाव्यों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय देवासुर संग्राम प्रतीत होता है । इस युद्ध में भाग लेने वाले वैदिक देवता सर्वप्रथम अवतरित रूप में दिखाई देते हुये प्रतीत होते हैं । महाकाव्यकाल में पूर्वजन्म का यथेष्ट प्रभाव दिखाई देता है । जिसके फलस्वरूप देवता या दानव सभी मनुष्य या राक्षस के रूप में अवतरित होते हैं रामायण और विशेष रूप से महाभारत के अंशावतरण–पर्व में अंशावतार की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । फिर दूसरी बात यह भी है कि भारतीय बहुदेवतावाद में केवल प्राकृतिक तत्व ही देवता नहीं है । अपितु मनुष्य में व्याप्त अनेक चरित्रगत गुण–दोष आदि भाव भी है । जिनका दैवीकरण बहुत कुछ अंशों में वैदिक युग में ही हो चुका है ।

अवतार–प्रयोजन :—

रामायण में विष्णु देवशत्रुओं के विनाश के लिये ही अवतरित होते हैं । इस महाकाव्य के प्रारम्भ में राक्षसराज रावण के अत्याचारों से

घबड़ाकर देवगण ब्रह्मा जी से परामर्श करते हैं इसी समय शंख, चक्र, गदा और पद्ग से विभूषित तथा पीताम्बर धारण किये हुये जगत्पति विष्णु भी आते हैं। सभी देवता उनके शत्रुओं का वध करने के लिये विष्णु से मनुष्य लोक में अवतरित होने का अनुरोध करते हैं इसी समय शंख, चक्र, गदा और पद्म से विभूषित तथा पीताम्बर धारण किये हुये जगत्पति विष्णु भी आते हैं । सभी देवता उनके शत्रुओं का वध करने के लिये विष्णु से मनुष्य लोक में अवतरित होने का अनुरोध करते हैं ।

देवशत्रुओं असुरों के विनाश तथा धर्म की स्थापना इत्यादि अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजन हैं इन प्रयोजनों के आधार पर इस महाकाव्य का अवतारवादी रूप प्रकट हो जाता है । इस महाकाव्य के नायक श्रीराम के अवतारत्व का विकास प्रारम्भ में साम्प्रदायिक या पौराणिक न होकर आलंकारिक प्रतीत होता है । इस महाकाव्य की संक्षिप्त रामकथा में जब मुनिवर वाल्मीकि जी ने नारद से पूछा कि संप्रति संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ कृतज्ञ, सत्यवाक्, दृढ़व्रत, चरित्रवान् सभी प्राणियों का हित करने वाला विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवान्, क्रोध उत्पन्न हो जाने पर संग्राम में देवगण भी जिससे भय खाते हों, ऐसा बहुमुखी व्यक्तित्व कौन है ? उसका मुझे परिचय दीजिये ।[31] इस पर नारद जी वाल्मीकि जी से श्रीराम का परिचय देते हुये कहा है कि हे मुनिवर वाल्मीकि ! उपर्युक्त गुणों से युक्त श्री राम है । जिनका जन्म इक्ष्वाकुवंश में हुआ है । वे हिमालय के समान धैर्यवान् और समुद्र के समान गम्भीर हैं । वे विष्णु के समानवीर्यवान् हैं । यहां पर राम की तुलना विष्णु से की गई है । यहां

पर पाश्चात्य विद्वान् श्री राम को विष्णु का अवतार नहीं मानते । किन्तु उन्हें विष्णु के समान वीर्यवान् अवश्य मानते हैं ।[31] किन्तु फिर भी श्री राम के विष्णु के समान पराक्रमी होने पर उनके पराक्रमी रूप का विकास विष्णु के अवतार के रूप में सम्भव प्रतीत होता है । क्योंकि अवतारवादी साहित्य में वीर्य सदैव पराक्रम का परिचायक रहा है । वैदिक काल से ही विष्णु अपने पराक्रम के लिये विख्यात रहे हैं । उन्होंने अपने तीन पदक्रमों से पृथ्वी को नाप लिया था । परवर्ती काल में पौराणिक अवतारवादी विष्णु में अनेक गुणों का संयोजन किया गया, तब उनमें वीर्य और तेज इत्यादि गुणों को प्रमुखता दी गई । सामान्य रूप से वीर्य का तात्पर्य पराभूत करने की क्षमता से परम्परया लिया जाता रहा है । वाल्मीकि–रामायण में जहां परशुराम शिवधनुष भंजन के अवसर पर श्री राम से वाद–प्रतिवाद करते हैं और अन्त में परशुराम के वैष्णव–धनुष का संधान करते हैं तो इसके बाद परशुराम निस्तेज और निर्वीर्य होकर जड़वत् हो जाते हैं ।[33] इससे विदित होता है कि तेज और वीर्य आदि गुण ही वैष्णव अवतारों के प्रमुख परिचायक गुण रहे हैं । अतः कुछ विद्वानों की दृष्टि में श्रीराम वाल्मीकि रामायण में विष्णु के तेज और वीर्य से युक्त माने गये हैं और कालान्तर में उनके अनुसार उक्त गुणों के द्वारा ही श्रीराम में अवतारत्व का विकास हुआ है । उक्त अवधारणा का प्रमुख कारण वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग में उल्लिखित 'विष्णुना सदृशोवीर्ये' वा0रा0 1.1.18 यह श्लोक पंक्ति ही प्रतीत होती है । इसलिये कतिपय विद्वान् श्री राम को विष्णु के सदृश तेजस्वी और देवताओं के सहायक तथा मर्यादा पुरूषोत्तम माने जाते हैं । इस सम्बन्ध में विद्वानों का यह

कथन है कि वैदिक परम्परा में 'इन्द्र विष्णु' की परस्पर सहायता प्रसिद्ध रही है और वाल्मीकि रामायण में भी इन्द्र राम को विष्णु का धनुष प्रदान करते हैं । राम जब वनवासकाल में महर्षि अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश करते हैं तो अगस्त्य उनका आतिथ्यसत्कार करते हुये महेन्द्र के द्वारा दिये गये सूर्य के समान तेजस्वी, अमोघब्रह्मा द्वारा प्रदत्त और इन्द्र के द्वारा अगस्त्य को दिया गया धनुष–बाण राम को दिया जाता है ।[34] रामायण के राम अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरूण इन पांच देवताओं के स्वरूप धारण करने वाले बतलाये गये हैं । इसलिये श्री–राम में पांचों गुण प्रताप, पराक्रम, सौम्यता, दण्ड, एवं प्रसन्नता इत्यादि गुण विद्यमान रहते है ।[35]

विष्णु का श्री राम के रूप में अवतार :–

वाल्मीकि रामायण के सोलहवें सर्ग में विष्णु के श्री राम के रूप में अवतार की कथा स्पष्ट रूपे प्रतिपादित की गई है । देवगण विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि वे लोकरावण–रावण का वध करने के लिये इस संसार में मनुष्य के रूप में अवतार ग्रहण करें ।[36] इसी प्रकार जब श्री राम परशुराम के वैष्णव धनुष का संधान कर देते हैं तब परशुराम श्री राम से कहते हैं कि आप मधु नामक दैत्य का वध करने वाले अक्षय, अजर और अमर साक्षात् सुरेश्वर हैं इस प्रकार श्री राम के वनगमनकाल में सुमित्रा कौशल्या को आश्वासन देते हुये कहती हैं कि श्री राम सूर्य के भी सूर्य अर्थात् प्रकाशक हैं अग्नि के भी अग्नि हैं, प्रभु के भी प्रभु है और वे देवताओं के भी देवता हैं । उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि वाल्मीकि रामायण में भी श्री राम विष्णु के

अवतार है कतिपय विद्वानों के द्वारा उन्हें केवल मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में नापा जाना वाल्मीकि रामायण के साथ अन्याय प्रतीत होता है और ऐसे वर्णनों को पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रक्षिप्त माना जाना भ्रममूलक है क्योंकि वाल्मीकि–रामायण का कितना अंश मूल भाग है और कितना अंश प्रक्षिप्त भाग है इसका निर्णय करना नितान्त दुष्कर कार्य है । इसलिये जो रामायण हमें परम्परया प्राप्त है उसके वर्णो और प्रसंगों को यथावत् ग्रहण कर लेना ही श्रेयष्कर है क्योंकि जब अवतारवादी परम्परा का बीजांकुरण वैदिक साहित्य में दृष्टि गोचर होता है तो उसका पल्लवन परवर्ती साहित्य वाल्मीकि रामायण में स्वाभाविक है ।

वाल्मीकि–रामायण में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति श्री राम के शरणागत हो जाता है और यह कहता है कि मैं आपका ही हूँ तो उसके उत्तर में श्री राम कहते हैं कि ऐसे सभी प्राणियों को मैं अभय प्रदान करता हूँ । यह मेरा धर्म है । यह कार्य कोई ईश्वर का अवतारी पुरूष ही कर सकता है जो ईश्वर का अवतारी नहीं है वह सभी प्राणियों को अभयदान देने में समर्थ नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त हनुमान् जी ने रावण के समक्ष श्री राम के प्रभाव का जिस प्रकार वर्णन किया उसे भी श्री राम के विष्णु का अवतार होने का प्रमाण मिलता है । वे कहते हैं कि महायशस्वी श्री राम चराचर सभी प्राणियों से युक्त सम्पूर्ण लोकों का उपंहार करके फिर उसी प्रकार की रचना करने में समर्थ है ।[37] इसके अतिरिक्त श्री हनुमान् रावण से आगे कहते हैं कि चतुरानन स्वयंभू ब्रह्मा, त्रिपुरारी, त्रिनेत्र, रूद्र, सुरनायक, महेन्द्र, इन्द्र, युद्ध में, राघवेन्द्र श्री राम के समक्ष खड़े होने लायक नहीं है ।

रावण का वध हो जाने के बाद उसकी पत्नी मंदोदरी विलाप करते हुये श्रीराम का सम्पूर्ण रहस्य उद्घाटित कर देती है। वह कहती है कि निश्चित रूप से श्रीराम सनातन परम्परा महायोगी हैं, वे अनादि और अनन्त हैं और महान् से भी महान् हैं, शंख, चक्र गदाधारी विधाता हैं, उनके वक्षस्थल में श्री निवास करती है । वे नित्य शोभा वाले हैं । वे अजेय हैं शाश्वत और ध्रुव हैं । सत्य और पराक्रमी साक्षात् विष्णु ही मनुष्य के रूप में अवतरित हुये हैं । इत्यादि उपर्युक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि श्रीराम विष्णु के अवतारी महापुरूष हैं । पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा रामायण के उपर्युक्त अंशों को प्रक्षिप्त माना जाना उनकी अपनी कपोल-कल्पना है । आधुनिक प्रगतिशील विद्वान् भी वाल्मीकि रामायण में वर्णित श्री राम को मर्यादा पुरूषोत्तम तक की मान्यता, रामायण-विरोधी और बौद्धिक अजीर्णता का वमन प्रतीत होती है ।

अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन दुष्टों और असुरों का विनाश है तथा धर्म की स्थापना है । महाकाव्यकाल में उक्त कार्यो के लिये देवताओं में श्रेष्ठ केवल विष्णु ही नहीं अवतरित होते अपितु उनकी सहायता के लिये वैदिक देवता भी सामूहिक रूप से अवतरित होते हैं । वाल्मीकि रामायण के युद्ध काण्ड में रावण अपने गुप्तचरों से राम के प्रमुख सहायकों का परिचय पूछता है तो उसके गुप्तचर उससे कहते हैं कि वानर के रूप में साक्षात् मृत्यु ने ही उसमें अवतार ले लिया है । सेनापति नील अग्नि का अवतारी वानर है और हनुमान् वायु के अवतारी पुत्र है । इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं ने श्रीराम की सहायता के लिये वानर के रूप में अवतार ग्रहण किया है ।

इसमें संदेह नहीं है कि इस महाकाव्य काल में राम केवल विष्णु के अवतारी ही नहीं है अपितु एकेश्वर वादी सर्वात्मवाद एवं विराट–पुरूष इत्यादि इष्ट देवात्मक तत्वों से युक्त उपास्य राम भी है । इसमें श्री कृष्ण के समान श्री राम को अनेक रूपों और विभूतियों से युक्त कर विष्णु या प्रजापति के मत्स्य, वराह इत्यादि अवतारों से अभिहित कर इनके अवतारी रूप का परिचय दिया गया है ।[38]

इस प्रकार इस महाकाव्य में एक ओर तो उन वैदिक तत्वों से सम्वलित अवतारवाद का दर्शन होता है । जिसमें आलंकारिक पद्धति से विकसित विष्णु के समानवीर्यवान् श्रीराम विष्णु के अवतार हैं, तथा उनका प्रमुख प्रयोजन है, देवताओं के शत्रुओं का विनाश, सज्जनों का परित्राण और धर्म का संस्थापन इत्यादि जिसमें उनकी सहायता के लिये अन्य वैदिक देवता अवतीर्ण होते हैं । दूसरी ओर महाकाव्य का वैष्णवीकृत रूप भी दृष्टिगोचर होता है, जिसके फलस्वरूप कतिपय पौराणिक तत्वों के द्वारा रामायण के अवतारवादी रूप का विकास हुआ है । इसमें केवल वैदिक देवता ही नहीं अवतरित होते हैं : अपितु तत्कालीन युग तक प्रचलित सिद्ध, गन्धर्व,, अप्सरा और नाग आदि के सामूहिक अवतारों को भी इसमें समाविष्ट किया गया है ।[39]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में बीजाँकुरित अवतारवाद का पल्लवन और विकास हमें वाल्मीकि प्रणीत रामायण में दृष्टिगोचर होता है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि अवतारवाद हमारी भारतीय संस्कृति का एक विशेष अंग है और वह सनातन काल से उपास्य तथा पूज्य बना

हुआ है ।

इसलिये गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में श्रीराम की गाथा को 'रामायणे' 'निगदितम् क्वचिदन्यतोऽपि' कहकर वाल्मीकि–प्रणीत रामायण के प्रति अपना ऋण–भार स्वीकार किया है ।[40]

महाभारत में अवतारवाद :–

महाभारत हमारे देश का ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य का अप्रतिम ग्रन्थ–रत्न है, महान् और भारवान् होने के कारण ही इसे महाभारत कहा जाता है । यह भारतीय संस्कृति का एक विशालतम दर्पण है । इसके प्रणेता मुनिवर 'वेदव्यास' कवियों में विधाता कहे जाते हैं । महाभारत की रचना रामायण के पश्चात् हुई है । प्रसिद्ध गीता ग्रन्थ इसी महाभारत के शांतिपर्व से अवतरित है ।

महाभारत में भी अवतारवाद पर प्रचुर सामग्री मिलती है । महाभारत के बहुत से नायक हैं, जो उनके देवताओं के मानवीकृत अवतरित रूप हैं । श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं और अर्जुन इन्द्र के अवतार माने जाते हैं । इस महाकाव्य में मुख्य–कार्य सम्पन्न करने वाले अर्जुन है और श्री कृष्ण उनके सखा हैं । विष्णु और इन्द्र का यह मैत्री भाव वैदिक–साहित्य में भी देखने को मिलता है वहां भी विष्णु इन्द्र के सखा या सहायक के रूप में चित्रित किये गये हैं ।[41] किन्तु महाभारत में विष्णु और इन्द्र अथवा श्रीकृष्ण और अर्जुन का सम्बन्ध समानता का होते हुये भी श्री कृष्ण इस युग तक देवादिदेव विष्णु रूप में परिवर्तित हो जाते हैं ।

महाभारत काल में श्रीकृष्ण को विष्णु अथवा नारायण का अवतार माना जाता है । इस महाकाव्य में ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित पुरूष–सूक्त के विकसित विराट् रूप का वर्णन महाभारत से अवतरित गीता में वर्णित श्री कृष्ण के विराट् रूप से मिलता है ।[42] इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण के अवतारत्व का परिचायक ऋग्वेद का पुरूष सूक्त ही है । जब भी कोई श्री कृष्ण के अवतारत्व में संदेह करता है, जैसा कि अर्जुन को एक समय उनकी शक्तियों के सम्बन्ध में संदेह हो गया था तब श्री कृष्ण ने उन्हें अपने विराट् रूप का दर्शन कराकर अपनी ईश्वरीय शक्तियों का परिचय दे दिया था ।[43]

अवतार–प्रयोजन :–

प्रयोजन की दृष्टि से भी श्री कृष्ण का अवतारवादी रूप लक्षित होता है । ऋग्वेद में जहां एक ओर वैदिक विष्णु दानवों का संहार करते हैं । दूसरी ओर महाभारत के अर्जुन–सखा श्री कृष्ण असुरों और दृष्टों का संहार करने के लिये अंशावतार ग्रहण करते हैं ।[44] महाभारत 3.12.18–19 के वर्णन के अनुसार प्राचीन काल में भी श्री कृष्ण ने रणभूमि में दैत्यों और दानवों का संहार किया था । इस प्रकार अवतारवाद के प्राचीनतम प्रयोजनों का सन्निवेष महाभारत में दिखाई देता है एक समय द्रौपदी कहती कि इन्द्र को सर्वेश्वर का पद प्रदान करके विष्णु के अवतारी श्री कृष्ण इस समय मनुष्य–रूप में प्रकट हुये हैं । महाभारत में इनके आदित्य के रूप में प्राचीनतर अवतार की चर्चा का प्रसंग भी प्राप्त होता है । इस अवतार में अदिति के महिमामय कुण्डल के निमित्त यह नरकासुर का संहार करते हैं । यह स्मरणीय है कि विष्णु के अवतार का

प्रारम्भिक प्रयोजन इन्द्र या देवताओं की सहायता करना और उनके उत्थान के लिये असुरों का विनाश करना रहा है ।

निष्कर्ष–स्वरूप महाभारत 3.12.28 में कहा गया है कि हे विभो ! आपने सहस्रों अवतार धारण किये हैं और उन अवतारों में सैकड़ों असुरों का जो अधर्म से रूचि रखने वाले थे, वध किया है ।

महाभारत में अवतार-वाद का जो रूप मिलता है वह वैदिक परम्परा के अधिक निकट प्रतीत होता है । महाभारत के अवतारवादी तत्वों में पौराणिक युग का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । महाभारत में अवतारवाद का एक व्यापक रूप दृष्टिगत होता है महाभारत में कहा गया है कि परमात्मा कार्य करने के लिये जिस–जिस शरीर को धारण करना चाहते हैं । उस–उस शरीर में अपनी आत्मा को अपने आप प्रवेश कर लेते हैं ।[45] भूभार हरण का प्रयोजन सम्बद्ध करते हुये महाभारत 12.349.33–34 में यह भी कहा गया है कि वे पापियो को दण्ड देने के लिये सत्–पुरूषों पर अनुग्रह करने के लिये तथा आक्रान्त पृथ्वी के निमित नाना प्रकार के अवतार धारण कर पृथ्वी का भार हरण करते हैं । महाभारत–14.8 413 के अनुसार वे धर्म की रक्षा एवं स्थापना के लिये बहुत सी योनियों में अवतार धारण करते हैं । महाभारत 14.54.14 में अपने को ही विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा उत्पत्ति एवं प्रलय का रूप बतलाते हैं । जब–जब युग बदलता है तब–तब वे प्रजाओं का हित करने की कामना से भिन्न–भिन्न योनियों में पहुँच कर धर्म–सेतु का निर्माण करते है ।[45] वे देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, प्रभृति जिस योनि में जन्म लेते है, उस योनि में उसी के जैसा व्यवहार

करते हैं ।

महाभारत के अन्तर्गत गीता में अवतारवाद का सैद्धान्तिक रूप मिलता है । गीता में प्राप्त अवतारवाद की इस विचारधारा से प्रायः सभी पुराण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित दिखायी देते हैं । यद्यपि गीता में अठारह अध्याय प्राप्त होते हैं और उनमें ज्ञान कर्म तथा सन्यास योग पर विचार किया गया हैं । किन्तु गीता के चौथे अध्याय में अवतारवाद का स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है । गीता में जितना दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है, यद्यपि उनकी तुलना में अवतारवाद के रूप निर्धारण में वह अपना विशिष्ट स्थान रखती है ।

गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में तीसरे और चौथे श्लोक में युग की चर्चा करते समय प्राचीन और तत्कालीन जन्म सम्बन्धी प्रसंगों की बात उठाई गई है और यहीं गीता प्रतिपादित अवतारवाद का प्रारम्भ मिलने लगता है । यहां पर श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं । किन्तु मैं उनको जानता हूँ और तुम उहें नहीं जानते ।[47] इससे गीता में पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यताओं का परिचय मिलता है । इसी के आगे श्री कृष्ण कहते हैं कि श्री कृष्ण कहते हैं मैं अज, अव्ययात्मा और भूतों का ईश्वर होते हुये भी अपनी प्रकृति में स्थिर रहकर अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ । इससे प्रतीत होता कि मनुष्य और ईश्वर अपने अनेक जन्म और मायिक रूपों से परिचित रहता है, परन्तु मनुष्य में यह शक्ति नहीं है ।

गीता में अवतारवाद :—

गीता 4.7—8 में ईश्वर के अवतार के प्रयोजन का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि वह सज्जनों के परित्राण के लिये, दुष्टों के विनाश के लिये और धर्म की स्थापना के लिये युग—युग में स्वयं आविर्भूत होता रहता है । यहां पर ईश्वर के जन्म और कर्म दोनों दिव्य और मनुष्येतर माने गये हैं । गीता में तटस्थ ब्रह्म की अपेक्षा उपास्य ब्रह्म का अवतारवादी रूप प्रकट हुआ है । ब्रह्म अपने स्वाभाविक रूप से साम्प्रदायिक नहीं हो सकता है परन्तु भिन्न—भिन्न उपासकों और सम्प्रदायों के निमित्त वह भिन्न—भिन्न हो सकता है । गीता 4.11 में यह स्पष्ट कहा गया है कि जो मुझे जिस प्रकार से भजता हैं मैं उसे उसी प्रकार से भजता हूँ । इसी प्रकार गीता में ईश्वर के उपास्यावतार रूप का प्रतिपादन किया गया प्रतीत होता है । जिसमें एक ओर सज्जनों के परित्राण की भावना विद्यमान है और दूसरी ओर दुष्ट—दलन और धर्म—संस्थापन का मुख्य प्रयोजन विद्यमान हैं ।

महाभारत का ही एक अंश माने जाने वाले हरिवंश—पुराण में गीता में प्रतिपादित अवतारवाद तथा श्री कृष्ण से सम्बद्ध सामूहिक अंशावतार का निरूपण किया गया है । यही परम्परा बाद में पुराणों में विस्तार को प्राप्त करती है । इस प्रकार महाभारत के पर्यालोचन से परवर्ती दोनों प्रकार के अवतारवादी रूपों के दर्शन होते हैं । प्रारम्भिक रूप में विष्णु देव शत्रुओं के विनाश के लिये अवतरित होते हैं । वे देवता और पृथ्वी की रक्षा करते हैं । इसलिये भू—भार के हरण का प्रयोजन भी इसी के साथ समाविष्ट हो जाता

है । दूसरा विष्णु के अवतार का एक साम्प्रदायिक रूप भी है । जिससे विष्णु का सम्बन्ध युग–युग में धर्म की स्थापना करना और अधर्म का विनाश करना है । इसके साथ ही विष्णु के विभिन्न योनियों में होने वाले अवतारी रूपों की चर्चा प्राप्त होती है ।

इस प्रकार महाभारत और उससे अवतरित श्रीमद् भगवद्गीता में पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों प्रकार के अवतारवादी विचारों की प्रतीति होती है । ब्रम्ह का यह अवतार भारतीयता का अंग है और यह आगे चलकर पुराणों और उपपुराणों में अत्याधिक पल्लवित और पुष्पित हुआ है ।

पुराणों में अवतारवाद :–

भागवत पुराण में अवतार-संख्या :–

वेदव्यास–विरचित अष्टादश पुराणों में भागवत पुराण की प्रधानता प्रायः सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं । भागवत पुराण में विष्णु के अनेक अवतारों का परिगणन किया है । भागवत के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में बाइस अवतारों का वर्णन किया गया है ।

1– सनक सनन्दन, सनातन तथा, सनत कुमार 1

2– वराह

3– नारद

4– नरनारायण

5– कपिल

6– दत्तात्रेय

7– यज्ञ

8– ऋषभदेव

9– पृथु

10– मत्स्य

11– कच्छप

12– धन्वन्तरि

13– मोहिनी

14– नरसिंह

15– वामन

16– परशुराम

17– वेदव्यास

18– राम

19– बलराम

20– कृष्ण

21– बुद्ध

22– कल्कि ।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त अवतारों में हंस तथा हयग्रीव दो अवतारों को और सम्मिलित कर देने से अवतारों की संख्या 24– हो जाती है । भागवत् के दशम और एकादश स्कन्धों में भी अवतार का वर्णन किया गया है । जो पूर्व वर्णन से कहीं समान रूप से मिलते हैं और कहीं भिन्न–भिन्न भी

प्राप्त होते हैं । अन्त में भागवतकार का कथन है कि सत्वनिधि भगवान् श्री हरि के असंख्य अवतार हैं और उनकी गणना नहीं की जा सकती । जिस प्रकार अगाध सरोवर से हजारों छोटी–छोटी नदियां निकलती हैं अथवा जिस प्रकार हिमालय से अनेक नदियों का उद्गम हुआ है उसी प्रकार विष्णु के अनेक अवतार हुये हैं । अनेक ऋषि और देवगण भगवान् के अंशावतार हैं अथवा कलावतार हैं ।[49]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत–पुराण में अवतारवाद का सर्वांगीण विवेचन हुआ है । इस पुराण में सर्वप्रथम उस अद्वितीय ईश्वर का परिचय मिलता है जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के निमित्त त्रिगुणात्मक परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र नाम धारण करता है । परन्तु उसके इन तीनों रूपों में सत्वगुण स्वीकार करने वाले हरि या विष्णु ही मनुष्य के लिये परमकल्याणकारी और उपादेय माने गये हैं ।[50] इसी पुराण में यह कहा गया है कि भगवान् गुणमय और गुणातीत मायामय और मायातीत दोनों हैं । क्योंकि सत्व, रज और तम ये तीनों गुण उनकी माया के ही विलास है ।[51] परन्तु वे गुणों के विकास से उत्पन्न सृष्टि में नाना योनियों का निर्माण कर स्वयं प्रवेश करते हैं एवं समस्त लोकों की सृष्टि कर देवता, पशु–पक्षी, मनुष्य आदि योनियों में लीलावतार धारण कर सत्व गुण के द्वारा जीवों का पालन पोषण करते हैं ।[52]

इससे स्पष्ट है कि ईश्वर का सत्व गुणात्मक रूप ही स्रष्टा एवं अवतारवादी रूप है । संत–शिरोमणि वल्लभाचार्य ने भी अवतारी श्री कृष्ण का

रूप सत्व गुण युक्त मानते है ।[53] भागवत 1.3.1 में यह भी कहा गया है कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा सो षोडश कलाओं से युक्त रूप ग्रहण किया है । भगवान् का यही पुरूष रूप एक ओर तो समस्त लोकों का स्रष्टा है और दूसरी और इसे ही नारायण रूप कहा गया है जो अनेक अवतारों का अक्षय कोष है । इसी से सभी अवतार उत्पन्न होते है ।54 इस रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता पशु–पक्षी और मनुष्य आदि योनियों की सृष्टि होती है । भागवत पुराण 3.6.8 में कहा गया है कि यह विराट् पुरूष प्रथम जीवन होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा, जीव रूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम बार अभिव्यक्त होने के कारण आदि अवतार है ।

इससे स्पष्ट है कि भागवतकार ने ऋग्वेद के 'पुरूष–सूक्त' में वर्णित विराट्–पुरूष को ही प्रथम अभिव्यक्ति एवं आदि अवतार माना है । इस प्रकार उस पुराण में वैदिक मान्यताओं के आधार पर ही अवतारवाद का व्यापक रूप प्रस्तुत किया गया है । भागवत पुराण 1.3.5 में जो पुरूष नारायण को अवतार का अक्षय कोष माना गया है, यह सम्भवतः यजुर्वेदीय पुरूष–सूक्त के, 'अजाय–मानो बहुधा विजायते' का विकसित रूप प्रतीत होता है ।

भागवत पुराण 2.6.44 में विष्णु के समष्टिगत अवतार के व्यापक रूप की चर्चा की गई है । वहां कहा गया है कि जितनी वस्तुयें ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय, बल, मनोबल, शरीरबल और क्षमा से युक्त हैं, अथवा जिनमें सौन्दर्य, लज्जा, वैभव विभूति, अद्भुत रूप वर्ण विद्यमान है । ये सभी परमतत्वमय भगवत् स्वरूप हैं । इन्हें भागवत 2.6.45 तथा अन्य शास्त्रों में वर्णित लीलावतारों की

संज्ञा प्रदान की गयी हैं । इस प्रकार भागवत 2.7 में 24 लीलावतारों का वर्णन प्राप्त होता है ।

महाकाव्य एवं गीता के प्रयोजनात्मक अवतारवाद के पश्चात् भागवत में सर्वप्रथम अवतारवाद के लीलात्मक रूप का व्यापक विवेचन किया गया है । इसमें संदेह नहीं है कि प्रयोजनात्मक और लीलात्मक दोनों अवतार विष्णु या ईश्वर के उपास्यपरक रूप से ही होते हैं । किन्तु दोनों में विशेष अन्तर यह है कि एक में वह भक्तों का भगवान् या उनका अभीष्टदाता उपास्य ईश्वर है और दूसरे रूप में उपास्य होते हुये भी सम्भवतः इस काल तक प्रचलित ब्रह्मवादियों के मायारहित ब्रह्म रूप से युक्त हैं । जो अवतरित होकर नटवत् लीला करता है किन्तु यथार्थ रूप में नहीं । ब्रह्म की नटवत् लीला के सम्बन्ध में कहा गया है कि श्रीकृष्ण लोगों के सामने अपने को छिपाये हुये थे और ऐसी लीला करते थे कि मानों वे कोई मनुष्य हो ।

इस प्रकार भागवत पुराण में विशेष रूप से ईश्वर के व्यक्तिगत अवतारवादी रूपों को लीलात्मक रूप प्रदान किया गया है और इसमें पौराणिक को ही लीलावतार के रूप में ग्रहण किया गया है ।

विष्णु-पुराण में अवतारवाद :-

विष्णु पुराण में अवतारवाद के परम्परागत रूपों के अतिरिक्त एक व्यापक रूप का परिचय मिलता है फिर भी उपास्य रूप की दृष्टि से गीता एवं विष्णु पुराण दोनों में पर्याप्त साम्य है । इसमें कहा गया है कि आपका जो परम तत्व है उसे तो कोई भी नहीं जानता परन्तु आपका जो रूप अवतारों में प्रकट

होता है उसी की देवगण उपासना करते हं । आगे यह भी कहा गया है कि इन्द्रादि आपके अवतार रूप में पूजक हैं ।[55]

इस प्रकार विष्णु पुराण में पररूप से व्यक्त सभी रूपों के अवतरित रूप और पूज्य रूप माना गया है । रूपगत भेद की दृष्टि से पर ब्रह्म विष्णु के यहां पुरूष और प्रधान (प्रकृति) और कहीं शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दो अभिव्यक्त रूप माने गये हैं । इन रूपों का धारक वह ब्रह्म, व्यक्त और अव्यक्त, समष्टि और व्यष्टि रूप, सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं समस्त ज्ञान ऐश्वर्य से युक्त हैं । वह कारण अकारण से शरीर ग्रहण नहीं करता, अपितु केवल धर्म रक्षा के लिये शरीर धारण करता है ।[56] इस अवतार रूप के अतिरिक्त इसके पुरूष और प्रधान (प्रकृति) जो व्यक्त रूप कहे गये हैं, उन्हें विष्णु पुराण 1.2.18 में उसकी बालवत् क्रीड़ा या लीलावत् कहा गया है ।

इससे विदित होता है कि एक ओर तो परब्रह्म विष्णु धर्मार्थ–प्रयोजन के निमित्त 'सत्वांश से उत्पन्न होते हैं जो परम्परागत रूप प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त उनका एक (पुरूष–प्रकृति) के रूप में अभिव्यक्त रूप है जिन रूपों में बालवत् अर्थात्–निष्प्रयोजन लीला के निमित्त वे क्रीड़ा करते हैं । भागवत पुराण में इसी लीलावतार का सर्वाधिक प्रचार हुआ है ।

विष्णु–पुराण में लीलावतार :–

अवतारवाद की उक्त मान्यताओं के अतिरिक्त विष्णु पुराण में सर्वप्रथम युगल अवतार का सविस्तर प्रतिपादन हुआ है । विष्णु 'पुराण में आगे'

यह भी कहा गया है कि देवाधिदेव विष्णु जब–जब अवतार धारण करते हैं । तब–तब लक्ष्मी जी भी उनके साथ अवतरित होती है ।[57] इस पुराण में आगें के अवतरणों में यह बात प्रकट हुई है कि वह ब्रह्म हरि–पद्मा, परशुराम–पृथ्वी, राम–सीता, कृष्ण–रूक्मिणी के युगल रूप में आविर्भूत हुये थे और युगलावतार ग्रहण किया था ।[58] इस अवतार परम्परा को प्रस्तुत करने के पश्चात् यह भी कहा गया है कि भगवान् के देवरूप में होने पर लक्ष्मी देवी तथा मनुष्य रूप में होने पर वे मानवी रूप में प्रकट होती है ।[59]

विष्णु–पुराण में यत्र–तत्र अनेक अंशावतारों के अतिरिक्त हरिवंश–पुरण की परम्परा में कृष्ण एवं उनके सहयोगियों के सामूहिक अंशावतार का उल्लेख हुआ है जिनमें गोप एवं गोपी, देवता और देवियों के अवतार बतलायें गये हैं ।[60] इस पुराण में भी अवतार का प्रमुख प्रयोजन भू–भार–हरण रहा है और विष्णु के लीलात्मक और युगल रूप के वर्णन की प्रचुरता रही है ।

पुराणों में दशावतार परम्परा :–

आजकल भगवान् के अवतारों की संख्या प्रमुख रूप से दस ही मानी जाती है जिनका उल्लेख अग्नि पुरण 2.16 में तथा पद्म पुराण 257. 40–41, लिग्ग–पुराण 2.48.31–32, वराह–पुराण 4.2 तथा 113.42, मत्स्य पुराण 285.6–7 गरूड़ पुराण 1.86.10–11 एवं 2.20.31–32 में सूची बद्ध प्राप्त होता है, जिसका क्रम निम्नवत् है :–

1– मत्स्य	2– कूर्म	3– वराह	4– नरसिंह
5– वामन	6– परशुराम	7– श्रीराम	8– कृष्ण

9— बुद्ध 10— कल्कि ।

ये सम्भवतः अवतारों के उत्तरोत्तर विकसित रूप हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अवतारवाद की परम्परा को बढ़ाने में पुराणों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, पुराणों ने भारतीय समाज में अवतारवाद की महती प्रतिष्ठा की है, इन्हीं के आधार पर रामानुजचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानन्दाचार्य, इत्यादि सन्तों ने भारतीय समाज में अवतारवाद का प्रचार–प्रसार किया था ।

महाकाव्यों में प्रचलित देववादी अवतारवाद के अनन्तर गीता में अवतारवाद का सैद्धान्तिक रूप मिलता है । संभवतः अवतारवाद की इसी विचार धारा से सभी पुराण प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं । गीता के अठारह अध्यायों में प्रायः तत्कालीन युग में प्रचलित जिन दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है । उनमें अवतारवाद किसी अध्याय विशेष का प्रतिपाद्य विषय नहीं है । केवल ज्ञान–कर्म सन्यास योग पर विचार करते हुये गीता के चौथे अध्याय में अवतारवाद का उल्लेख हुआ है । इससे ऐसा लगता है कि गीता में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है, उनकी तुलना में अवतारवाद का उतना महत्व नहीं था । साथ ही यह भी अनुमान किया गया जा सकता है कि गीता का अवतवारवाद साहित्य या सम्प्रदाय विशेष में अधिक प्रचलित था जिसका अपेक्षित प्रभाव अन्य दार्शनिकों पर नहीं पड़ा था । फिर भी मध्यकालीन अवतारवाद के स्वरूप निर्धारण में गीतोक्त अवतारवाद का विशिष्ट स्थान रहा है ।

गी0 4, 3–4 में परम्परागत योग की चर्चा करते समय प्राचीन या तत्कालीन जन्म सम्बन्धी प्रसंगो के क्रम में गीतोक्त अवतारवाद का प्रारम्भ होता है । यहां पुनर्जन्म और साधारण जन्म से भिन्न ईश्वर की अनेक उत्पत्ति सम्बन्धी मान्यताओं का वैशिष्ट्य बतलायें हुये कहा गया है कि मेरे–तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं किन्तु मैं उनको जानता हूँ और तू उन्हें नहीं जानता । मैं अज, अव्ययात्मा और भूतों का ईश्वर होते हुये भी अपनी प्रकृति में स्थित रहकर अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ । यहाँ मनुष्य और ईश्वर के जन्म में पर्याप्त अन्तर लक्षित होता है । ईश्वर एक ओर तो अपनी ईश्वर रूप में स्थित रहता है, और दूसरी ओर माया से उत्पन्न होता है । मनुष्य की अपेक्षा इसकी उत्पत्ति में अन्तर यह है कि इश्वर अपने अनेक जन्म और मायिक रूप से परिचित रहता है । परन्तु मनुष्य परिचित नहीं रहता है । महाकाव्यों की अपेक्षा यहां पर जिस उत्पन्न होने वाले ईश्वर की चर्चा हुई है । वह केवल देव पक्षीय विष्णु न होकर निर्गुण सगुण विशिष्ट उपास्य ब्रह्म में ।

अवतार प्रयोजनो की ओर ध्यान देने पर इसकी स्पष्ट प्रतीति होती है । गीता 4,7–8 में उसके प्रयोजन का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि यह धर्मोत्थान या धर्म की संस्थापना, साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के निमित्त युग–युग में स्वयं आविर्भूत होता है । उसके जन्म और कर्म दोनों को यहाँ दिव्य और मनुष्येतर माना गया है । उक्त प्रयोजन में ईश्वर के अवतारी रूप को धर्म एवं साधुओं का पक्ष लेने वाला माना गया है । इसलिये यह स्पष्ट तटस्थ ब्रह्म की अपेक्षा उपास्य परह्म का अवतारवादी रूप विदित होता है ।

जिसका परवर्ती पुराणों एवं मध्यकालीन साहित्य में नाना रूपों में विस्तार दिखायी देता है क्योंकि साधारण रूप से ईश्वर का उपास्य रूप ही अपने उपासकों एवं उनके मतवादों का पक्षपाती रहा है । ब्रह्म अपने स्वाभाविक रूप में साम्प्रदायिक नहीं हो सकता है । परन्तु भिन्न उपासकों एवं सम्प्रदायों के निमित्त भिन्न–भिन्न हो सकता है । जो गीता 4–11 में स्पष्ट है । यहाँ कहा गया है कि जो मुझे जिस प्रकार से भजता है मैं उसे उसी प्रकार से भजता हूँ । गीता में उपास्य अवतार का ही प्रतिपादन मिलता है । जिसमें एक ओर तो भक्तों की रक्षा की भावना विद्यमान है, तो दूसरी ओर यहां धर्म अथवा सम्प्रदायों का प्रवर्तन मुख्य प्रयोजन दिखायी देता है ।

वैष्णव महाकाव्यों एवं पुराणों में विष्णु का जिस 'पररूप' की चर्चा हुई है । वह पुराणों की अपेक्षा पाँचरात्र संहिताओं से विशेष रूप से सम्बद्ध प्रतीत होती है । इन संहिताओं में विष्णु या वासुदेव का 'पररूप' भी सर्वश्रेष्ठ रूप माना गया है । जो निर्गुण और सगुण दोनों तत्वों से युक्त है । तथा अपने नित्य धाम में अपने नित्य पार्षदों के साथ विद्यमान है । संहिताओं के अवतारवाद का प्रारम्भ 'पररूप' के ही व्यक्त रूप से होता है ।

प्रयोजन की दृष्टि से 'पररूप' या वासुदेव अवतार के निमित्त गीता के प्रयोजन का समर्थन किया गया है । यहाँ पर धर्म के पतन्नोमुख होने को ही मुख्य कारण माना गया है । साथ ही उसका एक गुणात्मक कारण उपस्थित करते हुये कहा गया है कि रजोगुण और तमोगुण के प्रबल होने पर सत्वगुण को प्रभावशील बनाने का अथवा उसका सन्तुलन करने के लिये ही

विष्णु का अवतार होता है । धर्म ग्रन्थों की मान्यता है कि भगवान् अपनी माया रूप से भूतों में प्रविष्ट होकर धर्म स्थापना करते है । धर्म द्वेष के निराकरण के लिये यहां पर शस्त्र और अस्त्र रूपी व्यूह तथा शास्त्र दो मुख्य साधन बतलाये गये हैं ।[61] पांचरात्र संहिताओं में धर्म स्थापना एवं असुरों के संहार के निमित्त दो प्रकार के साधन विदित होते हैं । प्रथम साधन यहां शास्त्र माना गया है जिसके द्वारा धर्म का प्रतिपादन होता है । संभवतः इसी के फलस्वरूप संहिताओं में शास्त्रावतार की परम्परा भी दीख पड़ती है जो जैन, नाथ, संत, सूफी और सगुण साहित्य में समान रूप से दृष्टिगत होती है और दूसरा साधन शस्त्र माना गया है जिससे वे असुरों का संहार करते हैं । संभवतः पांचरात्र अवतारवाद के शास्त्र और शस्त्र उक्त दोनों प्रयोजनों के आधार पर 'जयाख्य संहिता' में पर ईश्वर के विद्या और मायिक दो रूप बताये गये हैं । विद्या रूप में शास्त्रावतार की परम्परा का विकास हुआ है और मायिक रूप वह अनेक अवतार धारण कर दुष्टों से सहस्त्रों रूपों में युद्ध करते हैं । फिर भी पांचरात्रों में उपास्य प्रवृत्ति का अधिक प्राधान्य होने के कारण परब्रह्म के अवतार का मुख्य कारण भक्तों पर अनुग्रह माना गया है । उपास्यवादी भक्तों की दृष्टि से उसके अनन्त अवतार बतलाये गये हैं । इन अनन्त आविर्भूत रूपों को व्यूह, विभव अन्तर्यामी और अर्चा चार भागों में विभक्त किया गया है । इनमें व्यूह संकर्षण, प्रद्युन्म, अनिरूद्ध प्रभृति व्यूह रूपों का सम्बन्ध भक्तों पर अनुग्रह के साथ-साथ सृष्टि अवतारण से भी रहा है किन्तु विभव, अन्तर्यामी और अर्चा, भक्तों के निमित्त प्रादुर्भूत उपास्य इष्टदेव के ही विभिन्न रूप है ।

इस प्रकार पांचरात्र साहित्य में अखिल सृष्टि के सृजन, पालन एवं संहार से लेकर भक्त के निमित्त आविर्भूत लघुतम अर्चा रूप तक किसी न किसी प्रकार के अवतारवादी रूप माने गये हैं । मध्यकालीन भक्त एवं संत कवियों में पांचरात्रानुमोदित अन्तर्यामी और अर्चा उपास्यों एवं उनके अवतारी कार्यो का पर्याप्त विस्तार हुआ है ।

उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त भागवत पुराण आलोच्यकालीन साहित्य का मुख्य प्रेरक ग्रंथ रहा है । विशेषकर मध्यकाल का अवतारवादी साहित्य भागवत से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है । इसकी विवेचन पद्धति में प्राचीन मान्यताओं का आधार ग्रहण करने के साथ ही तत्कालीन पांचरात्र या भागवत सम्प्रदायों में प्रचलित तथ्यों को भी समाविष्ट किया गया है ।

इस पुराण में सर्वप्रथम उस अद्वितीय ईश्वर का परिचय मिलता है जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के निमित्त त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र नाम धारण करता है । परन्तु उसके इन तीनों रूपों में सत्वगुण स्वीकार करने वाले हरि या विष्णु ही मनुष्य के लिये परम कल्याणकारी और उपादेव माने गये है ।[62] इसमें सत्वमय एवं विष्णु की परम्परा का भान होता है ।

यों तो भगवान गुणमय और गुणातीत, मायामय और मायातीत दोनों हैं । क्योंकि तीनों गुण उनकी माया के विलास हैं ।[68] पर वे गुणों के विकार से उत्पन्न सृष्टि में नाना योनियों का निर्माण कर स्वयं उसमें प्रवेश करते हैं और समस्त लोकों की सृष्टि कर देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियों में लीलावतार धारण कर सत्वगुण के द्वारा जीवों का पालन–पोषण

करते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि ईश्वर का सत्वमय या गुणात्मक रूप ही स्रष्टा एवं अवतारवादी रूप है । वल्लभाचार्य ने भी अवतारी श्रीकृष्ण का रूप सत्वगुण युक्त माना है । भागवत 1,3,1, में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में भगवान ने लोकों के निर्माण की इच्छा से षोडश कलाओं से युक्त रूप ग्रहण किया । भगवान् का यही पुरूष रूप एक ओर तो समस्त लोकों का स्रष्टा है और दूसरी ओर यही नारायण रूप भी कहा गया है । जो अनेक अवतारों का अक्षय कोष है । इसी से सभी अवतार उत्पन्न होते हैं । इस रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता पशु पक्षी और मनुष्य आदि योनियों की सृष्टि होती है । भागवत 2.6.41 में पुनः इसी प्रथम अभिव्यक्त पुरूष को परब्रह्म आदि का अवतार कहा गया है और 3.6.8 में विराट पुरूष की चर्चा करते हुये बताया गया है कि यह विराट पुरूष प्रथम जीवन होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा, जीव रूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण आदि अवतार है ।

इससे स्पष्ट है कि भागवतकाल ने 'पुरूष सूक्त' या 'ब्राह्मणों' के पुरूष नारायण को ही प्रथम अभिव्यक्त एवं आदि अवतार माना है । इस प्रकार इस पुराण में वैदिक मान्यताओं के आधार पर ही अवतारवाद का व्यापक रूप प्रस्तुत किया गया है ।

इस समष्टिगत अवतार के व्यापक रूप की चर्चा करते हुये भा0 2,6,44 में कहा गया है कि जितनी वस्तुयें, ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय, बल, मनोबल,

शरीरबल या क्षमा से युक्त हैं या जिनमें सौन्दर्य, लज्जा, वैष्णव, विभूति, अदुत रूप या वर्ण विद्यमान हैं, वे सभी परम तत्वमय भगवात्स्वरूप हैं । इन्हें भा0 2,6,45 शास्त्रों में वर्णित लीलावतारों की संज्ञा प्रदान की गई है, जिनमें से चौबीस लीलावतारों का वर्णन भा0 2,7 में हुआ है ।

अतएवं इस पुराण में समस्त अभिव्यक्ति को आदि अवतार बताया गया और दूसरी ओर पौराणिक परम्परा में प्रचलित अवतारों को उसके व्यक्तिगत लीलावतारों के रूप में ग्रहण किया गया है ।

'महाकाव्य' एवं 'गीता' के प्रयोजनात्मक अवतारवाद के पश्चात् भागवत में सर्वप्रथम अवतारवाद के लीलात्मक रूप का व्यापक विवेचन किया गया है । इसमें संदेह नहीं कि प्रयोजनात्मक और लीलात्मक दोनों अवतार विष्णु या ईश्वर के उपास्य पर रूप से ही होते हैं, किन्तु दोनों में विशेष अंतर यह है कि एक में वह भक्तों का भगवान या उनका अभीष्टदाता उपास्य ईश्वर है, और दूसरे रूप में उपास्य होते हुये भी संभवतः इस काल तक प्रचलित ब्रह्मवादियों के मायारहित ब्रह्म रूप से युक्त है । जो अवतरित होकर नटवत् लीला करता है यथार्थ रूप में नहीं । उसकी नटवत् लीला के उदाहरण स्वरूप प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण के प्रति कहा गया है कि वे लोगों के सामने अपने को छिपायें हुये थे और ऐसी लीला करते थे मानों कोई मनुष्य हों ।

इस प्रकार भागवत में ईश्वर के व्यक्तिगत अवतारवादी रूपों को लीलात्मक रूप प्रदान किया गया । इस सृष्टि से 'भागवत पुराण' 'विष्णु पुराण' से एक कदम आगे हैं । 'विष्णु पुराण' में सृष्टिकर्ता की सृष्टि को ही बालवत्

लीला कहा गया है । किन्तु 'भागवत' में उसकी सृष्टि लीला की अपेक्षा पौराणिक अवतारों को ही लीलावतार के रूप में ग्रहण किया गया है, जिसका आलोच्यकालीन साहित्यमें अत्यधिक विकास हुआ ।

उत्तर भारत में भागवत या अन्य वैष्णव साहित्य के प्रचार का श्रेय दक्षिण के उन आचार्यो को प्राप्त है । जिन्होंने उत्तर भारत में नहीं अपितु समस्त भारत वर्ष में घूम–घूम कर वैष्णव भक्ति का प्रचार किया था । इन दक्षिणी आचार्यो में स्मार्त होते हुये भी शंकराचार्य का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । सिद्धान्त की दृष्टि से वे पंचायतन (गणेश, विष्णु, सूर्य, शिव, दुर्गा) पूजा के प्रवर्तक थे । वैष्णव आचार्यो द्वारा उनके मायावाद का खंण्डन तथा ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य 2.2.42 सूत्र की व्याख्या में पांचरात्रों के अवैदिक सिद्ध किये जाने के कारण उनके अवतार विरोधी होने का भी भ्रम होता रहा है । किन्तु शंकर के साहित्य में उनके अवतारवादी दृष्टिकोण का यथेष्ट परिचय मिल जाता है । 'मांडूक्योपनिषद्' के अन्त में उन्होंने अवतरित ब्रह्म को नमस्कार किया । उनकी प्रार्थना के अनुसार उसने अजन्मा होकर भी ईश्वरीय शक्ति के योग से जन्म ग्रहण किया था, गति शून्य होने पर भी गति स्वीकार की थी तथा जो नाना प्रकार के विषय रूप धर्मो को ग्रहण करने वाले मूढ़ दृष्टि लोगों के विचार से एक होकर भी अनेक हो गया है । वही शरणागत भयहारी है ।[65] यहां अजन्मा ईश्वर का जन्मा और शरणागत भयहारी रूप स्पष्ट है । 'केनोपनिषद' के यक्ष ब्रह्म के प्रसंग में भी माया शक्ति के द्वारा उसका आविर्भाव इन्होंने स्वीकार किया है । इसके अतिरिक्त श्वेत. 5.2 में आये हुये

कपिल को तथा गीता के उपोद्धात भाग में कृष्ण को क्रमशः विष्णु और वासुदेव का अंशावतार माना है ।[66] 'गीता' के उपोद्धात भाग में इनका माया विशिष्ट अवतारवादी सिद्धान्त मिलता है । उपोद्धात भाग के अनुसार ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, और तेज आदि से सम्पन्न वे भगवान यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर और नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी माया को वश में करके अपनी लीला से शरीर धारी की तरह उत्पन्न होते हैं और लोगों पर अनुग्रह करते हुये से दिखायी देते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि शंकर ने अवतारवाद और उसके व्यावहारिक उपास्य वाद को स्वीकार किया है, किन्तु इनके अवतार और उपास्य माया के मिथ्या भाव से ग्रस्त है । यही कारण है कि इनके बाद होने वाले रामानुज आदि वैष्णव आचार्यो ने अवतारवाद की स्थापना के लिये मायावाद के मिथ्या भाव का खंण्डन अपना प्रमुख लक्ष्य माना । अतएवं अवतारवाद के सैद्धान्ति प्रतिपादन में इन वैष्णव आचार्यो का विशेष महत्व रहा है ।

इन आचार्यो के साथ ही उन तमिल प्रदेश के आल्वार भक्तों को विस्मृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने भाव, भाषा, भक्ति, भक्त और भगवान् का सम्बल इन आचार्यो को प्रदान किया । जिसे प्राप्त कर हिन्दी का समृद्ध भक्ति साहित्य उनका ऋणी है । दक्षिण के भक्तों ने संस्कृत की अपेक्षा तमिल भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । 'द्रविड़-प्रबन्धम्' में संगृहीत उन पदों का आज भी वैदिक ऋचाओं के समान आदर किया जाता है यों तो

आल्वारों ने विष्णु एवं उनके अवतारों का विशेष वर्णन अपने पदों में किया है । परन्तु विष्णु के अनन्तर राम और कृष्ण उनमें अधिक वर्णित हुये हैं ।

दक्षिण में तिरूपति और विष्णुकांची की अर्चा मर्तियां इनके उपास्यदेव के रूप में गृहीत हुई थी । आल्वारों के भक्तिपरक पदों में इनके उपास्य अर्चावतार एवं उनकी नित्य और नैमित्तिक लीलाओं के व्यापक रूप मिलते हैं । अतः अर्चावतारों के माध्यम से ही आल्वारों ने अवतारों के विषय में प्रचलित 'महाभारत' और 'रामायण' के अतिरिक्त अधिकांश पौराणिक कथाओं को ग्रहण किया है । उनके मतानुसार विष्णु अपने असंख्य रूपों में विश्व के एकमात्र पालन कर्ता हैं ।[67] पेरियाल्वतार सूर के सदृश बालकृष्ण पर अधिक मुग्ध हैं । इनके पदों में कृष्ण की शिशु–लीला का अधिक वर्णन हुआ है । कुलशेखर आल्वार अपने इष्टदेव राम को ही एकमात्र पूर्णावतार तथा अन्य अवतारों को समुद्र में खुर (गोष्पद) के समान मानते हैं । आल्वारों ने पौराणिक अवतारवादी रूपों के साथ पांचरात्र के पंच रूपों को भी समाविष्ट किया है । हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन कवियों में उपास्य रूपों के अवतार एवं अवतारी रूप का जिस प्रकार अत्यधिक प्रचार रहा है इसके पूर्व ही आल्वारों में उपास्य अवतारों एवं अर्चा विग्रहों के अवतार और अवतारी रूप प्रचलित थे । इनके उपास्य भी भक्तों की रक्षा, रंजन या अनुग्रह के निमित्त प्रकट होते हैं । पोयग्गे आल्वार कहते हैं कि भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है, जिस नाम को चाहते हैं वहीं उसका नाम । भक्त जिस ढंग से उपासना करे चक्रधर विष्णु उसी ढंग से उनका उपास्य बन जाता है । तिरूमलसोई ने अपने पदों में

इस भावना का विशेष परिचय दिया है कि रक्षा और पालन में विष्णु सभी देवों से अधिक समर्थ है । नम्मलवार कहते हैं कि भगवान् अवतारों के रूप में अपने को सुगम बनाता है तथा भक्तों के निकट आने का प्रयत्न करता है । उसका अवतरित रूप उस तालाब के समान है जहां लोग अपनी प्यास बुझाते हैं ।

आल्वारों के अनुसार अवतार दो प्रकार के विदित होते हैं । एक ओर तो प्रकृति में वे समष्टिगत अभिव्यक्त मानते हैं और दूसरी ओर उन व्यक्तिगत दिव्य रूपों और रूपों और अवतारों को दिव्य अवतार समझते हैं जो आत्मा और उपास्य के मध्य में स्थित है ।

उक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त आल्वारों ने तात्कालीन लोकवाणी या लोकभाषा को अपनाकर आगत युग के लिये नवीन मार्ग प्रस्तुत किया । विशेषकर हिन्दी भक्ति साहित्य की रचनात्मक पृष्ठभूमि की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है ।

आल्वार साहित्य से निःसृत भक्ति–सरिता को उत्तर भारत में प्रवाहित करने का श्रेय उन वैष्णव आचार्यो को प्राप्त है । जिनका जन्म तो हुआ दक्षिण में किन्तु उन्होंने या इनके अनुयायी आचार्यो ने समस्त भारतवर्ष या मुख्यतः उत्तर भारत को वैष्णव धर्म के प्रचार के निमित्त अपना कार्यक्षेत्र बनाया । इनमें रामानुज, विष्णु–स्वामी और उनकी परम्परा में माने जाने वाले वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य और निम्बार्क विशेष उल्लेखनीय हैं । इन्होंने प्रस्थानत्रयी या प्रस्थान चतुष्टय के आधार पर सगुण ब्रह्म के विशिष्ट रूपों और पांचरात्र और पौराणिक अवतारवाद के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन

किया है ।

इसीलिए इसी क्रम में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित-मानस में रामावतार की कथाको 'नाना पुराण–निगमागम–सम्मतम्' और 'क्वचित् अन्यतोऽपि' कहा है । संत कवि तुलसीदास के उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि अवतारवाद के क्रम में रामावतार की कथा नाना–पुराण निगमागम सम्मत तथा अन्य सन्त–साहित्य-सम्मत है, जो भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है ।[68]

द्वितीय अध्याय

पूर्वमध्यकाल में अवतार-भावना

द्वितीय अध्याय

पूर्व मध्यकाल में अवतारभावना :—

नाथ—साहित्य –

पूर्व मध्यकाल के प्रारम्भ में नाथों एवं गोरख पंथी-योगियों की हिन्दी रचनायें मिलती है । अभी तक इस सम्प्रदाय की 40 हिन्दी रचनायें डॉ0 बडथ्वाल की खोज के फलस्वरूप उपलब्ध हुई है । 'गोरखाबानी' नाम से इनका संग्रह प्रकाशित है । साथ ही नाथों और सिद्धों की वाणियों के नाम से संगृहीत कुछ पदों का पता चला है । नाथ सम्प्रदाय में व्याप्त अवतारवादी प्रवृत्तियों और रूपों के अध्ययन की दृष्टि से केवल गोरखबानी या नाथ सिद्धों की बानियों में संगृहीत कतिपय रचनाओं के अनुसार अवतारवादी तत्वों की विवेचना का प्रयास किया गया है । पूर्व मध्यकालीन भारत में अनेक सम्प्रदायों के साथ कनफटा योगियों और साधकों का भी एक सम्प्रदाय वर्तमान था । इनकी परम्परा में शिव इष्ट देव तथा मत्स्येन्द्र, और गोरखनाथ आदि नौ नाथ प्रवर्तक विख्यात रहे । इस सम्प्रदाय का विशेष सम्बन्ध विष्णु की अपेक्षा शिव से अधिक रहा है । उत्क्रमण:शील साधना से सम्बद्ध होने के कारण ये नाथ एक प्रकार से अवतार वाद के आलोचक ही रहे हैं । फिर भी ये तत्कालीन पौराणिक अवतारवादी प्रवृत्तियों से बहुत कुछ प्रभावित प्रतीत होते है । यों तो विष्णु के चौबीस अवतारों में जिन नर—नारायण, दत्तात्रेय, कपिल आदि साधकों का नाम आता है, उनके पौराणिक रूपों को देखने पर स्पष्ट पता चलता है कि ये किसी न किसी प्रकार की योग साधना से सम्बद्ध थे । परन्तु आलोच्यकाल के नाथों का विष्णु

या विष्णु की अवतार परम्परा से कोई विशेष सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता ।[1]

मत्स्येन्द्रनाथ :—

शिव के अतिरिक्त इन नाथों का विशिष्ट संबंध बौद्ध बज्रयानी शाखा से भी रहा है । फलतः नौ नाथों में मुख्य गोरखनाथ एक ओर तो शिव के अवतार हैं [2] और दूसरी ओर वे बज्रयानी चौरसिया सिद्धों में गोरक्षपा के नाम से गृहीत हुये हैं ।[3] इन्हीं की पूर्व परम्परा में आने वाले मत्स्येन्द्रनाथ "कौल ज्ञान निर्णय" के अनुसार एक ओर तो भैरव शिव के अवतार परम्परा में हैं और दूसरी ओर नेपाल में इन्हें अवलोकितेश्वर का अवतार माना जाता है । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोरक्ष पूर्व शैव मतों को गोरखनाथ के 12 पंथों में अन्तर्भुक्त माना है, जब कि वज्रयानियों में इन्हें किसी सम्प्रदाय या पंथ–प्रवर्तक के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है ।[4] तिब्बत और नेपाल में बौद्ध सिद्धों का प्रभाव है; तो हिमालय क्षेत्र भी शैव साधकों एवं योगियों का समान रूप से प्रमुख साधनास्थल रहा हैं । इस आधार पर दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है ।[5] जिसके फल स्वरूप गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ और चौरंगीनाथ का सिद्धों और नाथों दोनों की सूचियों में होना अधिक आश्चर्यजनक नहीं है ।[6]

अवलोकितेश्वर के अवतार :—

नौ नाथों में मत्स्येन्द्रनाथ का प्रमुख स्थान है । इस सम्प्रदाय में ये गोरखनाथ के गुरू कहे जाते हैं । मत्स्येन्द्रनाथ मुख्यतः नेपाल में अवलोकितेश्वर के अवतार–रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं । उनका यह अवतार–सम्बन्ध प्राचीन

साहित्य की अपेक्षा अनुश्रुति में अधिक प्रचलित है ।[7] विशेषकर तिब्बती परम्परा और नेपाल के बौद्धों में वे अवलोकितेश्वर के अवतार–रूप में मान्य हैं ।

परन्तु उनकी रचना 'कौल ज्ञान निर्णय' में उन्हें अवलोकितेश्वर या किसी अन्य बोधिसत्व का अवतार नहीं कहा गया है । 'कौल ज्ञान निर्णय' या डॉ0 बागची द्वारा संगृहीत 'अकुल बीर तंत्र' आदि ग्रन्थों में भी तत्सम्बन्धी किसी प्रकार के संकेत नहीं मिलते ।[8]

पर इस सम्प्रदाय के श्री शंकरनाथ फलेग्राहि ने नेपाल से सम्बद्ध एवं नेपाल में ही उपलब्ध कुछ ऐसे शिलालेखों का उल्लेख किया है, जिनमें मत्स्येन्द्र-नाथ के अवलोकितेश्वर–सम्बद्ध रूप का पता चलता है । इसके अतिरिक्त ललित पतन के राजा श्री निवासमल्ल के राज–दरबारी कवि श्री नीलकंठ भट्‌ट द्वारा रचित वि0सं0 1733 की एक रचना 'मत्स्येन्द्रपद शतकम्' में मत्स्येन्द्र नाथ मुख्य रूप से अवलोकितेश्वर के ही अवतार माने गये हैं ।

नेपाल की एक सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार महाराजा नरेन्द्रदेव के शासन काल में किसी कारण कुपित होकर गोरक्षनाथ ने बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं होने दी । उनको प्रसन्न करने के निमित्त कामाक्षा पीठ से मत्स्येन्द्रनाथ को बुलाया गया । उनके आने पर गोरखनाथ के अनुकूल हो जाने से पर्याप्त वृष्टि हुई । तभी से नेपाल में इनकी स्मृति में रथ यात्रा और महास्नानोत्सव का प्रतिवर्ष विराट् आयोजन हुआ करता है ।

परवर्ती रचना 'मत्स्येन्द्र-पदशतकम्' में पूर्णतः उपास्यदेव के रूप में इनका वर्णन किया गया है । प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'नमोऽस्त्वादिनाथाय

लोकेश्वराय' से शिव और अवलोकितेश्वर दोनों में से स्वरूपित होने का भान होता है । ये भक्तों की विपत्तियों के भंजन करने वाले, सज्जनों के अनुरंजन करने वाले तथा भक्त-शत्रुओं के नाशक हैं ।[9] ये ही ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र हैं ।[10] बसंत ऋतु में ये रथ-यात्रा कराते हैं ।[11] इनका पौराणिक सम्बन्ध स्थापित करते हुये कहा गया है कि इन्होंने ही ज्ञान योग से श्रीकृष्ण को कृतार्थ किया था ।[12] ये भक्तों के कल्याण के लिये अवतरित हुआ करते हैं ।[13] एक दूसरे श्लोक में इन्हें हनुमान् से भी सम्बद्ध किया गया है । ये लीला से जगत् का भार धारण करते हैं । ये सदैव सहस्त्रार से निःसृत अमृतपान करने वाले लोकनाथ हैं ।[14] आदित्य रूप होने के कारण इनके रथ में एक ही चक्र हैं ।[15] ये वर्ष में एक बार लोक लीला के लिये नया शरीर धारण करते हैं ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नेपाली क्षेत्र में मत्स्येन्द्र नाथ बाहर से आये । उनके आने के पश्चात् वृष्टि हुई, जिसके फलस्वरूप राज एवं लोक सम्मान उन्हें प्राप्त हुये । उनके आने के पूर्व अवलोकितेश्वर वहां के लोकप्रिय देवता थे, जिनके अवतार-रूप में मत्स्येन्द्रनाथ विख्यात हुये । संभवतः बौद्धों में रथ-यात्रा जैसे उत्सवों का प्रचार था, क्योंकि बुद्ध के परिवर्तित रूप पुरी जगन्नाथ के उत्सव में भी रथयात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

शिव के अवतार :-

नेपाल आने के पूर्व मत्स्येन्द्रनाथ का विशेष सम्बन्ध शिव से सम्बद्ध शाखा विशेष कौलमत से प्रतीत होता है । शिव से ही सम्बद्ध नाथ

सम्प्रदाय में भी मत्स्येन्द्रनाथ का स्थान आदि नाथ शिव के पश्चात् आता है । ये गोरख नाथ के मानव गुरू तथा नाथ सम्प्रदाय के सर्वप्रथम आचार्य के रूप में मान्य हैं ।[16] कहा जाता है कि कार्तिकेय ने 'कुलागम शास्त्र' को उठाकर समुद्र में फेंक दिया था, उसी का उद्धार करने के लिये स्वयं भैरव अर्थात् शिव ने मत्स्य रूप धारण कर उस शास्त्र के भक्षक मत्स्य को मार कर उसका उद्धार किया; जिससे उनका नाम 'मत्स्यघन' पड़ गया । इन अनुश्रुति से शिव के मत्स्येन्द्र रूप में अवतरित होने का अनुमान किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त 'बुद्ध पुराण' में भी महादेव के मत्स्येन्द्र रूप धारण करने का उल्लेख मिलता है ।[17] मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित कही जाने वाली रचना 'कौल ज्ञान निर्णय' में भैरव कहते हैं कि 'मैं ही त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रमशः महाकौल, सिद्धकौल और मत्स्योदा के रूप में अवतरित होता हूँ । इसी आधार पर डा० बागची ने मत्स्येन्द्रनाथ के शिवावतार–रूप का धीरे–धीरे विकसित होना माना है, जो युक्तिसंगत प्रतीत होता है । निष्कर्षतः मत्स्येन्द्र नाथ बौद्ध अवलोकितेश्वर और भैरव–शिव दोनों के अवतार विभिन्न स्थलों पर माने गये हैं । नेपाल जाने से पूर्व कौल मत से सम्बद्ध होने के कारण सर्वप्रथम इन्हें शिव का अवतार माना जा सकता है । कालान्तर में नेपाल में इन्हें लोकप्रिय बौद्ध देवता अवलोकितेश्वर का अवतार माना गया । इसके पश्चात् वे परवर्तीकाल में शिव और अवलोकितेश्वर दोनों के समन्वित रूप में भी गृहीत हुये, जैसा कि 'मत्स्येन्द्रपद शतकम्' से स्पष्ट हैं ।

गोरखनाथ :–

नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथों में गोरखनाथ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । गोरखनाथ नाथ-योगियों की परम्परा में शिव के अवतार माने जाते हैं । इस सम्प्रदाय में इनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के अवतार और उपास्य रूप का उल्लेख हो चुका है । परन्तु गोरखनाथ के सदृश मत्स्येन्द्रनाथ के विभिन्न अवतार ग्रहण करने का कहीं उल्लेख न होने कारण प्रायः इनके अवतारी रूप का अभाव विदित होता है । गोरखपंथी योगियों में यह धारण अधिक व्याप्त है कि गोरखनाथ ही भिन्न–भिन्न नाथों के रूप में समय–समय पर अवतरित होते हैं ।[18] पर एक विचित्रता यह देखने में आती है कि पूर्व मध्य काल में बौद्धों से आच्छन्न गोरखों की भूमि नेपाल में गोरखनाथ के गुरू मत्स्येन्द्रनाथ तो अवलोकितेश्वर के अवतार हो गये, परन्तु वहां सर्वाधिक पूज्य गोरखनाथ शिवावतार के रूप में ही पूजे जाते हैं । प्रत्युत इनका शिवावतार रूप बौद्ध वातावरण में भी अक्षत प्रतीत होता है । या यह भी सम्भव है कि मत्स्येन्द्रनाथ के काल में जो बौद्ध प्रभाव विद्यमान था, वह गोरखनाथ के प्रसिद्ध होते कुछ गौण हो गया हो । इतना अवश्य है कि एक गोरखनाथ वज्रयानी सिद्धों में गोरक्षपा नाम से गृहीत बौद्धों में पूज्य हैं, और दूसरी ओर गोरखपंथी भी नाथों के साथ 74 सिद्धों की पूजा करते हैं । फिर भी नेपाल में गोरखनाथ अवलोकित्तेश्वर की अपेक्षा पशुपतिनाथ जी के अवतार है,[19] तथा नेपाल के बाहर श्रीनगर, गढ़वाल आदि क्षेत्रों में ये शिव के अवतार रूप में ही मान्य हैं । शिव सम्प्रदाय से सम्बद्ध लाकुलीश सम्प्रदाय की रावल शाखा में भी गोरखनाथ

लाकुलीश के अवतार कहे जाते हैं ।[20] स्वयं लाकुलीश पुराणों के अनुसार शिव के प्रथम अवतार हैं ।

प्रयोजन :–

गोरखनाथ के योगी होने के कारण, योग–साधना एवं इसका प्रचार उनके अवतार का प्रयोजन माना गया । 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' में शिवजी कहते हैं कि 'मैं ही गोरखनाथ हूँ' ।[21] उनका यह अवतार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि, चारों युगों में होता है । सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में 'गोरक्ष' शब्द की व्याख्या से भी अवतारोचित प्रयोजनों का पता चलता है । इनकी व्याख्या करते हुये कहा गया है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति सभी धर्मो के संस्थापक, सज्जनों, साधुओं गो, ब्राहाण प्रभृति का रक्षा करने वाले, आत्मस्वरूप का बोध कराने वाले तथा संसार से मुक्त कर मोक्ष देने वाले को गोरक्ष कहते हैं ।[22]

उपुर्यक्त कथनों से स्पष्ट है कि गोरखनाथ योग मार्ग के आदि प्रवर्तक शिव के अवतार कहे जाते थे । इनके इस अवतारीकरण से अवतारवाद की एक विशेष प्रवृत्ति की पुष्टि होती है । सामान्य रूप से पूर्व मध्यकालीन सम्प्रदायों की यह विशेषता रही है कि अवतारवादी या अवतारविरोधी सभी सम्प्रदायों के प्रवर्तक अपने सम्प्रदायों में अवतार रूप में मान्य होते थे । उनके इस आविर्भाव का प्रयोजन स्वयं उनका साम्प्रदायिक कार्य ही होता था । इस धारण के अनुसार गोरखनाथ के भी अवतार माने जाने पर इनका अवतार–प्रयोजन योग मार्ग का प्रवर्तन करना रहा है ।

उपास्य एवं अवतारी :–

अवतारवाद के उत्तरोतर विकास की एक पराम्परा, साहित्य और सम्प्रदाय दोनों के समन्वित रूप में इस प्रकार देखने में आती है कि यदि कोई महापुरूष किसी देवता का अवतार माना गया तो सम्प्रदाय में गृहीत होते ही वह प्रायः इष्टदेव या उपास्य रूप में प्रचलित हो जाता है । फलतः अब वह अवतारमात्र होने के बदले स्वयं अंशी या अवतारी हो जाता है । तत् सम्प्रदायों में उसके प्रति रचित सर्वोत्कर्षवादी स्तोत्रों में उसके विराट रूप सर्वात्मवादी रूप तथा निर्गुण और सगुण रूपों के वर्णन किये जाते हैं ।

गोरखनाथ का अवतारवादी विकास भी इसी परम्परा में दृष्टिगत होता है । कालान्तर में गोरखनाथ अब केवल अवतार ही नहीं रहे अपितु युग–युग में अवतार धारण करने वाले अवतारी हो गये । और नौ नाथ भी गोरखनाथ के ही अवतार माने गये । विष्णु के सदृश उन्हें भी समग्र ऐश्वर्य, धर्म यज्ञ, श्री वैराग्य और मोक्ष षड्गुणों से युक्त माना गया ।[23] विचित्रता तो यह है कि सिद्धों ने षड्गुणों का खंडन करते हुये कहा है –'के ते षट् पदार्था अमी ?' पुनः, उत्तर देते हैं– 'षट् पदार्था यत्र भवन्ति स भगवान्' और अंत में प्रत्येक गुण के खंडन के पश्चात् सिद्ध किया है कि षड्गुणों से युक्त तो नाथ है ।[24]

गोरखनाथ उपास्य रूपों में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव से भी ऊपर उठ गये तथा ये तीनों त्रिदेव इनके प्रथम शिष्य के रूप में विख्यात हुये । इस सम्प्रदाय में यह भी माना जाता है कि गोरखनाथ इस पृथ्वी पर सदैव विद्यमान

रहते हैं । श्री ब्रिग्स के अनुसार ये सत्ययुग में पेशावर में, त्रेता में गोरखनाथ में, द्वापर में हरमुंज में तथा कलियुग में गोरखमंडी (काठियावाड़) में निवास करते हैं ।

'गोरक्ष-सिद्धांत-संग्रह' में संकलित, राजगुह्य श्रीकृष्ण कृत 'गोरखनाथ स्तोत्र' में गोरखनाथ का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है । उसमें यहां तक कहा गया है कि स्वयं श्रीकृष्ण ने गोरक्षनाथ के इस स्तोत्र का निर्माण किया । उस स्तुति में इन्हें तीनों लोकों का स्रष्टा, ब्रह्मा, रूद्र आदि का शिरोमणि कहा गया है । उक्त पुस्तक में संगृहीत 'कल्पद्रुम तंत्र' के 'गोरक्ष सहस्रनाम' नाम के स्तोत्र में पांचरात्र उपास्य के सदृश गोरखनाथ को निर्गुण और सगुण युक्त ब्रह्म के रूपों और उपाधियों से अभिहित किया गया है ।

'गोरखवानी' में गोरखनाथ के उक्त रूपों का दर्शन नहीं होता । अधिक से अधिक यहां केवल गोरख तथा विष्णु में संघर्ष दिखाया गया है, जिसमें अन्ततोगत्वा सिंगी बजाकर गोरखनाथ अपनी जीत की ओर इंगित करते हैं ।

अतः अवतारवादी सम्प्रदायों से पृथक् होने पर भी गोरखनाथ के साम्प्रदायिक रूप में उन सभी अवतारवादी प्रवृतियों का समावेश दीख पड़ता है, जो अवतारवाद की अपनी देन हैं । गोरखनाथ का यह विकास भी प्रारम्भ में अवतार रूप में तथा कालान्तर में उपास्य एवं अवतारी रूप में होता रहा है । इनके अवतार का प्रयोजन भी अपने सम्प्रदाय के अनुरूप योग मार्ग का प्रदर्शन करना रहा है ।

नौ नाथ :–

नौ नाथ, नाथ–सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तकों में प्रसिद्ध हैं, किन्तु आज तक इनकी किसी सर्वसम्मत परम्परा का पता नहीं चल सका है । नाथ साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध और जैन साहित्य से भी इनके सम्प्रदाय दृष्टिगत होते हैं । 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में कहा गया है कि महादेव जी ने नारद जी को नौ नारायणों के पास भेजा । ये नौ नारायण (1) कवि, (2) करभंजन (3) अंतरिक्ष, (4) प्रबुद्ध, (5) विप्पलायन, (6) चमस (7) हरि और (8) द्रुमिल ऋषभ राजा के पुत्र थे ।[25] नारदजी ने बदरिकाश्रम में इन्हें योग-मार्ग का प्रचार करने के लिये कहा ।[26] अतः प्राणियों के कल्याण पूर्व मुमुक्षुजन के हित के लिये विष्णु का परामर्श लेकर तथा माहदेवजी की आज्ञा से ये भारतवर्षमें अवतरित हुये ।[27] कवि मत्स्येन्द्र, करभंजन गहनिनाथ, अंतरिक्ष ज्वालेन्द्र, प्रबुद्ध करणिपानाथ, विप्पलायन चपर्टनाथ, चमस देवानाथ, द्रमिलगोपीचँदनाथ तथा अविहोत्रनागनाथ के रूप में अवतरित हुये । इन आठ नाथों के साथ आदिनाथ महादेव का नाम जोड़ने से संख्या नौ होगी और गोरखनाथ दसवें नाथ हुये ।

अतः उक्त तथ्यों से इनके नारायण एवं योगी दोनों रूपों का स्पष्टीकरण तो हो आता है, परन्तु जहां तक इनका अवतारवादी सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथों से स्थापित किया गया है, वह पूर्णतः पौराणिक तत्वों के आधार पर हुआ है क्योकि इस प्रकार वैष्णव, जैन और शैव समन्वय पौराणिक तत्वों से सम्पृक्त अवतारवाद के ही आधार पर संभव है ।

उपर्युक्त नौ नाथों का यह अवतारवादी सम्बन्ध साम्प्रदायिक

वैशिष्टय से पूरित है । 'योगी सम्प्रदायाविष्कृति' के अनुसार उनकी विशेषता यह है कि वे आपस में ही एक दूसरे से दीक्षा लेते हैं[28] और कुछ काल के अनन्तर यत्रतय अवतार लेने का निश्चय करते हैं ।[29]

शिव और उनके अवतार :—

भारतीय देवतावाद में विष्णु के पश्चात् या समकक्ष शिव का स्थान आता है । विष्णु और वैष्णवों के सदृश शिव और शैव भी प्राचीन पौराणिक साहित्य में व्याप्त हैं । ऋ0 सं0 में रूद्र का भयंकर रूप दृष्टिगत होता है । जहां के पर्वतवासी पशु चर्म पहनने वाले नीलकंठ धनुर्धारी के रूप में वर्णित हुये हैं । इसका विकास 'यजुर्वेद' 16 वें अध्याय के 'शतरूद्रीय' में लक्षित होता है । किन्तु 'यजुर्वेद' में ही, पुराणों तथा मध्यकालीन साहित्य में प्रचलित नाम शिव, शम्भु, शंकर आदि मिलने लगते हैं । इनसे लिंग पूजा के रूप में सम्बन्धित शिश्नदेव को फर्कुहर ने आदि वासियों से उत्पन्न माना है तथा इनके मतानुसार ये प्रचलित हिन्दू धर्म में दूसरी सती के लगभग गृहीत हुये हैं । भारतीय इतिहास कारों के अनुसार शिव और उमा द्रविड देवता हैं ।[30] जो कालान्तर में आर्यदेवों में माने गये । परिवर्द्धित 'रामायण' और 'महाभारत' में भी शिव का उल्लेख हुआ है । 'रामायण' में गंगा और उमा से शिव का संबंध स्थापित किया गया है ।[31] महाभारत में कतिपय प्रासंगिक उल्लेखों के अतिरिक्त अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये शिव किरात का रूप धारण करते हैं ।[32] इसके अतिरिक्त 'महाभारत' के पात्रों में यम, काम और क्रोध के साथ अश्वस्थाना में महादेव का भी अंश बतलाया गया है ।[33]

इससे स्पष्ट है कि शिव प्राचीन काल से ही उपास्य के रूप में भारतीय वांग्मय में प्रचलित रहे हैं । ये अवसर के अनुरूप रूप परिवर्तित करते हुये दिखायी पड़ते हैं तथा ऐतिहासिक पुरूषों में इनके अंशाविर्भाव की भी कल्पना होती रही है ।

उक्त रूपों के अतिरिक्त शिव के अवतारवादी रूप का विकास पूर्णतः पौराणिक है । क्योंकि 'महाभारत' में शिव के जिन आविर्भावों की चर्चा हुई है, वे पुराणों से अधिक प्राचीन नहीं हैं ।

सर्वप्रथम प्रायः शैवमत प्रधान 'शिव', 'वायु', 'लिंग', 'कूर्म' आदि पुराणों में शिव के अवतारों का उल्लेख हुआ है । 'वायु पुराण' में शिव के अवतारों की सूची मिलती है । फर्कुहर के अनुसार वही सूची 'लिंग' और 'कूर्म' पुराण में भी देखने में आती है । यों तो शैवों से प्रचलित अनेक सम्प्रदाय शिव के कोई अवतार ही नहीं मानते । केवल पाशुपत मत में शिव के अनेक अवतार मान्य है । इस मत के संस्थापक लकुलीश या नकुलीश, 'वायु पुराण', अ0 23 और 'लिंग पुराण' अ0 24 के अनुसार एक ओर तो वासुदेव के अवतार बतलाये गये हैं [34] और दूसरी ओर एकलिंग जी के मंदिर के निकट नाथों के मंदिर में विद्यमान वि0 सं0 1026 के एक शिलालेख तथा वि सं0 1331 (1264 ई0) के लगभग की 'शिव प्रशस्ति' के अनुसार लाकुलीश शिव के अवतार माने गये हैं ।[35]

इस प्रकार शैव सम्प्रदाय के उद्भव एवं विकास में शिव के अवतारवादी रूपों का दर्शन होता है । विशेषकर लाकुलीश सम्प्रदाय के

अनुयायी विष्णु के सदृश भिन्न–भिन्न युगों में हुये शिव के 18 या 28 अवतार मानते हैं । अभिलेखों के अतिरिक्त आचार्य हरभद्र, माध्व और राजशेखर सूरि की कृतियों में भी शिव के अवतारों का पता चलता है । हरिभद्रसूरि और राजशेखर दोनों ने शिव के 18 अवतारों का और विशुद्ध, मुनि ने इनके 28 अवतारों का उल्लेख किया है ।[36] 'शिव प्रशस्ति' में इनमें से लाकुलीश, कौशिक, गार्ग्य, कौरूष और मैत्रेय इन पांच के नाम मिलते हैं । अन्य 13 अवतारों में दर्शन, पारगार्ग्य, कपिलांद, मनुष्यक, कुशिक, अत्रि, पिंगल, पुष्पक, बृहदार्य, आस्ति, संतान, राशिकर और विद्यागुरू ये नाम मिलते हैं । ये 27 अवतारों के उल्लेख कर्त्ता विशुद्ध मुनि द्वारा उल्लिखित अवतारों से भिन्न हैं ।[37]

परन्तु जहां तक नाथ-सम्प्रदाय के सम्बन्ध का प्रश्न है, डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध लाकुलीश सम्प्रदाय से उत्पन्न रावलशाखा से माना गया है ।[38] गोरखनाथ लाकुलीश के अवतार भी कहे जाते हैं । परन्तु नाथ-साहित्य में इस सम्बन्ध का विशेष प्रचार नहीं दीख पड़ता है । साधारणतः भारतीय सम्प्रदायों में इष्टदेवों, प्रवर्तकों और आदि पुरूषों से चलने वाली परम्पराओं का अधिक प्रचलन है । नाथसम्प्रदाय में शिव भी इष्टदेव के रूप में आदि नाथ से सम्बद्ध होने पर आदि गुरू के रूप में प्रसिद्ध हैं । संभवतः इसी आधार पर शिव की नाथों से सन्निविष्ट अवतार परम्परा का भी प्रचार हुआ ।

'शिव संहिता' में इन्हें सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है । 'गो सि0सं0' के मत से ये शिव विष्णु के सदृश पालन का कार्य करते हैं । शरीर से

युक्त होने पर आत्मा जीव कहा जाता है, वहीं मुक्त होकर शिव हो जाता है । शिव के विग्रह रूप का वर्णन करते हुये कहा गया है कि उनका रसात्मक विग्रह स्वतंत्र एवं मायाशक्ति से युक्त है । ये भक्तों के अधीन हैं तथा परम मनोहर रूप धारण करने वाले हैं । इस प्रकार शिव भी इस युग में विष्णु पूर्व उनके अवतारों के समान अवतारी और उपास्य रूप में गृहीत हुये हैं ।

उपर्युक्त अध्ययन से इतना तो पता चलता है कि विष्णु के सदृश शिव का भी उनसे सम्बद्ध सम्प्रदायों में विविध अवतार परम्पराओं का प्रसार हुआ । उन अवतार–परम्पराओं में शिव का अवतार–हेतु भी गोरखनाथ के सदृश योग–मार्ग का प्रवर्तन करना ही रहा है । परन्तु नाथ पंथ या नौ नाथों में प्रसिद्ध किसी भी नाथ का नाम उन परम्पराओं में नहीं मिलता है । केवल जनश्रुतियों के आधार पर लाकुलीश का सम्बन्ध नाथ पंथ की रावल शाखा से विदित होता है । इससे स्पष्ट है कि नाथ पंथ का अवतारवादी सम्बन्ध शिव की पौराणिक अवतार–परम्परा से नहीं था । नाथपंथ में तत्कालीन अवतारवादी प्रवृत्तियों के प्रभावानुरूप स्वतंत्र रूप से अवतारवादी तत्वों का समावेश हुआ तथा योग साधना सम्बन्धी साम्य होने के कारण नाथपंथी अवतार–परम्परा में शिव भी समाविष्ट किये गये ।

शक्ति में अवतारत्व :–

नाथ साहित्य में परमशिव या शुद्ध शिव को सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में कर्त्तव्य शक्ति से परे कहा गया है ।[40] सृष्टि की इच्छा होने पर वह अपने की शक्ति से युक्त करता है । डॉ0 द्विवेदी ने परम शिव को ही इच्छा

युक्त होने के कारण सगुण शिव कहा है तथा उनकी सृष्टि करने की शक्ति ही इच्छा शक्ति है ।[41] 'शिव संहिता' के अनुसार पुरूष ने स्वयं सृष्टि एवं प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा की । उसकी इच्छा को यहां अविधा कहा गया है ।[42] अतएवं शुद्ध ब्रह्म अविधा से युक्त होने पर आकाश रूप में आविर्भूत होता है, जिससे क्रमशः वायु, अग्नि, आदि पंचतत्व प्रकट होते हैं और सृष्टि का विकास होता है ।[43]

इसी से नाथ सम्प्रदाय में विद्वानों ने शैव और शाक्त दोनों तत्वों का समावेश माना है । गोरखनाथ ने यदि इस मत को शैव तत्वों से युक्त किया तो मत्स्येन्द्रकनाथ ने शाक्त तत्वों से ।[44]

'शिव संहिता' में विक्षेप और आवरण दो प्रकार की शक्तियों से युक्त माया को त्रिगुणात्मिका कहा गया है ।[45] यही माया आवरण शक्ति द्वारा ब्रह्म को छिपाये रखती है और विक्षेप शक्ति द्वारा ब्रह्म को विश्व रूप में प्रगट करती है ।[46] भागवत में मान्य ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि गुणावतारों के इसी त्रिगुणात्मिका माया से संयुक्त होने के कारण 'गोरखबानी' में उन्हें माया द्वारा छला गया बताया गया है ।[47]

इस माया में जब तमोगुण का आधिक्य होता है, तो वह दुर्गा रूप में आविर्भूत होती है और ईश्वर, महादेव द्वारा शासित होती है ।[48] सत्वगुण के आधिक्य होने पर यही लक्ष्मी रूप में प्रकट होती है ।[49] सत्वगुण के आधिक्य होने पर यही लक्ष्मी रूप में प्रकट होती हैं और विष्णु रूप चैतन्य द्वारा शासित होती हैं । रजोगुण के आधिक्य से सरस्वती रूप में प्रकट होती हैं तथा ब्रम्हा

द्वारा शासित होती हैं ।[50]

यहां माया और शिव के समावेश से एक प्रकार के गुणात्मक अवतारवाद का ही परिचय दिया गया है ।

कौल साहित्य में शिव को अकुल और शक्ति को कुल कहा गया हैं । तथा 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में शिव और शक्ति का स्फुरण पांच रूपों में माना गया है । फलतः पांचों शिव पांच प्रकार की शक्तियों से युक्त रहते हैं । अपर शिव निजा शक्ति से, परम शिव परा शक्ति से, शून्य अपरा शक्ति से, निरंजन सूक्ष्मा शक्ति से और परमात्म कुण्डलिनी शक्ति से युक्त रहते हैं । शिव के साथ इन पांचों शक्तियों का भी आविर्भाव माना गया है ।[51]

यों तो इन पांचों शक्तियों के पांच कार्य बतलाये गये हैं। परन्तु इनमें निजा शक्ति का सम्बन्ध उस अपरशिव की इच्छा या संकल्प से प्रतीत होता है, जो गीता भागवत में प्रतिपादित ईश्वर के सदृश एक बार विश्व रूप में और फिर भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अवतार रूप में प्रकट हुआ करता है । कहा जाता है कि शक्ति समस्त लोक के कल्याणार्थ, इच्छा मात्र धर्म को धारण करने वाली नाथ की चित्स्वरूपा निजा शक्ति है । इस निजा शक्ति का धर्म इच्छा है । उसी को परमेश्वर का सत्य संकल्प भी कहा जा सकता है । इसका दूसरा नाम निग्रहानुग्रह शक्ति भी है । प्राणियों को भोग प्रदान करने का कार्य निग्रह शक्ति करती है और मोक्ष देने का कार्य अनुग्रह शक्ति का है । अतः निग्रह और अनुग्रह से युक्त होने के नाते इस शक्ति के निग्रह रूप में सृष्टि कार्य और अनुग्रह रूप में अवतार कार्य भी

परिलक्षित होता है ।

वैष्णव अवतारों से सम्बन्ध :-

कतिपय शाक्त तंत्रों में प्रचलित विभिन्न शक्तियों का विष्णु के अवतारों से अनोखा सामंजस्य स्थापित किया गया है । 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में 'शक्ति संगम तंत्र' आठवें पटल से उद्धृत अंश में कहा गया है कि किसी समय आद्या सुन्दरी ललिता देवी ने लोगों को मोहने के लिये अत्यन्त सुन्दर पुरूष रूप धारण किया था ।[52] आद्या शक्ति श्री काली रूप पार्वती रामावतार में तारा रूप धारण करती हैं । वाममार्गियों में प्रचलित है कि शिव की शक्ति उमा ने दक्ष यज्ञ के पूर्व सती रूप में शिव के सामने अपने को दस प्रसिद्ध रूपों में प्रकट किया था । ये ही दस रूप काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातंगी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुरसुंदरी, तारा और भैरवी दस महाविद्याओं के रूप में मान्य है । 'मुंडमाला तंत्र' में इन्हीं महाविद्याओं का विलक्षण सम्बन्ध दशावतारों के साथ प्रस्तुत किया गया है । यहां काली कृष्ण-रूप में, तारिणी राम रूप में, बगलामुखी कूर्म-रूप में, धूमावती मत्स्यरूप में, छिन्नमस्ता नृसिंह-रूप में, भैरवी वराह-रूप में, सुन्दरी परशुराम-रूप में, भुवनेश्वरी वामन-रूप में, कमला बुद्ध-रूप में और मातंगी कल्कि-रूप में अवतरित मानी गयी हैं ।[53] इसके अतिरिक्त 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में राम शब्द के साथ शक्ति और शिव का अनोखा सामंजस्य स्थापित किया गया है । इस श्लोक के अनुसार 'रा' शक्ति है औ 'म' शिव है । इस प्रकार शक्तिसहित शिवरूप राम ही ब्रह्म कहा जाता है ।[54] 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में ही पुनः पद्म-पुराण' पाताल खंड के अनुसार शक्ति ही ललिता

देवी या राधा देवी कहीं गई है, जो पुरूष रूप में कृष्णस्वरूप धारण करती हैं ।[55]

इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय में सन्निविष्ट शक्तों में शक्ति के अवतारत्व के साथ–साथ तत्कालीन युग में प्रचलित वैष्णव अवतारों के साथ विचित्र समन्वय लक्षित होता है ।

इन कथनों के अनुसार शक्ति का अवतारपरक सम्बन्ध दो प्रकार का लक्षित होता है । प्रथम तो शक्ति का वह दार्शनिक रूप जिसका सम्बन्ध आदि शिव से है, सृष्टि अवतार की सांख्यवादी परम्परा के आधार पर अभिव्यक्त हुआ है और दूसरे प्रकार के अवतारवादी तत्वों का सम्बन्ध साम्प्रदायिक रूढ़िवादी पद्धतियों से रहा है, जिनमें साम्प्रदायिक समन्वय की मनोवृत्ति जान पड़ती है ।

सृष्टि अवतार क्रम :–

'भागवत' में सृष्टि विकास–क्रम को भी सृष्टि अवतारक्रम के रूप में माना गया है । 'भागवत' के अनुसार जो ईश्वर का अभिव्यक्त रूप है, वही गेय है ।[56] वह आदि पुरूष ही कल्प–कल्प में सृष्टि, पालन और संहार किया करता है ।[57] उसी पुरूष को भागवत में 'आद्यावतार' कहा गया है ।[58]

नाथ साहित्य में भी जिस सृष्टि क्रम का उल्लेख हुआ है, वह एक प्रकार से सृष्टि अवतार क्रम प्रतीत होता है ।

'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' के अनुसार संभवतः उपास्य–तत्व–युक्त होने के कारण अद्वैत के ऊपर निराकार और साकार तथा इनसे भी परे नाथ

माने गये हैं ।[59] पुनः उनसे निराकार ज्योति–स्वरूप नाथ प्रकट हुये, उनसे साकार नाथ उत्पन्न हुये तथा उनकी इच्छा से सदाशिव भैरव हुये । उनसे भैरवी शक्ति सृष्टि क्रम के अतिरिक्त नाथजी से नाद और बिंदु दो प्रकार की सृष्टि मानी गयी है । नाद क्रम ही संभवतः शब्द क्रम में रूपान्तरित हुआ प्रतीत होता है, महागायत्री और योगशास्त्र आते हैं तथा इसी योगशास्त्र से तंत्रशास्त्र का उदय हुआ है । तत्पश्चात् इस योगशास्त्र से पातंजल योग, सांख्य योग आदि अनेक योगशास्त्र उत्पन्न हुये । उन विभिन्न योगशास्त्रों से न्याय और ज्योतिष की उत्पत्ति मानी गयी हैं ।[60]

स्थूलरूपा शब्द या नाद सृष्टि से ब्रह्म गायत्री और तीन वेद स्थूल सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुये, जिससे स्मृति, धर्मशास्त्र, व्याकरण, पुराण और उपपुराणों का क्रम चला ।

नाद सृष्टि से ही नव नाथों की परम्परा का विकास माना जाता है, जिनसे आगे चलकर 12 नाथ और पश्चात् 74 सिद्ध हुये, जिसके स्वरूप 12 पंथों और अनन्त सिद्धों की परम्परा का विकास हुआ ।[61]

इस प्रकार नाथ साहित्य में सृष्टि अवतार की दो परम्परायें मिलती हैं । इनमें से पहली परम्परा तो भागवत की सृष्टि परम्परा के अनुरूप है, परन्तु दूसरी परम्परा नाद और बिंदु क्रम के रूप में तंत्रों से अधिक सम्बद्ध विदित होती है, क्योंकि पांचरात्र संहिताओं में भी अवतारवाद की शस्त्र और शास्त्र नाम की दो परम्पराओं का उल्लेख हुआ है । शस्त्र अवतार की वह परम्परा है, जिसमें राम–कृष्ण जैसे महापुरूष अवतरित होकर अस्त्र–शस्त्र से

अवतार–कार्य करते हैं । शास्त्र–परम्परा वह है, जिसमें विविध सम्प्रदायों के प्रवर्तक उत्पन्न होकर विभिन्न शास्त्रों का प्रवर्तन करते हैं ।

इस अवतार–परम्परा का सम्बन्ध चूँकि योगमार्ग से है, इसलिये बिंदु–परम्परा के अनुसार योगी अवतरित होते हैं और योग साधना का प्रवर्तन करते हैं तथा नाद–परम्परा के अनुसार शास्त्रवेत्ता अवतरित होते हैं और शास्त्रों का प्रचार करते हैं । अतः आन्तरिक दृष्टि से देखने पर पांचरात्र और प्रस्तुत अवतार–परम्परा में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है ।

सारांशतः सृष्टिकाल में पाँच–पाँच गुणों से पाँच–पाँच महाशक्तियों का प्रादुर्भाव होता है । प्रत्येक पंचशक्ति में पंचदेव आविर्भूत होते हैं । इस शक्ति और चेतन–युक्त पिंड का नाम अनाद्यपिंड है, और वहीं सगुण परमेश्वर सदाशिव पंचदेवों से अवयव के रूप में युक्त होकर इसमें स्थित है । ये एक–एक देवता रचना, पालन, संहार आदि कार्य करते हैं ।[61] और पाँचों में क्रमशः परमानन्द, प्रबोध, चिदुदय, चित्प्रकाश और सोहं भाव आदि पंचानन्दों का भी समावेश माना जाता है ।

उक्त अनाद्य पिंड से ही आद्यपिंड की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार उक्त क्रम में सांख्यवादी क्रम के अतिरिक्त आद्यावतार पुरूष और हिरण्यगर्भ आदि वैष्णव सृष्टि अवतार क्रम का स्पष्ट आभास मिलता है, क्योंकि इसी आद्यपिंड से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं । इन पंच महाभूतों से क्रमशः सदाशिव, शिव, रूद्र, विष्णु और ब्रह्मा की स्थिति बतलाई गयी है ।[62]

अतएव अनेक विषमताओं के होते हुये भी सिद्धों का उपर्युक्त क्रम 'भागवत' के सांख्यवादी अवतार क्रम से भिन्न नहीं प्रतीत होता । अनादिपिंड सम्भवतः पर पुरूष और आदि पिंड पुरूष के समानान्तर विदित होते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त सृष्टि–अवतार की परम्परा में शैव, शाक्त, भागवत और पांचरात्र अवतार परम्पराओं का समन्वित रूप दृष्टिगत होता है । सृष्टि अवतार की सांख्यवादी परम्परा को भी शैव परम्परा के अनुरूप परिवर्तित किया गया है । पांचरात्रों के शस्त्र और शास्त्र परम्परा के समानान्तर नाद और बिंदु परम्परायें भी विशिष्ट रूप में दीख पड़ती है । कालान्तर में उत्तरवर्ती सम्प्रदायों में नाद–परम्परा निर्गुण सम्प्रदायों में तथा बिंदु–परम्परा वल्लभ आदि सगुण सम्प्रदायों में मिलती है ।

पिंड–ब्रहाण्ड और विराट् पुरुष :–

सामान्यतः अवतारवाद के विकास में ऋ0 10/90 के 'पुरूष सूक्त' से विकसित विराट् रूप का अपूर्व योग रहा है, क्योंकि महाकाव्यों एवं पुराणों में विष्णु एवं अवतारों के साथ विशेषकर उनका एकेश्वरवादी उपास्य रूपों का प्रचार होने पर उनके साथ विराट् रूप की संयोजना अनिवार्य सी हो गयी । परिवर्द्धित 'महाभारत' में श्रीकृष्ण के अवतारत्व का परिचायक एकमात्र उनका विराट् रूप ही लक्षित होता है । जहां भी उनके अवतारत्व में संदेह किया जाता है, वहीं उनका विराट् रूप प्रस्तुत किया गया है ।[63] इसी प्रकार 'वाल्मीकिरामायण' 6,120 में राम के विश्रव–रूप का परिचय मिलता है । इसके अतिरिक्त पुराणों में वामन, वराह, मत्स्य आदि के विराट् रूप प्रस्तुत किये

गये हैं ।

वैदिक साहित्य में ही 'पुरूषसूक्त' के अतिरिक्त विराट् रूप के आर्भ्यतरिक और ब्रह्म दो रूप लक्षित होने लगते हैं । कतिपय स्थलों पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अवतारवाद के विकास में केवल किसी ब्रह्म ईश्वर के अवतरित होने का ही मुख्य हाथ नहीं रहा है, अपितु साधना के बल पर उत्क्रमित आत्मोत्कर्ष का भी अपूर्व योग रहा है । इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा के मध्य में अवतारवाद वह बिंदु या स्थल रहा है, जहाँ ब्रह्म अवतरित होकर अवतार हो जाता है और आत्मा उत्क्रमित होकर अवतारी ब्रह्म हो जाता है । इस दृष्टि से अवतारवाद में ब्रह्म और आत्मा दोनों का लय होना महत्वपूर्ण स्थान रखता है; वहाँ आत्मा और ब्रह्म की स्थिति एक सी रहती है ।

अतएव वैदिक साहित्य में एक ओर ईश्वर 'पुरुष एवं इदं सर्वम्' के रूप में पुरुष का विश्वरूपात्मक विकास दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर उपनिषदों में मानवशरीर में ही अखिल ब्रम्हाण्ड के अस्तित्व की कल्पना मिलती है । फिर भी पिण्ड, (शरीर) और ब्रम्हाण्ड दोनों में समान रूप से यदि किसी का अस्तित्व है, तो केवल विराट् रूप का, जिसकी प्रथम झाँकी 'पुरुषसूक्त' में ही मिलती है ।

'पुरुषसूक्त' के पूर्व ही ऋ0 10/71/3 में इसका विशिष्ट रूप लक्षित होता है । वहाँ परमेश्वर सब ओर चक्षु, मुख बाहु और पाँव वाला तथा अनन्त बाहुओं और पाँवों से प्रेरित द्युलोक और पृथ्वी लोक को उत्पन्न करने वाला कहा गया है ।[64] अथर्व सं0 में इसका संबंध सभी इन्द्रियों से दीख पड़ता

है तथा देह में ब्रह्म की स्थिति का संकेत मिलने लगता है । अथर्व सं0 में एक स्थल पर कहा गया है कि जो इस देह में ही ब्रह्म को जानते हैं वे परमेष्ठि परमात्मा को जानते हैं ।[65] वह इस शरीर में ही सूर्य, चक्षु, वायु और प्राण बनकर स्थित हैं ।[66] इसी कारण विद्वान् इस पुरुष को ब्रह्म कहते हैं ।[67] क्योंकि सब देवता उसमें उसी प्रकार रहते हैं, जैसे गौएं गोशाला में रहती हैं । इस प्रकार मानव शरीर में जीवात्मा के साथ उनके अंश विद्यमान रहते है । वही पुरूष द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोधकर्ता परमात्मा में भली–भाँति स्थित है । 'मुंडकोपनिषद्' में उस ईश्वर का अग्नि–मस्तक, चन्द्र–सूर्य नेत्र, दिशायें–कान, वेद–वाणी, वायु–प्राण, विश्व–हृदय तथा पैर–पृथ्वी कहे गये हैं ।[68] 'ऐतरेय उपनिषद्' में इसका और विशद रूप मिलता है ।[69]

शरीर के दैवी एवं ब्राह्मीकरण के अतिरिक्त उत्कर्षोन्मुख साधना का विकास उपनिषद् काल से ही योगसाधना से समन्वित रहा है । ब्राह्मीभूत या योगसिद्ध पुरूष जिस समय ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करते हैं; उस समय कहा जाता है कि उनकी आत्मा अखिल विश्वात्मा के साथ एकाकार हो जाती है,[70] जिसके फलस्वरूप अखिल ब्रह्माण्ड उसके शरीर में ही प्रतीत होता है । योगाभ्यासियों का ऐसा विश्वास है कि सिद्ध योगी को अष्टसिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं । उन अष्टसिद्धियों में 'ईशित्व' और 'वशित्व' अखिल विश्व के साथ अन्योन्याश्रित संबंध रखने की क्षमता रखती हैं ।

नाथ साहित्य में इस उत्क्रमणशील भावना का यथेष्ट विकास हुआ । योगी अपनी कुण्डलिनी शक्ति जागृत कर उसके मूलाधार से सहस्त्रार

तक पहुँचा कर परम शिव से अपनी आत्मा को संयुक्त कर लेता है । ये योगी कुण्डलिनी द्वारा चक्रभेदन के पूर्व अष्टयाम साधना से अपना शरीर दिव्य अप्राकृतिक एवं दिव्य बनाते हैं । वह अवतारों के समान माया के वशवर्ती नहीं होता । यहाँ तक सिद्ध योगी और पौराणिक अवतारों में साम्य होते हुये भी अवतारवादी प्रयोजनों की दृष्टि से पर्याप्त अंतर हो जाता है । साथ ही पौराणिक अवतारों का अवतारत्व जन्मगत है ओर सिद्धों की अवतार–तुल्यता साधनागत है । योगश्वर के रूप में श्रीकृष्ण भी प्रसिद्ध हैं, गीता के अनुसार उनका विराट् रूप योग–ऐश्वर्य–प्रधान है ।[71] परन्तु जिन पौराणिक प्रयोजनों से इनका अवतार मान्य है उनका योगियों में सर्वथा अभाव है ।

परन्तु साम्प्रदायिक रूप में श्रीकृष्ण आदि उपास्य अवतारों के समान योगी भी देवताओं से श्रेष्ठ तथा इच्छानुसार विश्व में नाना रूप धारण कर लीला करता है । 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' के अनुसार इस शरीर में ही योगी अखिल चराचर को जानता है । उसे पिंड संविति कहते हैं । इसके अतिरिक्त उसके शरीर के समस्त अंगों में अनेक देवताओं, लोकों और देशों की स्थिति का वर्णन किया गया है । 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में संगृहीत 'योग बीज' के अनुसार इच्छानुसार धारण कर मृत्यु आदि से स्वतंत्र हो समस्त लोकों में वह क्रीड़ा करता रहा है । माया से परे वाले योगी का चरण विष्णु भी धोता है ।[72] इस प्रकार लीलावतारों के सदृश तत्कालीन युग में योगियों को श्रेष्ठतर करने का प्रयास किया गया है ।

अतः योग के ऐश्वर्य की दृष्टि से योगियों की पिंड–ब्रह्माण्ड

सम्बन्धी धारण अवतारवादी विराट रूप के समानान्तर प्रतीत होती है । दोनों मं अवतारवादी लीला और क्रीडा के भाव भी विद्यमान हैं ।

नाथ गुरू और अवतार तत्व :–

भारत में प्रचलित योग या भक्ति जनित साधनाओं में गुरू का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है । पुराणों के अनन्तर मध्यकाल में प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय में गुरू का इष्टदेव से कम महत्त्व नहीं था । विशेषकर अत्यन्त दुरूह योग–साधना में तो गुरू की अवहेलना करने की बात दूर रही पग–पग पर उसकी आवश्यकता पड़ती थी ।

यों तो सांख्य शास्त्र के 24 तत्वों के अतिरिक्त योगशास्त्र में एक छब्बीसवां तत्व ईश्वर भी माना जाता है । योगशास्त्रियों के अनुसार यह ईश्वर ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है । नित्य होने से वह भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में अनवच्छिन्न गुरूओं का भी गुरू हैं ।[73]

इस काल में सगुणोपासक पांचरात्र, वैष्णव यदि निर्गुण, सगुण से युक्त साकार ईश्वर एवं गुरू की उपासना करते थे, तो योगी निर्गुण–सगुण विशिष्ट आत्म ब्रह्म और गुरू को इष्टदेव मानते थे । दोनों के उपास्य सर्वात्मा, सृष्टा, विश्वरूप आदि परम्परागत रूपों से युक्त हैं और समान रूप से भक्तों के उद्धार की क्षमता रखते हैं ।[74]

दोनों में गुरू इष्टदेव के रूप में परब्रह्म के साकार स्वरूप मान कर पूजे जाते हैं । इनमें विशेष अन्तर केवल साधना सम्बन्धी लक्षित होता है, क्योंकि पांचरात्र भक्त या भी वैष्णव यदि भावात्मक एवं हृदय प्रधान प्रेम पूरित

भक्ति को अपना सम्बल बनाते हैं तो योगी ज्ञान मार्ग एवं यौगिक साधना का सहारा लेते हैं ।

नाथ पंथ में शिव, भैरव, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि नवनाथ उपास्य ब्रह्म या इष्टदेव में परिवर्तित होने के पूर्व इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक या आदि गुरू के रूप में मान्य हुये ।[75] विचित्रता यह है कि योगी एक ओर तो सगुण उपास्यों एवं अवतारों को माया–परवश मानते हैं और अपने गुरूओं को ब्रह्म का प्रतीक या साक्षात् ब्रह्म मानकर पूजते हुये भी माया–स्वतंत्र समझते हैं ।

सामान्यतः जिस प्रकार सगुणोपासक इस युग में अपने गुरूओं को साकार इष्टदेव से स्वरूपित करते हैं, उसी प्रकार नाथ पंथी अपने गुरू को आत्मब्रह्म का प्रतिरूप मानते हैं । 'गोरखबानी' में आत्मा को ही शरीर के भीतर स्थित गुरू और शिव कहा जाता है ।[76] वह माया से बने एक से बहुत रूपों को दिखाने वाला है ।

सारा संसार नाथ परब्रह्म का चेला है । ब्रह्म–साक्षात्कार ही ज्ञान प्राप्त करना है । इसलिये नाथ को सद्गुरू कहा गया है ।[77] क्योंकि उस ब्रह्म से सान्निध्य प्राप्त करने के कारण वह जाग्रत या ब्रह्मस्वरूप हो गया है । ब्रह्म ज्ञानी होने पर उसे किसी देव–पूजा की आवश्यकता नहीं पड़ती अपितु सभी देवता उसी की पूजा करते हैं ।[78] गोरखनाथ ऐसे ही ब्रह्म रूप गुरू मत्स्येन्द्र नाथ को स्वयं घट–घट में रह कर गुरू को भी घट–घट में देखते हैं ।

गुरू को अवतारी उद्धारकों के समान सामर्थ्यवान् प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि गुरू से बढ़कर संसार में अधिक कुछ भी नहीं है । वह सद्गुरू अपनी दया की लेशमात्र अनुकम्पा से शिष्यों एवं प्राणियों के आठों पाश काट कर आनन्दित करता है ।[80] इस्लाम में जिस प्रकार पीरों का मान है उसी प्रकार योग मार्ग में गुरू का । गुरू के बिना ज्ञान तो असम्भव है ही, उसके मिलने पर ही उद्धार की भी संभावना हो सकती है । अन्यथा प्रलय समझियें । 'कौल ज्ञान निर्णय' के अनुसार कलियुग के भीषण रौरव नरक से उद्धार करने वाला सिद्ध, कृतयुग–त्रेता और द्वापर में भी वंद्य हैं ।[81] 'नाथ सिद्धों की बानियों' नाम की पुस्तक में प्रेमदास लिखित सिद्ध वन्दना में जिन सिद्धों की वन्दना की गयी है । उनमें उपास्य अवतारी के दर्शन होते हैं । प्रारम्भ में ही निरंजन को नमस्कार करते हुये कहा गया है कि ये भरम का बिखंडन करते हैं । इनके नमस्य गुरूदेव अगम पंथ के भेदों से परिचित हैं । पुनः विज्ञान को प्रकाशित करने वाले चौरासी सिद्ध तथा परमेश्वर की साधना में लीन योगेश्वरों (जो सम्भवतः नौ नाथों के रूप में विख्यात हैं) को उपास्य रूप में नमस्कार किया गया है । चौबीस अवतारों में गृहीत कपिल और सनक–सनंदकन सिद्धों की प्रस्तुत उपास्य पैरम्परा में मिलते हैं । चौरंगी नाथ द्वारा वर्णित 'श्रीनाथाष्टक' में गोरख आदि नाथ गुरूओं की वन्दना उपास्य दष्टदेव के रूप में की गयी है । यहाँ उनके सर्वोत्कृष्ट उपास्य रूप को प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि गुरू गोरखनाथ योगेन्द्र युगपति का निगम और आगम भी यश गान करते हैं । शंकर, शेष, विरंचि, शारदा, नारद बीन बजाकर उनकी प्रशस्ति गाते हैं ।

उस उपास्य गुरू को ये निर्गुण ब्रह्म से अभिहित करते हैं ।[82]

'नाथाष्टक' में ही उनके उद्वार–कार्य का परिचय देते हुये बताया गया है कि इन्होंने सुखंश रावल के पुत्र का स्मरण करते ही यम–फांस नष्ट कर सुन्दर शरीर प्रदान किया था ।[83]

इससे स्पष्ट है कि नाथ गुरू केवल उपास्य रूप में ही पूजित नहीं होते थे, अपितु अवतारी उपास्यों के उद्धार के सदृश उनके उद्वारक रूप भी प्रचलित थे । इस युग की प्रधान अवतारवादी प्रवृत्ति उपास्य एवं उद्धार रूपों से गुरू का अत्यधिक साम्य विदित होता है ।

वैष्णव अवतारों के रूप :–

तत्कालीन युग में नाथ सम्प्रदाय यों तो योगप्रधान सम्प्रदाय था । इससे स्वभावतः वह योगियों में मान्य आदि प्रवर्तक शिव या शैवमत से धनिष्ठ सम्बन्ध रखता था। परन्तु उस पर बौद्धों और जैनों का भी न्यूनाधिक प्रभाव स्पष्ट रूप से विदित होता है ।

अवतारों की आलोचना :–

किन्तु जहाँ तक वैष्णव–प्रभाव का प्रश्न है, वहाँ नाथ सम्प्रदाय में वैष्णव धर्म और सामान्यतः वैष्णव अवतारों का विलक्षण रूप दृष्टिगत होता है । नाथ पंथी योगियों ने अपनी रचनाओं में कहीं तो अवतारवाद की भर्त्सना की है और किसी स्थल पर उसका प्रतिद्वन्दी रूप उपस्थित किया है । विशेषकर इन्होंने हिन्दू देवताओं और उनके अवतारों पर यह लांछन लगाया है कि ये सभी भोगी थे । कोई भी कामदेव को परामूत नहीं कर सका । सुग्रीव ने बालि को

मरा समझ कर उसकी स्त्री रख ली । ब्रह्मा ने सरस्वती से भोग किया । इन्द्र ने गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या से छल किया । फलतः गौतम के शाप के कारण उसके सहस्र भग हो गये । अठासी सहस्र ऋषि भी काम के प्रभाव एवं माया से अपने को मुक्त नहीं कर सके । नाट्यकला के अधिष्ठाता शिव को भी कामदेव ने नचाया । विष्णु के दशावतार भी स्त्री वाले हुये । एकमात्र योगी गोरखनाथ ने ही कामदेव को परास्त किया था ।[84] 'गोरखबानी' में पीर को लोहा तकबीर (तदवीर) अर्थात् युक्ति को ताम्बा कहा गया है । जब कि मुहम्मद चांदी और खुदा सोने के समान है । लोहा और ताम्बा जितना उपयोगी है उतना चांदी और सोना नहीं । उसी प्रकार गुरू और युक्ति जितने उपयोगी हैं, उतने मुहम्मद और खुदा या ईश्वर और अवतार नहीं । इनकी दृष्टि में सारी दुनिया उपर्युक्त दोनों के बीच गोता खाती रही है । उनसे बचने वाले केवल योगी भर हैं ।[85]

'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में संकलित 'अथ भ्रथ्री जी का श्लोक' में दशावतारों की प्रासंगिक आलोचना दृष्टिगत होती है । उन पदों के अनुसार विष्णु ने दशावतार क्रम में गर्भबास कर सम्भवतः बार–बार जन्म लेकर महासंकटों का सामना किया था ।[86] इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि विष्णु को भी अनेक बार जन्म लेने का कष्ट भोगना पड़ता है, जब कि योगी एक ही जन्म में अमर हो जाता है ।

इसी प्रकार 'गोरख सिद्धान्त संग्रह' में कापालिकों और विष्णु के चौबीस अवतारोंके बीच अदभुत संघर्ष का वर्णन किया गया है । वहाँ कहा गया है कि विष्णु के चौबीस अवतार हुये, वे अपने अपने कार्य के अन्त में मदोन्मत

हो गये । जिस प्रकार अन्य जीव–जन्तु क्रीड़ा करते हैं, वैसे ही वराह, नृसिंह आदि ने पृथ्वी को फाड़ना और जंगली जीवों को भयभीत करना शुरू कर दिया । वे नगर और गाँवों को पीड़ित करते थे । उस पर कृष्ण ने बहुत व्यभिचार फैलाया । परशुराम ने एक क्षत्रिय के दोष से सभी क्षत्रियों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया । तब इन अवतारों के आचरणों से श्रीनाथ जी ने क्रुद्ध होकर चौबीस कापालिकों के रूप में आविर्भूत होकर चौबीस अवतारों से युद्ध किया और उनके सिर काट कर हाथ में ले लिये । इसी से वे कापालिक कहलाये । सिर काटे जाने के फलस्वरूप सभी अवतार मदहीन हो गये । तब श्रीनाथ जी ने उन्हीं के कपाल उनके सिर पर रख कर जीवित कर दिये ।[87] 'नाथ सिद्धों की बानियाँ, में संकलित सतवंती के पद में सभी के मायात्मक रूप की चर्चा करते हुये रावण और राघव दोनों को मायास्वरूप बतलाया गया है ।[88]

इस प्रकार नाथ साहित्य में देववाद और अवतारवाद दोनों के विलक्षण आलोचनात्मक रूप मिलते हैं । उन्हीं आलोचनाओं में अवतारों और देवों के कहीं तो भोगी होने पर कटाक्ष है कहीं उनके पुराणगर्भित अवतारी कार्यो को विचित्र ढ़ंग से मोड़ा गया है। यों साधना की दृष्टि से भोग और योग दोनों दो प्रकार के आचरणों की अपेक्षा रखते हैं । इसी से योगियों की साधना की कथाओं में अभूतपूर्व कल्पना का पुट है । अवतारवाद की वैज्ञानिक आलोचना का इनमें अभाव है ।

उक्त रूपों के अतिरिक्त नाथ साहित्य एवं सम्प्रदाय में अवतारों

के विशिष्ट रूपों के भी दर्शन होते हैं ।

'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में 'तंत्र महार्णव' के आधार पर नौ नाथों को विभिन्न दिशाओं में स्थित बतलाया गया है । गोरखनाथ पूर्व दिशा, जगन्नाथ वन में, जालन्धरनाथ उत्तरापथ में, नागार्जुन महानाथ सप्तकोशवन में, सहस्त्रार्जुन दक्षिण गोदावरी वन में, दत्तात्रेय महानाथ पश्चिम दिशा में, आदिनाथ, भरत और मत्स्येन्द्र आदि विभिन्न दिशाओं में बतलाये गये हैं ।

उपर्युक्त चारों सूचियों से विभिन्न सम्प्रदाय के भारतीय देवताओं, आचार्यो और अवतारों का समन्वय करने की प्रवृत्ति का पता चलता है ।

'नाथ सिद्धों की बानियों' में संगृहीत 'घोडा चौली जी की सबदी' के 11वें पद में रामावतार की कथा वर्णित हुई है । उन पदों के अनुसार समुद्र में पुल बाँध कर सम्भवतः राम, रावण का वध कर लक्ष्मी सीता को घर ले आये । इसी प्रकार उसी ग्रन्थ में संकलित कतिपय पदों में वैष्णव अवतारों का प्रासंगिक उल्लेख किया है । इनके मतानुसार जिस राम ने अवतार धारण कर योग बासिष्ठ का कथन किया, उन्हें भी संसार से मुक्त होने के लिये गुरू का आश्रय ग्रहण करना पड़ा । कृष्ण ने भी भक्तिभजन के निमित्त गीता का कथन किया । इनके 70वें पद में बलि–वामन अवतार की भी प्रासंगिक चर्चा हुई हैं ।

इन पदों में राम और कृष्ण को साधारण मनुष्य जैसा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । विशेषकर रामावतार की चर्चा से केवल तत्कालीन युग के अवतारवादी प्रभाव का ही अनुमान किया जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त नाथ सम्प्रदाय में प्रचलित कतिपय ऐसे चिन्हों

एवं मूर्तियों की पूजा का उल्लेख ब्रिग्स ने किया है जो तत्कालीन अवतारवादी प्रवृत्तियों से यथेष्ट मात्रा में प्रभावित प्रतीत होते हैं । यों तो योगी द्वारा अनेक प्रकार की रूद्राक्ष की मालाओं का प्रयाग होता है किन्तु उनमें दस मुखों वाले रूद्राक्षों का सम्बन्ध दशावतारों से स्थापित किया जाता है । गोरखपंथियों के धीनोदर नामक स्थान के मठों में हनुमान् और राम की मूर्तियां मिलती हैं तथा पुरी में गरूड़ की मूर्ति स्थापित की गई है । हनुमान् एक प्रकार की टीका के रूप में भी इस सम्प्रदाय में अंकित किये जाते हैं । पश्चिम के अनेक वैष्णव भक्तों की परम्परा नव नाथों में समाविष्ट हैं । चक्र–साधना में 'शिव संहिता' 3,35 के अनुसार विष्णु के नामों का प्रयोग अनिवार्य है । यहाँ शिवराम मंडप और धीनोधर नामक स्थानों में कल्कि की मूर्ति पूजा का भी उल्लेख है ।

इससे स्पष्ट है कि शैव–शाक्त प्रधान नाथ साहित्य एवं सम्प्रदाय में अवतारों का विरोध होते हुये भी संभवतः कालान्तर में उनमें बहुत से अवतारवादी उपकरणों का प्रवेश समय–समय पर होता रहा था । उपर्युक्त साम्प्रदायिक प्रथाओं में अवतारवादी समावेशों के अतिरिक्त गोरखपंथी 'सहस्र नाम' में भी विष्णु के विभिन्न अवतारी नामों को गोरखनाथ पर आरोपित किया गया है ।

'गोरक्ष सहस्रनाम' में गोरखनाथ के प्रति यों तो शिव के ही पर्यायवाची नामों को ग्रहण किया गया है । किन्तु कतिपय स्थलों पर वैष्णव अवतारों के नाम से भी अभिहित किये गये हैं । उन पर्यायवाची नामों में वासुदेव,1 कूर्म2 वामन,3 वराह,4 राम,5 भार्गव, कल्कि, ऋषभ, कपिल,6 और

बुद्ध7 गृहीत हुये हैं ।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि अवतारों की भर्त्सना करने के बाद भी अवतार वादी प्रभाव से नाथ-पंथ और उसका साहित्य दोनों मुक्त नहीं हो सके । जाने या अनजाने विविध रूपों में वैष्णव अवतारों का समावेश उनकी साम्प्रदायिक पद्धतियों, परम्पराओं और उपास्यवादी रूपों में होता ही रहा ।

आत्मस्वरूप राम :—

नाथ–साहित्य में विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा राम के अवतार या अवतारी रूप का तो नहीं किन्तु अन्तर्यामी रूप का अथेष्ट परिचय मिलता है । 'गोरखबानी' में संगृहीत एक पद में सर्वात्मवादी आत्मस्वरूप के प्रति कहा गया है कि यही राजा राम है जिसका सभी अंगों में निवास है । यही पाचों तत्वों को सहज प्रकाशित करता है । इसके बिना पांचों तत्वों का अस्तित्व नहीं रह सकता । इसी का बोध हो जाने पर इसी में पांचों तत्व समा जाते हैं । गोरख कहते हैं कि इस प्रकार यह ब्रह्म जाना जाता है ।[89] एक स्थल पर वे कहते हैं कि 'हे अवधूत राज किससे युद्ध करूँ' विपक्षी तो कोई दिखाई नहीं देता । जिससे युद्ध करता हूँ वहीं तो आत्मस्वरूप राम है । स्वयं मच्छ–कच्छ है और स्वयं ही उनकों बंधन में डालने वाला जाल है तथा स्वयं वही धीवर, मच्छमार और स्वयं काल हैं ।[90] जीवात्मा इस विश्व में अकेले ही आता है और अकेले ही जाता है । इसी से गोरखनाथ राम में रम रहा है ।[91] इस प्रकार योगियों ने उपास्य आत्मब्रह्म के निमित्त राम का पर्याय ग्रहण किया है, परन्तु यह अवतार राम का वाचक न होकर इनमें विशेषकर परब्रह्म के आत्म रूप में गृहीत

हुआ है । वे इसी पर ब्रह्म रमता राम से चौगान का खेल खेलते हैं । तथा ब्रह्म और आत्मा में कोई भेद नहीं मानते ।[92]

नाथ सम्प्रदाय में विष्णु अवतार कपिल से सम्बद्ध एक कपिलानी शाखा भी प्रचलित है । इस सम्प्रदाय में इस शाखा के प्रवर्तक कपिल एक ओर तो विष्णु के अवतार माने गये हैं और दूसरी ओर उन्हें गोरखनाथ का शिष्य कहा गया है ।[93] नाथों में प्रचलित इधर हाल की एक कृति 'श्री सिद्धधीरजनाथ चरित्र' में इस परम्परा का विस्तृत वर्णन मिलता है । स्वयं धीरजनाथ उसी शाखाके योगियों में मान्य हैं ।

निष्कर्षतः नाथ सम्प्रदाय में विशेषकर उत्तरकाल में वैष्णव सम्प्रदायों का यत्किंचित् प्रभाव लक्षित होने लगता है, जिसके फलस्वरूप किसी न किसी रूप में इनके उपर्युक्त रूपों का अस्तित्व मिलता है ।

इसके अतिरिक्त सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य में भी अवतारवाद के संकेत प्राप्त होते हैं । जिनका द्रुततर-गति से सर्वेक्षण और सार-संक्षेप प्रस्तुत किया जा रहा है ।

बौद्ध साहित्य में अवतार भावना :-

इतिहास की दृष्टि में बुद्ध भले ही मनुष्य हों किन्तु जहाँ तक उनका सम्बन्ध धर्मविशेष से है, वे महापुरूष, बौद्धधर्म के प्रवर्तक या रास्ता मात्र नहीं अपितु लोकोत्तर पुरूष माने गये हैं । उस काल में महात्माओं और ऋषियों का जो चमत्कारी प्रभाव भारतीय जन समाज पर पड़ चुका था, बुद्ध उसके विरोधी होते हुये भी श्रद्धान्ध जन समूह के विश्वास का अतिक्रमण नहीं कर

सके । भदन्त शांति भिक्षु के अनुसार बुद्ध के जीवन में ही उनके लोकोत्तरता की प्रसिद्धि हो चली थी । जिससे चिढ कर बुद्ध ने कहा था कि इस प्रकार मेरे विषय में अनुमान करना मेरी निन्दा कर ना है ।[94]

लोकोत्तर रूप :–

कालान्तर में अनेक स्वाभाविक मानवीय जीवन को लेकर जिन भाषाओं का प्रणयन हुआ, उनमें लोकोत्तर कथाओं का समावेश बढता गया । इस लोकोत्तरीय करण का फल यह हुआ कि स्वयं बुद्ध ही अब अपने दिव्य रूप का परिचय देने लगे । ललित विस्तार के प्रसंगों में उनके दिव्य जन्म की कथाओं से उनकी अवतारोंन्मुखी प्रवृत्ति की पुष्टि तो होती ही है ।[95] साथ ही बुद्ध भी देव मंदिर में जाने के लिये कहने पर स्वयं कहते ही हैं कि मुझसे बढ़कर कौन देवता है ? मैं देवाधिदेव ही तो हूँ । जब कुमार देवकुल में जाकर ज्योहिं दक्षिण पैर रखते हैं । तभी ही अचैतन्य विविध देव प्रतिमायें उनके पैरों पर गिरकर नमस्कार करती हैं और अपने स्वरूपों का परिचय देती हैं ।[96]

बौद्ध धर्म के प्रवर्तन के क्रम में बुद्ध के शास्ता या प्रवर्तक रूप का ज्यों–ज्यों विस्तार होता गया त्यों–त्यों बुद्ध में अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियों के चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन की अवतारणा की गई । शक्र शास्ता के लिये रत्नमय चंक्रमण का निर्माण करते हैं । तथागत श्रवणों के साथ जब यमक प्रतिहार्य करते हैं– तो उनके ऊपर के शरीर से अग्निपुंज निकलता है और निचले शरीर से पानी की धारा बहती है। वे देवता और मनुष्यों को देखते–देखते छः वर्णो की रश्मियाँ छोड़ते हैं ।[97] अब उनके चमत्कारों से प्रभावित होने वाले भक्तों की

संख्या बढने लगती है । भक्त भिक्षु एक मात्र यही परामर्श देते हैं, महानाम ! 'तुम तथा–गत का स्मरण करो– वे भगवान् अर्हत्–सम्यक् संबुद्ध विद्याचरण–सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरूष सारथी, देव मनुष्यों के शास्ता हैं । विन्टरनिट्स ने महापरिनिर्वाण सूत्र (इण्डियन लिट0 जी0 2पृ0 38–41) में इनका मानवी और अतिमानवी कथाओं का संयुक्त रूप स्पष्ट किया है । इस सूत्र में बुद्ध अधिक बुद्ध होने के कारण आनन्द से दूसरे की शरण न खोजकर अपनी शरण और धर्म की शरण खोजने के लिये कहते हैं । किन्तु इसके बाद वाले अंश में कहवाया गया है कि तथागत चाहें तो कल्प भर तक ठहर सकते हैं । सेलसुत्त में सेल ब्राहाण बुद्ध में महापुरूषों के 30 लक्षणों को तो स्वाभाविक रूप में तथा अन्य दो गुह्य चिन्हों को उनके योगबल के प्रताप से देख पाता है । तत्पश्चात् वह यह देखना चाहता है कि ये बुद्ध हैं कि नहीं । वहीं सेल और भगवान् के वार्तालाप में भगवान् स्वयं कहते हैं कि लोक में जिसका बार–बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है वह मैं (राग आदि) शल्य का छेदने वाला अनुपम सम्बुद्ध हूँ ।[98]

दिव्य जन्म :–

इस प्रकार बुद्ध में एक ओर तो चमत्कारपूर्ण लोकोत्तर रूप का प्रसार हुआ और दूसरी ओर बुद्ध के जन्म को भी सदा इस लोक में दुर्लभ कहा जाने लगा । केस पुत्तिय–सुत्त में स्पष्ट कह गया है । कि जिसका सदा प्रादुर्भाव इस लोक में दुर्लभ है, वह प्रसिद्ध 'बुद्ध' आज लोक में पैदा हुये हैं । प्रस्तुत सुत्त के अतरिक्त तेविज्जज सुत्त और अम्बद्ध सुत्त में भी गीता 4.9 में प्रतिपादित ईश्वर के दिव्य जन्म और कर्म के सदृश तथागत के दिव्य जन्म और कर्म की

चर्चा होने लगती है ।

बुद्ध के इस दिव्य जन्म और कर्म पर भारतीय संस्कृति में व्याप्त पुनर्जन्म का यथेष्ट प्रभाव पड़ा । पुनर्जन्म का विरोध नहीं किया ।

पुनर्जन्म :-

फलतः उनका दिव्य जन्म बाद में पुनर्जन्म से भी प्रभावित होता गया और विष्णु के अवतारवादी जन्मों की भाँति उनके बार-बार जन्म लेने की प्रवृत्ति का विकास हुआ ।

बौद्ध धर्म की परिधि में विकसित 18 निकायो में से कतिपय निकायों ने बुद्ध के लोकोत्तर रूप और अवतारवादी जन्म को अपना लिया । लोकोत्तरवादियों के विख्यात ग्रन्थ महावस्तु में बुद्ध के अवतारवादी लोकोत्तर रूप का विस्तृत परिचय मिलने लगता है । महावस्तु में ही एक स्थल पर केवल बुद्ध को ही नहीं अपितु उनके शरीर, आहार और चीवरधारण को भी लोकोत्तर कहा गया है । वे इस मत के अनुसार माता-पिता से उत्पन्न नहीं होते अपितु इनका जन्म अलौकिकता से भरा हुआ है ।[99]

इससे स्पष्ट है कि बुद्ध में जिन लोकोत्तर तत्वों और महापुरूषों के लक्षणों का समावेश हुआ उन्हीं में उनके अवतारवादी दिव्य जन्म और कर्म की भी भावना विद्यमान थी ।

इसके अनन्तर पूर्व जन्म का प्रभाव सुत्त-कथाओं में भी दृष्टिगत होने लगता है । इन पूर्वजन्म की सुत्त-कथाओं में कभी राजा कभी ब्राह्मण आदि से बुद्ध को अभिहित किया गया है । महासुदस्सन सुत्त (दीघ0 2/4) की

कथा के अनुसार बुद्ध पूर्व जन्म में महासुदर्शन नामकेचक्रवर्ती राजा थे । इसी प्रकार महागोविंद सुत्त (दीघ0 2/6) के अनुसार पूर्वजन्म में बुद्ध महागोविन्द नामक ब्राह्मण थे ।

उपर्युक्त, तथ्यों से स्पष्ट है कि बुद्ध के प्रारम्भिक अवतारवादी रूप के निर्माण में लोकोत्तर रूप दिव्य या दुर्लभ जन्म और पुनर्जनम का विशेष योग रहा है । यह धारणा भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों के प्रतिकूल नहीं है, क्योंकि वैष्णव सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य भारतीय सम्प्रदायों के प्रवर्तक भी प्रायः इन्हीं तत्वों से प्रेरित होकर अवतार रूप में प्रचलित होते रहे हैं ।

अतएव इन तत्वों के प्रभाववश बुद्ध के विभिन्न रूपों का विस्तार हुआ, और उनके अनेक अवतार हुए ।

'बुद्ध–चरित' में बुद्ध के चमत्कारों के भी दर्शन होते हैं । बुद्ध आकाश में उड़ते हैं और पवन पथ पर चलकर हनुमान् के सदृश सूर्य का रथ हाथ से स्पर्श करते हैं, वे शरीर को एक से अनेक और अनेक से एक बनाते हैं ।

इस चरित में उनका अवतार प्रयोजन स्पष्ट विदित होता है । वे कहते है कि 'पूर्व काल में जीवलोक को अपूर्ण देखकर मैंने प्रतिज्ञा की कि स्वयं पार होने पर मैं जगत् को पार लगाऊगां और स्वयं मुक्त होने पर मैं सभी को मुक्त करूंगां । यों तो बोधिसत्वों के सदृश प्राणिमात्र का उद्धार उनका प्रमुख प्रयोजन प्रतीत होता है, किन्तु बौद्ध साहित्य में प्रचलित सम्भवतः रूप, अनुरूप और काम तीनों लोको में धर्म चक्र का प्रवर्तन इनका मुख्य अवतार कार्य रहा

है । देवर्षि दुर्लभ ज्ञान इन्होंने आर्य जगत् के हित के लिये पाया है । वे अत्यन्त करूणामय प्राणिमात्र के हितैषी उपदेशक हैं । परिनिर्वाण के समय पुनः जगत्–हित के लिये उनके जन्म की चर्चा की गई है ।[100]

इस प्रकार ऐतिहासिक बुद्ध को लेकर जिन साम्प्रदायिक और साहित्यिक चरित–ग्रन्थों का निर्माण हुआ उनमें राम कृष्ण की महाकाव्यात्मक अवतार–परम्परा गृहीत हुई है । देवताओं का सामूहिक अवतार साम्प्रदायिक चरित काव्यों में अभिव्यक्त हुआ है । बुद्ध का उपास्य रूप भी यहीं प्रतिभासित होने लगता है । जैन तीर्थकरों के सदृश इनकी अवतार कथा में स्वप्नों के प्रसंग मिलते हैं । फिर भी बुद्धों की साधनात्मक उत्क्रमणशील प्रवृत्ति और धर्म–प्रवर्तन जैसे बौद्ध अवतारवाद के दो मुख्य तत्व इनमें विद्यमान हैं ।

अवतार–प्रयोजन और अवतारी तथागत बुद्ध :–

'ललित विस्तर' में केवल बुद्ध के अवतरित रूप का ही प्रतिपादन नहीं हुआ अपितु अनेक अवतार प्रयोजनों से भी उन्हें सन्निविष्ट किया गया । उनके जीवन के मूल आदर्श ही अनेक अवतार–कार्यो के रूप में प्रचलित हुये । ये धर्म प्रवर्तक, दुःख त्राता, अपने कार्य और चरित्र में आदर्श, अनन्त प्रज्ञावान्, वैद्य सम्राट्, अमरत्व प्रदान करने वाले, युद्धवीर, दुष्टों को मारने वाले, साधुओं के सच्चे मित्र तथा कल्याणकर्ता और मोक्षदाता माने गये हैं । ये समाज कल्याण, संसार की समृद्धि देवता और मनुष्य की तुष्टि, महायान का प्रसंग तथा बोधिसत्वों को प्रोत्साहित करने के लिये प्रादुर्भूत होते हैं । धर्म प्रवर्तन के लिये तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध आदि का रूप धारण करते हैं । इस प्रकार

अवतारवाद की उपयोगितावादी विचारधारा ने बौद्धधर्म में प्रचलित 'बहुजन–हिताय, बहुजन कामाय देवानां च मनुष्याणां च सर्वसत्ता–नुदिश्य' के हेतु साम्य के आधार पर अपने मार्ग का उत्तरोत्तर विकास किया । अतः शाक्य मुनि करूणा। वश जिस प्रयोजन से अवतरित होते हैं उसमें केवल धर्म प्रवर्तन ही नहीं अपितु 'जब–जब होंहि धरम की हानि' का भाव भी विद्यमान है । इसकी रूप रेखा 'आर्य मंजूश्री मूलकल्प' में मिलने लगती है । इस तंत्र के अनुसार जब अधर्मी लोगों से सत्वों के जीव संकटग्रस्त हो जाते हैं, राज्यों में नित्यअव्यवस्था होने लगती है । राजा दुष्ट चित्त वाले हो जाते हैं । मनुष्य–मनुष्य से द्वेष करने लगता है । धर्मकोशों की मर्यादा नष्ट होने लगती है, तब युग–युग में बुद्ध अवतरित होकर उन्हें अनुशासित करते है और बालदायक रूप में सर्वत्र विचरते हैं ।

तथागत बुद्ध का अवतारवाद :–

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि बुद्ध में ज्यों–ज्यों अवतारवादी तत्वों का साम्प्रदायिककरण होता गया त्यों–त्यों उनका ऐतिहासिक रूप लुप्त होता गया । बौद्ध साहित्य में इस साम्प्रदायिक रूप का धोतक तथागत सबसे अधिक प्रचलित हुआ । तथागत बुद्ध पूर्णतः साम्प्रदायिक उपास्य रूप में गृहीत हुये । इन्हें नित्य ब्रह्म की समकक्षता प्रदान की गई । तुषित लोक के नित्य निवासी तथागत बुद्ध के विषय में 'लंकावतार सूत्र' में तो यहाँ तक कहा गया कि तथागत बुद्ध का अवतारी उपास्यों के सदृश प्राकट्य होता है जन्म नहीं । वे गर्भ में नहीं अवतरित होते अपितु उनका दिव्य प्रादुर्भाव होता है ।[101]

इससे यह प्रतीत होता है कि बौद्ध साहित्य में प्राप्त अवतार

भावना और अवतारवाद का विकास मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवतारवाद के विकास का एक स्रोत रहा है ।

जैन साहित्य में अवतार भावना :–

जैन साहित्य में ऋषभ आदि तीर्थकरों का उपास्य रूप अधिक ग्राह्य हुआ है । इसलिये स्वभावतः वे अपने सम्प्रदाय में देवाधिदेव परमात्मा के रूप में गृहीत हुये हैं । परन्तु पुष्पंदत के महापुराण में अनेक स्थलों पर इन्हें पौराणिक देवों की अपेक्षा विष्णु से अधिक अभिहित किया गया है । यह तद्रूपता कतिपय स्थलों पर इतनी स्पष्ट है कि कवि इन्हें वीतराग और सर्वज्ञ आदि जैन वैशिष्ट्यों के द्वारा पृथक् करते हैं ।

मध्यकालीन सगुण भक्ति साहित्य में राम और कृष्ण के जिन अवतारी रूपों का प्रचार है उसमें उपास्य तत्व का प्रधान होने के कारण वे स्वयं राम कृष्ण आदि परब्रह्म रूप से सीधे अवतार धारण करते हैं । त्रिदेवों में मान्य विष्णु का रूप वहाँ गौण हो जाता है । फिर भी उनमें परम्परा की अवहेलना नहीं दीख पड़ती है । वे राम और कृष्ण के स्वयं अवतारी होते हुये भी, महाकाव्यों एवं पुराणों से आती हुई क्षीरशायी विष्णु की अवतरित होने वाली परम्परा में उनके विष्णु–अवतार का उल्लेख अवश्य करते हैं ।

परन्तु जैन साहित्य की परम्परा भिन्न होने के कारण तीर्थंकर स्वयं जिन रूप से मनुष्य भव में प्रवेश करते हैं । साधारणतः विष्णु की परम्परा में आविर्भूत होने का उल्लेख जैन साहित्य में नहीं मिलता । फिर भी महापुराण में वर्णित तीर्थकरों में कतिपय ऐसे चिन्ह या संकेत मिलते हैं । जिनके आधार

तृतीय अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार-परम्परा

तृतीय अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार-परम्परा

अवतार – परिगणन :–

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में जो दशावतारों की परम्परा परिलक्षित होती है, उसका प्रारम्भिक परिचय महाभारत और पुराण साहित्य में अधिगत होता है । महाभारत के अन्तर्गत प्राप्त नारायणीयोपाख्यान में कुछ अन्तर के साथ 4,6,10 के क्रम से अवतारों की तीन सूचियाँ मिलती है । इस उपाख्यान के विश्लेषण में प्राच्य–विद्या–विशारद श्री भंडारकरने महाभारत 12.339.76–98 में उपलब्ध वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथिराम और कृष्ण इन छह अवतारों को प्रथम सूची में स्वीकार किया है ।[1] पुनः दूसरी सूची महाभारत 12.239,103–104 में हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि को मिलाकर दशावतार का क्रम प्रस्तुत किया गया है, जिससे अवतारों की संख्या दश हो जाती है । इसके आगे यदि पुराण साहित्य को देखा जाये तो उसमें उक्त अवतारों की संख्या और क्रम दोनों ही दृष्टियों से अधिक विषमता दिखायी देती है ।

डॉ0 भंडारकर ने 'हरिवंश' और 'वायुपुराण' की सूचियों की तुलना करने पर उनकी संख्या और नाम सम्बन्धी दोनों प्रकार की विषमताओं का संकेत किया है ।[2] एक ओर विष्णु पुराण में जहाँ दशावतारों का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, वहीं अग्नि–पुराण और वराह पुराण इत्यादि पुराणों में मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि का क्रम मिलने लगता है । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक यही क्रम प्रचलित

दिखायी देता है । 'श्री मद्भागवत महापुराण', 10.2.40 में श्रीकृष्ण को छोड़कर इसी क्रम से 9 (नव) अवतारों का उल्लेख प्राप्त होता है । भागवत पुराण 10–40–16 और 22 में 10 अवतारों की संख्या पूरी करने के लिये हयग्रीव या चतुर्व्यूह का नाम जोड़ा गया है । और श्री कृष्ण को साक्षात् भगवान् ही माना है । 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' ।

दशावतार सम्बन्धी महाकाव्यों और पुराणों के उक्त उल्लेख के अतिरिक्त देवगढ़ में निर्मित दशावतार मन्दिर प्राप्त होता है जो गुप्तकाल के निकटवर्ती काल में प्रचलित दशावतारों की उपासना का परिचय देता है । विद्वज्जन इसका समय ईसा की छठी शताब्दी मानते हैं ।[3] राजा लक्ष्मण सिंह के काल में भी दशावतारों की मूर्तियों के निर्माण का पता चलता है ।[4] अपने ग्रन्थ 'पूर्व कालीन भारत' पृष्ठ 161 में श्री वासुदेव उपाध्याय ने दशम शताब्दी में दशावतारों की मूर्तियों के बहुशः निर्माण का उल्लेख किया है । 'पृथ्वीराज विजय' नामक महाकाव्य में भी दशावतारों के प्रचलन का उल्लेख प्राप्त होता है ।[5]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र और गीतगोविन्दकार जयदेव के पूर्व ही भारत के बहुत बड़े क्षेत्र में धार्मिक मान्यताओं के अन्तर्गत दशावतारों का महात्वपूर्ण स्थान बन चुका था, जिसके फलस्वरूप मध्यकाल में नाथ, संत, सूफी, कृष्ण और राम प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों के व्याप्त रहने पर भी विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक दशावतारों से सम्बद्ध विषय–वस्तु से गुम्फित शब्द–रचना की अविच्छिन्न परम्परा

प्राप्त होती है ।

प्राच्य–विद्या-विशारद श्री भंडारकर ने 'अमि-गति' नाम के एक दिगम्बर जैन द्वारा विरचित 'धर्म-परीक्षा' नाम की एक पुस्तक में दशावतारों पर एक श्लोक प्राप्त किया था । इस पुस्तक का समय 1070 ई0 है । वह श्लोक निम्नवत् है–

मीनः कूर्मः पृथुः प्रोक्तोनारसिंहोऽथ वामनः ।

रामो, रामश्च, बुद्धश्च कल्किकिश्चदश स्मृताः ।।[6]

इसमें मत्स्य, कूर्म पृथु, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि के नाम आये हैं जो मध्यकालीन परम्परा से किंचित् भिन्न प्रतीत होते हैं । इसके कुछ समय पश्चात् काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र प्रणीत 'दशावतार चरित' नामक एक काव्य जातीय ग्रन्थ मिलता है, जिसमें उन्होंने दशावतारों का निम्नवत् उल्लेख किया है–

मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरूषहरिवपुर्वामनो जामदग्न्यः ।

काकुत्स्थः कंसहन्ता सच सुगत–मुनिः कल्किनामा च विष्णुः ।[7]

इसमे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि का उल्लेख हुआ है ।

इसके पश्चात् बंगाल के कविशिरोमणि जयदेव (12वीं शताब्दी) ने अपने प्रसिद्ध गीत काव्य 'गीत–गोविन्द के प्रारम्भ में दशावतारों का पृथक्–पृथक् श्लोकों में वर्णन किया है और इन पद्यों के अन्त में पुनः दशावतारों का समाहारात्मक वर्णन किया है और उनकी स्तुति की है ।[8] इसमें मत्स्य, कूर्म,

वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि ये श्री कृष्ण के दशविध अवतार माने हैं ।[9]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश और धर्म दोनों के अन्तर्गत मध्यकाल में दशावतारों की धारणा व्याप्त हो चुकी थी । इसके अतिरिक्त जैन और बौद्ध कवियों ने भी दशावतारों को विष्णु का अवतार माना है, परन्तु गीत-गोविन्दकार जयदेव इन अवतारों को श्री कृष्ण का ही अवतार मानते हैं । यद्यपि दशावतारों के क्रम में पर्याप्त भेद मिलते हैं, किन्तु मध्यकाल में विशेष रूप से कविवर 'जयदेव' और 'क्षेमेन्द्र' दोनों की परम्परायें अधिक प्रचलित दिखायी देती हैं । इस युग में दशावतारों की व्यापकता का उदाहरण मध्यकालीन जैन कवि प्रभाचन्द्राचार्य विरचित 'प्रभावक चरित्र' में दृष्टिगत होता है, जिसमें उन्होंने जैन स्वामी पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुये दशावतारों से उनकी तुलना की है।[10]

इसी युग के महाकाव्य 'पृथ्वीराज-विजय' में दशावतारों पर कतिपय स्थलों पर प्रासंगिक उल्लेख हुआ है ।[11] राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ हिन्दी काव्यधारा में 13वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के एक कवि संभवतः वृन्द की कविताओं का उदाहरण दिया है जिनमें कूर्म वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, नारायण, बुद्ध और कल्कि का उल्लेख हुआ है ।[12] 'गोरखबानी' में विष्णु के दशावतारों की चर्चा की गई है ।'नाथ सिद्धों की बानियां' के एक पद में दशावतारों का प्रासंगिक उल्लेख भर्तृहरि के संवाद में हुआ है । वहां विष्णु के अवतार जनित कष्टों का वर्णन किया गया है । उसमें कहा गया है कि-विष्णु ने दश अवतार क्या धारण किये ? उसे गर्भ में निवास कर पुनर्जन्म सम्बन्धी

महासंकट का सामना करना पड़ा ।[13]

धर्म-पूजा-विधान और दशावतार :-

मध्यकाल में बौद्ध धर्म से प्रभावित धर्म ठाकुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पंडित भी वैष्णव उपादानों से प्रभावित प्रतीत होते हैं । इस सम्प्रदाय की प्रमुख पुस्तक 'धर्म पूजा विधान' (12वीं शताब्दी) में साम्प्रदायिक रूप में दशावतारों का विवरण प्राप्त होता है । इसके अनुसार दशावतार का प्रथम सम्बद्ध परम कारण निरंजन देव से बतलाया गया है और कहा गया है कि उसने मीन अवतार ग्रहण कर वेदों का उद्धार किया था और उन्हें स्वयं भू सदन में प्रस्तुत किया था ।[14] इस प्रकार वही प्रभु चक्रपाणि देव जगन्नाथ हैं जिसने कूर्म रूप में अवतार लेकर पृथ्वी को अपने सिर पर धारण किया था ।[15] यह स्मरणीय है कि धर्म मंगल साहित्य में इन्हीं जगन्नाथ को कूर्म रूप से अभिहितकिया जाता था । कूर्मावतार से सम्बन्धित इसके कतिपय पदों में जगन्नाथ से ही उन्हें जाना जाता रहा है ।[16] यहां पर जगन्नाथ निरंजन के पर्याय ही माने गये हैं । उन्होंने वराह रूप में सम्पूर्ण पृथ्वी को वसुन्धरा का रूप प्रदान किया है और नृसिंह रूप में वे ही हिरण्य-कशिपु का वध कर प्रह्लाद का कष्ट दूर करते हैं ।[17]

वामन रूप धारण करके उन्होंने बलि को भ्रम में डाल दिया था और उससे धरा का दान ग्रहण किया था । उन्होंने ही भृगुवंशी परशुराम होकर पृथ्वी को क्षत्रिय हीनकर दिया था और बलराम के रूप में अवतरित होकर मूसल के द्वारा उन्होंने असुरों का संहार किया था । उन्होंने ही रामावतार के रूप में सागर में सेतु निर्माण कर रावण का वध और कपियों की सहायता से जनक

नन्दिनी सीता का उद्धार किया था ।

नवम अवतार में जगन्नाथ के रूप में समुद्र के किनारे उन्होंने निवारा किया था । यहां नवम अवतार में जगन्नाथ के साथ बुद्ध का भी प्रयोग हुआ है तथा 10 वें अवतार का नाम इसमें कल्कि बतलाया गया है । कल्कि युग में चारो वर्ण एकाकार हो गये थे और सभी लोग धर्म पथ से विमुख हो रहे थे । उस समय कल्कि ने ही धर्म की रक्षा की थी ।[18]

धर्म–पूजा विधान के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वैष्णवेतर सम्प्रदायों में जिन समन्वयवादी पद्धतियों का विकास हो रहा था, उसके फलस्वरूप अन्य सम्प्रदायों में भी दशावतारों को स्वीकार किया गया । इन सम्प्रदायों में विष्णु के नाना अवतारों को केवल अवतार मात्र ही नहीं माना गया अपितु उपास्य के रूप में नित्य पूजित और भक्तों का उद्धार करने वाले अवतार विग्रह के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त रही है ।

पृथ्वीराज रासो और दशावतार :–

मध्यकालीन हिन्दी महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के दशम अध्याय में विस्तार पूर्वक दशावतारों का वर्णन प्राप्त होता है ।[19] इस महाकाव्य के आलोचक डॉ0 नामबर सिंह के कथनानुसार–पृथ्वीराज रासो की प्रायः सभी हस्त लिखित प्रतियों में दशावतारों का उल्लेख प्राप्त हुआ है । इस महाकाव्य के दशम अध्याय के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी दशावतारों का उल्लेख मिलता है ।[20] इसमें कृष्ण के स्थान पर गदाधर बलराम का वर्णन मिलता है तो यह क्रम गीतगोविन्दकार जयदेव की परम्परा से सम्बद्ध प्रतीत होता है क्योंकि इसमें

राधा—कृष्ण के श्रृंगारी रूप का मधुर वर्णन और श्रीकृष्ण की अन्य ललित लीलाओं का सुमधुर चित्रांकन प्राप्त होता है ।[21]

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के निर्गुण और निराकार ईश्वर के उपासक संत भक्तों के पदों में भी दशावतारों का कहीं प्रासंगिक और कहीं विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है । यद्यपि निर्गुण और निराकारवादी ये सन्त अवतारवाद और दशावतार के विरोधी रहे हैं किन्तु इनमें से कुछ ऐसे भी संत हुये हैं जो सगुणोपासक भक्तों की भांति दशावतारों का विस्तृत वर्णन करते हैं । यह कहना न होगा कि समस्त भारतीय भक्ति—काव्यों में दशावतारों के पक्ष और विपक्ष रूप देखे जा सकते हैं ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कतिपय सन्तों की कुछ रचनाओं में दशावतारों की चर्चा स्पष्ट रूप से की गई है ।

कबीरदास और दशावतार :—

निर्गुण भक्त कवियों में प्रमुख कबीर के साहित्य में दशावतारों की निन्दापरक कतिपय पद मिलते हैं । जिस प्रकार कबीरदास ने अन्य रूढ़ियों का खण्डन किया है, उसी प्रकार उन्होंने दशावतारों का भी खण्डन किया है। 'कबीर बीजक' में संगृहीत एक पद में उन्होंने यह कहा है कि जो अवतरित होकर पुनः लुप्त हो जाते हैं । वे ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते हैं । यह सब माया का कार्य है ।[22] उनका कथन है कि न तो कभी मत्स्य और कूर्म का अवतार हुआ है और न शंखासुर का संहार हुआ है । इसी प्रकार किसी वराहावतार ने कभी पृथ्वी धारण नहीं की । उनके अनुसार हिरण्यकशिपु को

नख से विदारित करने वाला कोई अवतार नहीं हुआ है और न तो वामनावतार ने कभी बलि से छलकर पृथ्वी को दान में लिया है । परशुराम ने भी कभी क्षत्रियवंश का संहार नहीं किया । यह सब माया का प्रपंच है ।[23] इसी प्रकार गोपीग्वालों से घिरे हुये कृष्णावतार और कंसवध की कथायें माया की रचनायें हैं । न कभी बुद्ध हुये, न कभी बुद्धावतार हुआ, न कल्कि अवतार ही हुआ तथा न असुरों का संहार हुआ । इसी प्रकार कबीर के अनुसार दशावतारों की सम्पूर्ण सृष्टि माया की रचना है और मिथ्या है ।[24] कबीर रचनावली के एक पद में कहा गया है कि ये दशावतार निरंजन कहें जाने पर भी अपने नहीं हो सकते क्योंकि इन्होंने भी साधारण मनुष्यों की भांति अपने-अपने कर्मो का फल भोगा है ।[25]

मलूकदास और दशावतार :-

इसी प्रकार कबीर के ही समान अन्य निर्गुण शाखा के सन्त कवियों ने दशावतारों की आलोचना की है । मलूकदास दशावतारों के विषय में सन्देह करते हैं । ये आश्चर्यपूर्ण ढ़ंग से पूँछते हैं कि ये दशावतार कहां से आये हैं और किस विधाता ने इनकी रचना की है ? उनके अनुसार ऐसे रूप अनेक हैं और इन रूपों के भ्रम में कभी भी नहीं पड़ना चाहिये ।[26]

संत कवि रज्जब दशावतारों की संख्या पर सन्देह करते हैं । वे अवतारों की 10 और 24 संख्या से आक्रोशित हो जाते हैं और कहते हैं कि वह ईश्वर अकेला है और सभी का शिरोमणि है ।[27] संत कवि सुन्दर दास के मतानुसार ये अवतार दूसरे की रक्षा कैसे कर सकते हैं । जिन दशावतारों के अवतार का वर्णन किया जाता है वे स्वयं काल के ग्रास बन गये हैं ।[28]

निर्गुण और निराकार सन्त कवियों की दशावतार सम्बन्धी उक्त आलोचना से स्पष्ट है कि उनके युग में समाज में दशावतारों की उपासना का व्यापक प्रचार था । इसीलिये उन्होंने दशावतारों की इतनी कड़ी आलोचना की है । इन पदों से यह भी स्पष्ट होता है कि उक्त दशावतार समाज में परब्रह्म के अवतरित उपास्य रूप के रूप में पूजित और वन्दित रहे हैं । तभी तो इन निर्गुण सन्त कवियों ने अपने शाश्वत, सनातन और निराकार ईश्वर के साथ अवतारों की नश्वरता और मानवोचित कार्यों का विरोधात्मक वर्णन किया है ।

गुरू ग्रन्थ-साहब और दशावतार :-

मध्यकाल में उपर्युक्त निर्गुण पंथी आलोचक सन्तों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सन्त दृष्टिपथ में अवतरित होते हैं जिन्होंने अपनी रचना में अवतारवाद का अस्तित्व स्वीकार किया है । 'गुरू ग्रन्थ साहब' में गुरू अर्जुन का एक ऐसा पद मिलता है जिसमें उन्होंने अपने उपास्य के अनेक विष्णुदेव के वाचक पर्यायों का प्रयोग किया है । उन्होंने बिना क्रम के ही दशावतारों में से आठ अवतारों का उल्लेख किया है ।[29] इन्होंने बुद्ध और कल्कि दो अवतारों को छोड़ दिया है । इसके अतिरिक्त हिन्दी को 'मराठी सन्तों की देन' नामक पुस्तक में 17 वीं शताब्दी के दो मराठी सन्तों की रचनाओं में दशावतारों का उल्लेख हुआ है । मराठी सन्त देवदास की एक स्फुट रचना में राम–कृष्ण दोनों का अवतार मानकर उन्हें दशावतार रूप में अवतरित होने वाला बतलाया गया है । इसी प्रकार इनके समकालीन लक्ष्मण पाठक के ललित संग्रह नामक स्वाँगों में दशावतार परक सम्वाद मिलते हैं । इन वार्तालापों में दशावतारों की चर्चा के

साथ-साथ उनके दुष्टसंहारक और दीन जनों के उद्धार जैसे प्रयोजनों का उल्लेख हुआ है ।[30]

इसी प्रकार बंगाल के 17वीं शताब्दी के कवि मयूर भट्ट की रचना श्री धर्म-पुराण में दशावतारों का उल्लेख मिलता है । इस ग्रन्थ में धर्म के अनेक विग्रह रूपों की चर्चा हुई है । इसमें पूर्व के दशावतार रूप का प्रासंगिक उल्लेख हुआ है ।[31] इस पुराण के अनुसार धर्म सम्प्रदाय के प्रवर्तक जब निरंजन की स्तुति करते है तब अपने उपास्य को ब्रह्म सनातन, परमेश और परात्पर आदि कहने के पश्चात् मत्स्यादि मूर्तियों में अवतरित भगवान् का चित्रण करते हैं । उनके अनुसार वह कभी साकार और कभी निराकार हो जाता है । यहाँ धर्म पुराण के उल्लेख करने का तात्पर्य यह है कि मध्यकाल में हिन्दी से इतर क्षेत्र के सम्प्रदायों में भी दशावतारों का प्रर्याप्त प्रभाव था ।[32]

मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने यद्यपि दशावतारों पर कोई अपनी रचना प्रस्तुत नहीं की है परन्तु उन्होंने अपनी पदावली में अनेक स्थलों पर अपने आश्रय दाता शिव सिंह रूप नारायण को एकादशअवतार के रूप में चित्रित किया है ।[33] विद्यापति के इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि विद्यापति के युग में समाज में दशावतार की परम्परा प्रचलित थी । यह संभव है कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कविवर जयदेव के समान दशावतार सम्बन्धी कोई रचना की हो जो अभी तक हस्तगत नहीं है ।

विद्यापति के समकालीन बंगाल के प्रसिद्ध भक्तकवि चण्डीदास अपने श्रीकृष्णकीर्तन नामक पद संग्रह में दशावतार सम्बन्धी वर्णन करते हैं

जिसके अनुसार मीन, कूर्म, वराह, नरहरि, वामन, परशुराम, श्रीराम, बुद्ध और कल्कि के रूप में सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के कार्य किये गये हैं । इस प्रकार धर्म की स्थापना हुई । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सन्त कवि चण्डीदास का यह दशावतार वर्णन तत्कालीन प्रचलित परम्परा का ही अनुगमन है । इसमें एक ओर अवतार तथा संक्षेप में उनका प्रयोजन भी बतलाया गया है । इसमें बुद्ध निरंजन का चिन्तन करने वाले के रूप में चित्रित किये गये हैं ।[34]

'रागकल्पद्रुम' में प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन के पूर्व के एक गायक बैजू बावरा की एकादशावतार सम्बन्धी रचनायें मिलती हैं ।[35] इस पद में उन्होंने मत्स्यावतार से लेकर कल्कि अवतार तक का वर्णन किया है । इन सब उद्धरणों से विदित होता है कि दशावतार की परम्परा आगे चलकर रूढ़िबद्ध हो गयी थी और मध्यकालीन समाज में दशावतारों की प्रतिष्ठा बद्धमूल हो गयी थी ।

सूरदास और दशावतार :-

सन्त कवि सूरदास के सूरसागर में यद्यपि क्रम से दशावतारों के नाम प्रयुक्त हुये हैं परन्तु 10 संख्या की परम्परा का पालन नहीं हुआ । उनके पदों में एक साथ मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम और राम की चर्चा हुई है ।[36] श्रीकृष्णवतार के पूर्व के अवतारों को अभिव्यक्त करने की यह प्रवृत्ति श्रीमद्भागवत में भी दिखायी देती है ।[37] सूरसागर में अलग-अलग पदों में दशावतार सम्बन्धी पद प्राप्त नहीं होते हैं । सूरसागर पृष्ठ 126 पद 36 में 10

अवतारों का एक साथ वर्णन किया गया है और पुनः उसी पद में 14 अवतारों का भी वर्णन किया गया है । इससे यह सिद्ध ही हो जाता है कि कविवर सूरदास तत्कालीन युग में प्रचलित दशावतार परम्परा से भली भाँति परिचित थे । सूर के अतिरिक्त परमानन्ददास के नाम से 'राग—कल्प द्रुम' नामक ग्रन्थ में दशावतारों पर एक पद मिलता है । उसमें दशावतार धारण करने वाले पुरूषोत्तम श्री कृष्ण तथा अवतार क्रम मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, राम, नृसिंह, परशुराम बुद्ध और कल्कि के नाम से मिलता है ।[38] वैसे सूरदास ने श्रीकृष्णवतार के बाल रूप का वर्णन अपने ग्रन्थ 'सूरसागर' में विविधता के साथ किया है । ये सगुणोपासक सन्त कवि हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर ब्रज भाषा में अपने मधुर भावों का गुम्फन किया है । सूर के ग्रन्थों में न केवल अवतारवादी विचार मिलते हैं प्रत्युत यत्र—तत्र स्फुटित पदों में दशावतार से परिचित होने का संकेत मिल जाता है ।

तुलसीदास और दशावतार :—

महाकवि तुलसीदास सगुणोपासक सन्त-कवि-शिरोमणि हैं । उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विनय—पत्रिका' में अपने इष्ट देव श्री राम की दशावतार-परक स्तुति की है । इस पद में उनका कथन है कि कोशलाधीश जगदीश जगत् हित के निमित्त अपनी विपुल लीला का विस्तार करते हैं । वे क्रमानुसार मत्स्य, वराह, कमठ, मृगराज वपु, वामन, परशुधर, राम, राधारमण, बुद्ध और कल्कि का वर्णन करते हैं ।[39]

दशावतारों के रूप में इष्ट देव के अवतार की परम्परा विभिन्न

साम्प्रदायिक पुराणों की देन है । इनमें इष्ट देवों की दशावतार-परक स्तुतियाँ की गई है । जैसे—कल्कि पुराण में भविष्य में होने वाले अवतार पुरूष कल्कि की भी दशावतार-परक स्तुति की गई है । श्री रूपकला जी ने भक्तमाल में तुलसीदास का दशावतारों से सम्बद्ध एक दोहा उद्धृत किया है, जो नागरी–प्रचारिणी सभाकाशी से प्रकाशित तुलसीग्रन्थावली में उपलब्ध नहीं होता है । इस दोहे में यह कहा गया है कि दो अवतार वनचर हैं, दो अवतार वारिचर हैं, चार अवतार विप्रवंशी हैं और दो राजवंशी हैं । इस प्रकार उक्त दशावतारों को चार वर्गो में विभाजित किया है ।[40]

यद्यपि तत्कालीन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का अवतार सम्बन्धी वर्गीकरण दृष्टिगोचर नहीं होता है किन्तु श्री वल्लाभाचार्य ने श्रीमद्भागवत महापुराण 10.2.40 श्लोक की व्याख्या करते हुये अपनी प्रसिद्ध टीका 'श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध प्रबोधिनी' में उक्त अवतारों को जलजा, वनजा और लोकजा के रूप में विभक्त किया है ।[41] इसी प्रकार तुलसीदास के अनन्तर कविवर श्री केशवदास ने 'राम-चन्द्रिका' में राम-चन्द्र की स्तुति करते हुये दशावतारों का वर्णन किया है ।[42] यहाँ पर उन्होंने राम को ही दशावतारों के रूप में अवतरित होने वाला बतलाया है । इन्होंने अवतारों में सर्वप्रथम कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम कृष्ण, बुद्ध और कल्कि का क्रम वर्णित किया है । इन्होंने रामावतार के पश्चात् आने वाले अवतारों के लिये भविष्यत् काल का प्रयोग करते हुये कहा है कि तुम्ही पुनः कृष्ण रूप धारण कर, दुष्टों का दमन कर भू—भार हरोगे, बौद्ध होकर दया करोगे और पुनः कल्कि रूप

में म्लेच्छ समूह का नाश करोगे ।[43]

इसके अतिरिक्त तत्कालीन अन्य कवियों ने भी श्रीराम के द्वारा दशावतार धारण सम्बन्धी पदों का वर्णन किया है । 'रागकल्प द्रुम' में संगृहीत एक कवि कन्धरदास का पद मिलता है । जिसके अनुसार राम चन्द्र ने मीन रूप में शंखासुर का वध कर ब्रह्मा को वेद प्रदान किया था और देवताओं का कार्य किया था । कच्छप रूप में मन्दराचल को पीठ पर धारण किया था और उन्होंने ही नृसिंह अवतार में प्रह्लाद की प्रतिज्ञा पूरी की थी । इन्होंने ही वामनावतार में बलि का बन्धन किया था और परशुराम अवतार में पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया था । रघुवंश को उज्जवल करने वाले यही हैं । ये ही नागर कृष्णानन्द हैं, बुद्ध और कल्कि इन्हीं के रूप हैं ।[44]

इस प्रकार दशावतार परम्परा के क्रमिक अध्ययन से मध्यकालीन हिन्दी साहित्य सम्बन्धी कतिपय मान्यताओं पर प्रकाश पड़ता है । यह कि उद्गम की दृष्टि से दशावतारों का उद्भव महाभारत से माना जा सकता है । क्योंकि अवतारों से चार, छः और दश का क्रम जो महाभारत में मिलता है उससे दशावतारों के क्रमिक विकास का पता चलता है । पौराणिक साहित्य के दशावतार रूपों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनतम पुराणों में दशावतारों की दश संख्या के प्रति विशेष महत्व दिखायी नहीं देता है परन्तु परवर्ती पुराणों में दशावतारों की संख्या रूढ़ सी हो गयी है । इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में जो भी दशावतार सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है वह महाभारत और पुराणों से प्रभावित है ।

कविवर चन्दबरदायी तथा धर्म ठाकुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पण्डित द्वारा वर्णित दशावतारों से यह विदित हो जाता है कि दशावतारों का मध्यकाल में भी लोक-व्यापी प्रचार और प्रसार हो चुका था और दशावतार सम्बन्धी विचार की भौगोलिक सीमा विस्तृत हो गयी थी ।

हिन्दी में दशावतारों की परम्परा रीतिकालीन युग तक मिलती है । हिन्दी की दशावतार परम्परा के मधुर वर्णन में निर्गुण सगुण भक्तकवियों तथा रीति कालीन कवियों का विशिष्ट योगदान रहा है । सगुण या निर्गुण दोनों शाखाओं के भक्त कवि पक्ष या विपक्ष में दशावतारों की चर्चा किसी न किसी रूप में करते हैं । विरोधी सन्तों की आलोचना से तथा तत्कालीन प्रयुक्त अवतारवादी स्वाँगों से भी दशावतार परम्परा की लोकप्रियता ही सिद्ध होती है । इसमें सन्देह नहीं है कि दशावतार परम्परा का उत्कर्ष जैसा कि संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के अनुशीलन से विदित होता है, 8वीं से लेकर 17वीं शताब्दी तक अविच्छिन्न रहा है । चन्ददास बरदाई से लेकर मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के संत कवियों के युग में दशावतारों का उत्कृष्ट काल रहा है । कालान्तर में इस लोकप्रियता का ह्रास ही दिखायी देता है । इस ह्रास का मुख्य कारण संत सम्प्रदायों की विरोधी भावना रही है । इसके अतिरिक्त राम और कृष्ण इत्यादि विशिष्ट अवतारों की अधिक लोक-प्रियता भी एक कारण मानी जा सकती है ।

सामूहिक अवतार–भावना :–

उपर्युक्त अनुशीलन परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पर ब्रह्म का ही दशावतार के रूप में अवतरण होता है जिसका वर्णन महाभारत

रामायण के अतिरिक्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में हुआ था । किन्तु इसके अतिरिक्त उपर्युक्त साहित्य में अन्य देवों के सामूहिक रूप में अवतरित होने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है । अवतारवाद की अन्य सामान्य प्रवृत्तियों के समान सामूहिक अवतार की प्रवृत्तियां परम्परागत तत्कालीन प्रभाव रखते हुये भी परस्पर किसी न किसी रूप में सम्बद्ध प्रतीत होती हैं । वाल्मीकि रामायण की परम्परा में जिसका सम्बन्ध रामावतार की कथा से हैं, सामूहिक अवतार के उदाहरण प्राप्त होते हैं । कृष्ण कथा से सम्बन्धित महाभारत में तथा अन्य हरिवंश, विष्णु और भागवत पुराणों में भी सामूहिक अवतार के प्रसंग प्राप्त होते हैं । प्रयोजन की दृष्टि से सभी ग्रन्थों में भू—भार हराण और देव-शत्रुओं का वध अवतारों के मुख्य प्रयोजन माने गये हैं । साधारण रूप से पृथ्वी अत्याचारों से भारान्वित होकर देवताओं के पास जाती है तथा देवता ब्रह्मा के पास और ब्रह्मा देवताओं के साथ परब्रह्म विष्णु के पास जाते हैं । वहाँ भू—भार हरण आदि कार्यो के लिये विष्णु के साथ—साथ अन्य देवताओं के सामूहिक रूप से अवतरित होने की योजना बनती है ।[45]

सामूहिक अवतारों में विष्णु के साथ जो देवता भाग लेते हैं उनमें तत्कालीन यक्ष, नाग, इन्द्र, सूर्य वायु और ब्रह्मा इत्यादि देवताओं की प्रधानता होती है । इस प्रकार ब्रह्मा का अवतार जाम्बवान् के रूप में, इन्द्र का बालि के रूप में, सूर्य का सुग्रीव के रूप में, विश्वकर्मा का नल के रूप में , अग्नि का नील के रूप में, वरूण का सुषेण के रूप में, मरूत का हनुमान् के रूप में अवतरण होता है ।[46] इसी प्रकार गोस्वामी तुलीदास ने भी अपने महाकाव्य श्री राम-चरित

मानस के बाल काण्ड में विष्णु के अवतारी श्री राम के साथ–साथ अन्य अनेक देवताओं ने उक्त प्रयोजन की सिद्धि के लिये और श्री राम की सहायता के लिये सामूहिक रूप में अवतार ग्रहण किया था ।

यही प्रवृत्ति महाभारत के अंशावतरण पर्व में सहस्रों देव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि के सामूहिक अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है ।[47] इसके अनुसार कलि दुर्योधन के रूप में, सूर्य कर्ण के रूप में, धर्म युधिष्ठिर के रूप में, वायु भीम के रूप में, इन्द्र अर्जुन के रूप में, अश्विनी कुमार नकुल और सहदेव के रूप में अवतरित होते हैं । इसी प्रकार नारायण श्री कृष्ण के रूप में, शेषनाग बल्देव के रूप में और सनत्कुमार प्रद्युम्न के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं । वासुदेव कुल के सभी राजा देवताओं के अंश के रूप में चित्रित किये गये हैं । श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र रानियाँ अप्सराओं का अवतार कही गयी हैं तथा रूक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार कहा गया है ।

मध्ययुग के प्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य पृथ्वीराज विजय में पृथ्वीराज को राम का अवतार माना गया है और इनकी रानी तिलोत्तमा को सीता का अवतार मानी गयी है ।[48] यह महाकाव्य रामायण के अवतारवादी उपदानों से पूर्ण तथा सम्बद्ध है ।

पृथ्वीराज रासो एवं परमाल रासो में वर्णन :–

इसके अतिरिक्त महाकवि चन्दबरदायी विरचित 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज को अजित नामक किसी दानव पुरूष का अवतार माना गया है ।[49] इसमें यह भी बतलाया गया है कि पृथ्वीराज की सहायता के लिये दुर्योधन कन्ह

के रूप में अवतरित होता है ।[50] इसमें पुनः पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुये कहा गया है कि पृथ्वीराज चौहान इस कलियुग में कर्ण का अवतार था ।[51] इसके आगे कतिपय स्थलों पर पृथ्वीराज को कहीं इन्द्र और कहीं कामदेव का अवतार बताया गया है । प्रस्तुत पृथ्वीराज रासो महाकाव्य में पृथ्वीराज की रानियों को भी अप्सराओं का अवतार बताया गया है । इससे यह सिद्ध होता है कि रामायण–महाभारत कालीन सामूहिक अवतारवादी परम्परा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में भी विकसित और पल्लवित हुई है ।

परमाल-रासो में महाकाव्यों की परम्परा में ही अवतारवाद का प्रभाव दिखायी देता है । इस रासो के अनुसार द्वापर के समाप्त होने के पश्चात् पृथ्वी की पुकार सुन कर विधाता ने किसी देवांश के रूप में पृथ्वीराज का अवतरण किया था । इसके अग्रेतर पद्यों में पृथ्वीराज को दुर्योधन का अवतार बताया गया है ।[52] इसी महाकाव्य में परमाल की ओर से असाधारण वीरता दिखाने वाले आल्हा–ऊदल को वल्लि–सल्लि तथा उनकी माता देवल को दुर्गा का अवतार कहा गया है ।[53]

सामूहिक देवावतार की दो परम्परायें मिलती है । प्रथम सगुण भक्ति की रामभक्ति शाखा में तथा दूसरी कृष्ण भक्ति शाखा में । गोस्वामी तुलसीदास विरचित राम-चरित–मानस में इसी परम्परा का अनुसरण किया गया है । ब्रह्मा जी विष्णु के अवतार लेने का अश्वासन प्राप्त कर लेते हैं और तदनुसार पृथ्वी को समझाकर विदा करते हैं । इसके बाद वे देवताओं को वानरों के रूप में अवतरित होने का आदेश देते हैं ।[54] रामचरित-मानस के पश्चात्

केशवदास विरचित 'राम-चन्द्रिका' में सामूहिक अवतार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । इससे यह विदित होता है कि रामोपासक कवियों ने राम के अवतार की अपेक्षा उनके उपास्य स्वरूप का अधिक वर्णन किया है जिसके अनुसार नित्य ब्रह्म राम स्वयं लीला अथवा भक्त रक्षा के लिये अवतार लेते रहते हैं । यहां स्वाभाविक रूप में सामूहिक देवावतार गौण हो जाता है क्योंकि नित्य विग्रहों का जहां लीलात्मक अवतार होता है, उसमें उनके पार्षद परिकर और भक्त ही लीला में भाग लेने के लिये अवतरित होते हैं । सम्भवतः इसी से इस युग के भक्ति काव्यों में देवावतार की सामूहिक भावना क्षीण होने लगती है और उसका स्थान पार्षद या भक्त ग्रहण कर लेते हैं ।

श्रीमद्भागवत से प्रभावित सूरदास के सूरसागर में भी सामूहिक अवतारवादी परम्परा दृष्टिगोचर होती है । सूरसागर में अवतार के निमित्त धेनु रूप पृथ्वी की पुकार और शिव, विरंचि द्वारा किये गये अनुरोध की चर्चा प्राप्त होती हैं ।[55]

क्षीरसमुद्र के मध्य में निवास करने वाले हरि अपने वचनों से सुर, नर, नाग, पशु और पक्षी को यह आदेश देते हैं कि यदि सुख का विधान चाहते हो तो तुम लोग गोकुल में मेरे साथ जन्म लो ।[56] इस पद में सामूहिक अवतार की बात स्पष्ट रूप से कही गयी है । इसी महाकाव्य में आदि ब्रह्म की जननी देवकी को सुरदेवी कहा गया है ।[57] सूरसागर में गोपों के अवतारों का भी संकेत प्राप्त होता है । गोप श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि जहाँ-जहाँ आप देह धारण करते हो, वहाँ-वहाँ आप हमें अपने चरणों से दूरमत कीजियेगा ।[58]

सूरसागर के दूसरे पद में यह बतलाया गया है कि गोकुल में श्रीकृष्ण के साथ गुप्त विलास करने वाले तथा पृथक् रूप से कुतूहल करने वाले सभी ग्वाल देव रूप हैं ।[59] सूरसागर के एक दूसरे स्थल पर गोपियों की पद–रज महिमा का वर्णन करते हुये उन्हें श्रुतियों का अवतार बताया गया है । वे कहते हैं कि–ब्रज सुन्दरियाँ नारी नहीं है । अपितु श्रुति की ऋचाओं ने ही इनके रूप में अवतार लिया है । उन्होंने गोपिकाओं के रूप में पूर्ण परमानन्द केलि करने का वर प्राप्त किया था।[60]

कविवर सूरदास के अतिरिक्त नन्ददास ने श्रीकृष्ण के साथ सामूहिक अवतार का वर्णन किया है । उनके अनुसार राजाओं ने राजाओं के रूप में और राक्षसों ने भूमि को भार युक्त कर दिया इसलिये पृथ्वी गाय का रूप धारण कर क्रन्दन करती हुई ब्रह्मा के पास जाती है । वह उनसे अपना दुख बतलाती है । उसके दुख को सुनकर ब्रह्मा विचलित हो जाते हैं । वे देवताओं को साथ लेकर क्षीर सागर में देवाधि देव पुरूषोत्तम के पास जाते हैं । ब्रह्मा को विष्णु की आकाशवाणी सुनायी देती है । आकाशवाणी में ब्रह्मा और देवताओं को सम्बोधित करते हुये कहा गया है कि वे शीघ्र ही यदुकुल में जाकर अवतरित हों । तदनुसार विष्णु वासुदेव के रूप में और शेषनाग बलराम के रूप में अवतरित होते हैं तथा उनकी योग माया भी अवतरित होती है ।[61] देवकी के रूप में ब्रह्म–विद्या का अवतार होता है और अपनी लीला के निमित्त उनके सभी परिकर अवतरित होते हैं ।[62]

कविवर सूरदास का कथन है कि ब्रह्मा ने जिन्हें आदेश दिया वे

ही सखी–सखा के रूप में उनके साथ आविर्भूत होते हैं । वे कहते हैं कि गोपी, ग्वाल और कान्त दो नहीं हैं । जहाँ–जहाँ हरि अवतरित होते है वे इनको कभी भूलते नहीं हैं । उनका शरीर तो एक ही है लेकिन गोपी वालों के रूप में उसे अनेक रूपों वाला बतलाया गया है ।[63] इस प्रकार कविवर सूरदास ने भी अपनी मौलिक शैली में सामूहिक अवतार का विलक्षण और दार्शनिक चित्रण किया है ।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि अवतारवाद के प्रारम्भ में ही अवतारवादी विकास के साथ साथ सामूहिक अवतारवाद की भावनाओं का प्रसार हो गया था । रामायण, महाभारत और पुराणों में वर्णित सामूहिक अवतारवाद का प्रभाव मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों पृथ्वीराज रासों, परमाल रासो, राम-चरित–मानस और सूरदास प्रणीत सूरसागर आदि में दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में दशावतार परम्परा के वर्णनों के साथ–साथ सामूहिक अवतार परम्परा भी परिलक्षित होती है । अवतारवाद हमारी भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है । सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति अपनी विशेषताओं के साथ चक्रार-पंक्ति की तरह अवतारवाद से घनिष्ठता के साथ सम्बद्ध है । इसीलिये मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवतारवाद के साथ–साथ दशावतार-परम्परा के वर्णन की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है ।

सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यो में अवतारत्व-भावना :–

दशावतार-परम्परा की तरंग इतनी तीव्रता से तत्कालीन समाज में प्रवाहित हो रही थी कि परवर्ती काल में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यो

में भी अवतारत्व की भावना का विपुल विकास देखने को मिलता है । तदनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्य किसी न किसी देवता के अवतार माने जाने लगे थे ।

महाकाव्य काल से लेकर मध्ययुग तक अवतारवाद की प्रवृति सदैव एक सी नहीं रही अपितु इस युग के सम्प्रदायोंके प्रभावानुरूप उसका पूर्णतः सम्प्रदायीकरण हो गया । किन्तु पौराणिक काल से ही इस साम्प्रदायिक अवतारवाद में एक विशेष प्रवृत्ति यह लक्षित होती है कि इसमें विभिन्न मतवादों और धर्मों के निकाल फेंकने या उनका खण्डन करने के विपरीत उन सभी को अवतारवाद में समेट कर अभूतपूर्व समन्वय करने का प्रयत्न होता रहा है । 'भावगत पुराण' के 24 अवतारों की सूची में जिन महापुरूषों को परिगृहीत किया गया है वे किसी न किसी मत या चिन्तनधारा के प्रवर्तक रहे हैं । विशेषकर सनत्कुमार का सात्वत धर्म से, दत्तात्रेय का योग से, यज्ञ का (यज्ञोवैविष्णु) विष्णु से, ऋषभ का जैन धर्म से, पृथु का खनिज और कृषि से, धन्वन्तरि का आयुर्वेद से सम्बन्ध रहा है । साथ ही परशुराम योद्धा के रूप में, राम दक्षिणावर्त्त के विजेता के रूप में, कृष्ण भागवत धर्म के प्रवर्तक, बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक और कल्कि नूतन युग के संस्थापक के रूप में विख्यात हैं ।[64] इस प्रकार पौराणिक अवतारवाद विभिन्न मत के प्रवर्तकों से समाविष्ट एक विलक्षण समन्वयवादी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है । 'विष्णुपुराण' के अनुसार पूर्ववर्ती धर्मप्रवर्तक अपनी परवर्ती संतान के यहां जन्म लेते हैं ।[65] इस प्रकार 'विष्णुपुराण' ने प्रवर्तकों का एक अवतार चक्र ही प्रस्तुत किया है । पांचरात्र संहिताओं के चतुर्व्यूहों में

गृहीत संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरूद्ध के क्रमशः पांचरात्र मत का उपदेश 'इस मत के अनुसार', क्रिया की शिक्षा और मोक्ष का रहस्य–उद्घाटन आदि कार्य बतलायें गये हैं ।

पूर्वमध्यकाल में आगे चलकर इन प्रयोजनों के निमित्त विष्णु के स्वयं अवतार न होकर उनके आयुध, आभूषण, पार्षद आदि के अवतारों की प्रणाली का विकास हुआ ।[66]

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनके अवतार का एक मात्र प्रयोजन धर्म या सम्प्रदायों का प्रवर्तन और भक्ति का प्रसार था । इस युग के मूल प्रेरक आल्वारों और दक्षिण आचार्यो को ही सर्व प्रथम विष्णु के आयुध आदि के अवतार रूप में आविर्भूत माना गया । इसके अतरिक्त कुछ आचार्य शिव, ब्रह्मा आदि सहायक देवताओं के भी अवतार रूप में प्रचलित हुये । इनमें विशेषकर शंकर असुर मोहनार्थ शंकराचार्य के रूप में आविर्भूत हुये । सम्भवतः इस कड़ी की पूर्ति में इनके विख्यात शिष्य मंडन मिश्र ब्रह्मा के और उनकी पत्नी भारती सरस्वती के अवतार माने गये ।[67] 'शंकरदिग्विजय' में इस प्रकार आचार्यो के अवतार की एक विचित्र रूपरेखा दी गई है । उसके अनुसार शिव की अनुमति से विष्णु और शेषनाग ने अवतार–धारण किये । कर्म योग और ज्ञान तीनोंके प्रतिपादन एवं प्रचार के निमित्त, कर्मकाण्ड के प्रतिपादन के लिये कार्तिकेय कुमारिल भट्ट के रूप में, योग के प्रतिपादन के लिये विष्णु और शेष क्रमशः संकर्षण और पतंजलि के रूप में और ज्ञान के प्रतिपादन के लिये शिव स्वयं शंकराचार्य के रूप में आविर्भूत हुये कहे गये हैं ।[68] पुनः अन्य प्रसंगों में

कार्तिकेय के अवतार जैमिनीय न्याय के लिये सब्रह्माण्य के रूप में और इन्द्र के सुधन्वा राज के रूप में बतलाये गये हैं । इन अवतारवादी प्रवृत्तियों का प्रचलन आलोच्य-काल में प्रवर्तित रूपों में भी दीख पड़ता है । 'सम्प्रदायप्रदीप' के अनुसार शंकराचार्य शंकर के अवतार रूप में ही प्रचलित रहे ।[69] परन्तु इसी युग के लेखक नाभादास ने उन्हें ईश्वर का अंशावतार कहा है ।[70]

इस युग में श्री जगन्नाथ के अंशावतार के रूप में जिन रामानुज, विष्णु–स्वामी, मध्व और निम्बार्क नाम के चार वैष्णव आचार्यो द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों का आविर्भाव माना गया है, उनमें प्रायः सभी प्रवर्तक आचार्यो और कतिपय अन्य परम्परागत आचार्यो को विष्णु और उनके आयुध, पार्षद, या उनके अवतारों का अवतार सम्प्रदायों में माना गया है । नाभा जी ने चारों वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्यों को विष्णु के चौबीस अवतारों की परंपरा में कलियुग के निमित्त विष्णु का ही चतुर्व्यूहात्मक आविर्भाव कहा हैं ।[71] श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुज प्रायः सम्प्रदाय और परम्परा दोनों में शेषावतार के रूप में प्रसिद्ध हैं । 'भक्तमाल' में कहा गया है कि रामानुज ने सहस्र मुखों से उपदेश कर जगत् के उद्धार का प्रयत्न किया ।[72] संभवतः सहस्र मुखों से उपदेश करने के कारण ही ये शेषावतार की परम्परा में गृहीत हुये हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय में विष्णु के आयुधावतारों की परम्परा दीख पड़ती है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य श्री निम्बार्काचार्य सुदर्शन चक्र के अवतार माने गये, तो इन्हीं की परम्परा में आने वाले श्री निवासाचार्य शंख के और श्री देवाचार्य पद्म के अवतार कहे गये हैं ।[73]

माध्व सम्प्रदाय में माना जाता है कि विष्णु जब–जब चारों युगों में अवतार धारण करते हैं तब–तब वे अपने पुत्र वायु देवता को सहायक अवतार के रूप में रखते हैं । अतः विष्णु और वायु क्रमशः त्रेता में राम और हनुमान् द्वापर में कृष्ण और भीम तथा कलियुग में मध्वाचार्य के रूप में आविर्भूत होते हैं । मध्यकाल में वे प्रायः पवननन्दन हनुमान् के अंशावतार–रूप माने गये ।[74]

रूद्र सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक विष्णु स्वामी भी विष्णु के अवतार एवं इस सम्प्रदाय के इष्टदेव श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं । 'सम्प्रदाय प्रदीप' के अनुसार श्रीकृष्ण ही कलि का क्लेश दूर करने के निमित्त विष्णु स्वामी के रूप में अवतरित हुये ।

इस प्रकार चारो वैष्णव सम्प्रदायों में प्रायः अवतारवाद सर्वत्र व्याप्त है । यों तो इन चारों के अवतार का प्रयोजन विष्णु या उनके अवतारों की भक्ति का प्रचार रहा है । परन्तु भक्ति के प्रचार के साथ ही इनका एक प्रमुख कार्य शंकर के मायावाद का खण्डन भी रहा है । क्योंकि इन सम्प्रदायों की मूल आस्था अवतारवाद, जिस मायावाद पर आधारित हैं ।[75] शंकर ने उस माया को मिथ्या या भ्रम की संज्ञा प्रदान की और शुद्ध ब्रह्म की तुलना में माया को मिथ्या माना ।[76] इनमें अवतारवाद के सिद्धान्त की भी मिथ्या होने की संभावना हो जाती है । अतः भक्ति के साथ ही अवतारवाद की प्रतिष्ठा के निमित्त मायावाद का खंडन और परिष्कार भी इनका प्रमुख प्रयोजन रहा है । विशेषकर मध्वाचार्य के सम्बन्ध में कहा गया है कि मध्व को स्वयं श्रीराम ने स्वप्न देकर मायावाद का त्याग और भक्तिवाद का प्रचार करने के लिये आदेश

दिया था ।[77]

हिन्दी भक्तिकालीन साहित्य में जिन सम्प्रदायों की व्याप्ति दृष्टिगत होती है वे प्रायः उक्त सम्प्रदायों से ही निःसृत या सम्बद्ध हैं । इस दृष्टि से श्री सम्प्रदाय से रामानन्दी या रामावत सम्प्रदाय का, रूद्र सम्प्रदाय से बल्लभ सम्प्रदाय का, ब्रह्म सम्प्रदाय (माध्व) से चैतन्य सम्प्रदाय का और सनकादि सम्प्रदाय (निम्बार्क) से राधा वल्लभी सम्प्रदाय का विकास माना जाता है । परन्तु सम्प्रदायों में अवतारवादी परम्परा के द्वारा सांमजस्य स्थापित करने वाली कोई प्रवृत्ति विशेष लक्षित नहीं होती है । रामानुज सम्प्रदाय में केवल राम ही उपास्य हैं । माध्व और चैतन्य सम्प्रदाय के इष्टदेवों में भी भिन्नता प्रतीत होती है । रूद्र और वल्लभ सम्प्रदाय तथा सनकादि और राधावल्लभी सम्प्रदायों में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है ।

उक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक भी अपने सम्प्रदायों में या तत्कालीन साहित्य में किसी न किसी के अवतार–रूप में विख्यात हैं । इनके अवतारीकरण में तीन प्रकार की प्रवृत्तियां विशेष रूप में लक्षित होती है । जिसके फलस्वरूप इनके अवतार और अवतारी दोनों रूपों में वैषम्य हो जाता है । कहीं तो जनश्रुतियों एवं उपमाओं से सम्बन्ध होने के कारण इन्हें पौराणिक एवं सम्प्रदायेतर देवताओं का अवतार कहा गया है, परन्तु सम्प्रदाय और उसके साहित्य में इन्हें इष्टदेव या उपास्य के अवतार–रूप में या कभी–कभी गुरू परम्परा के प्रभावानुरूप स्वयं उपास्य रूप में गृहीत होने के नाते अवतारी रूप में माना गया है ।

रामानन्द :–

रामानन्द रामावत सम्प्रदाय में साधारणतः राम के अवतार माने जाते हैं ।[78] किन्तु राम के अवतार–रूप में उनकी मान्यता परवर्ती विदित होती है । क्योंकि 'भक्तमाल में उन्हें सीधे राम का अवतार न कहकर उनके उद्धार कार्य को राम के सदृश कहा गया है ।[79] 'सम्प्रदायप्रदीप' में भी एक रामानन्द की कथा का उल्लेख हुआ है । उस कथा में श्रीकृष्ण से कहलाया गया है कि रामानन्द पूर्वजन्म में अर्जुन के आगे लड़कर मरा हुआ एक वीर पुरूष है जो पूर्वकृत किसी भारी पाप के फलस्वरूप सहस्र जन्मों के चक्र में पड़ा हुआ है । अन्त में वह बल्लभाचार्य से दीक्षित होता है ।[80] इस कथा में स्पष्टतः निकृष्ट रूप का कारण वल्लभ मत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है । इसके अतिरिक्त 'भक्तमाल' में रूपकला जी के द्वारा उद्धृत किये हुये सम्भतः परवर्ती उल्लेखों के अनुसार श्री रामानन्द को कहीं सूर्य का अवतार और कहीं कपिल का अवतार कहा गया है । इनका सूर्यावतार होना उपमात्मक विदित होता है ।[81] किन्तु वाद में इसे पौराणिक तत्वों के प्रभावानुरूप अवतार–रूप में परिवर्तित कर दिया गया ।

श्री वल्लभाचार्य :–

वल्लभ मत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य अपने सम्प्रदाय में एक ओर तो अग्नि के अवतार माने जाते हैं और दूसरी ओर उपास्य देव श्रीकृष्ण के भी अवतार रूप में मान्य हुये हैं । 'सम्प्रदाय प्रदीप' में इनके अग्नि–अवतार सम्बन्धी कतिपय प्रसंग आये हैं । एक प्रसंग में स्वयं भगवान् लक्ष्मण भट्ट से

स्वप्न में कहते हैं कि मैं पूर्ण पुरूषोत्तम वैश्वानर स्वरूप हूँ और लोक–कल्याणार्थ स्वेच्छा से पुनः अवतरित हुआ हूँ ।[82] इसके पूर्व के एक प्रसंग में इनके माता पिता इनको अग्निपुंज के मध्य में विराजमान देखते हैं । वल्लभ का अग्नि–अवतार के रूप में प्रसिद्ध होना भी अग्नि के समान धर्मों या कार्यों के आधार पर विकसित हुआ प्रतीत होता है । क्योंकि वार्त्ताओं में आचार्य जी को अग्नि का स्वरूप बतलाते हुये कहा गया है कि अग्नि भोजन को शुद्ध करता है और आचार्य शिष्य को शुद्ध कर वैष्णव बनाते हैं । अग्नि नवनीत पिघलाकर घी बनाता है और आचार्य मानव का लौकिक रूप शुद्ध कर वैष्णव बना देते हैं । अतः इन तुलनात्मक गुणों के आधार पर अग्नि–अवतार के रूप में उनका विकास सम्भव हो सकता है ।

'सम्प्रदायप्रदीप' में अग्नि और श्रीकृष्ण दोनों के अवतार का वल्लभाचार्य में समन्वय कर दिया गया है ।[94] एक प्रसंग के अनुसार विल्वमंगल के आग्रह से भगवान् पुरूषोत्तम ने अपने मुख–स्वरूप अग्नि के अवतार–रूप में आविर्भूत होने की सूचना दी थी।[84]

इस अवतार का पूर्णतः सम्बन्ध सम्प्रदाय से है । अतएवं वल्लभाचार्य के इस अवतार का प्रयोजन भक्ति–मार्ग का प्रचार माना गया है । इन प्रयोजनों के फलस्वरूप 'सम्प्रदाय प्रदीप' में इन्हें विविध पौराणिक देवताओं और ऋषियों का अंशावतार बतलाया गया है । इस ग्रंथ के अनुसार कलिकाल में वल्लभाचार्य के अलौकिक तेज और प्रतिभा को देखकर स्वयं नारायण ने कहा था कि यह पृथ्वी पर दैवी सृष्टि के उद्धार तथा मायावादान्धकार के निवारण के लिये अग्नि,

व्यास, नारद, रूद्र, एवं श्रीकृष्ण के अंशों से प्रकट हुये हैं ।[85] साथ ही इनके पूर्वावतारों का उल्लेख हुये करते हुए बतलाया गया है कि अग्नि के अंश से यह ही राजाभोज के रूप में अवतीर्ण हो चुके हैं । सम्भवतः ये व्यासांश से आचार्य–स्वरूप, वागीश्वर अग्नि से व्याख्याता, नारदांश से समर्थ भक्ति प्रचारक, रूद्रांश से संन्यास धारण कर जीवों के उद्धारक और श्रीकृष्णांश से सर्वोद्धारक हैं । उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि विभिन्न अंश–शक्तियों का समन्वय इनके कार्यों और प्रयोजनों की प्रभावान्विति के निमित्त हुआ है ।

इसके अतिरिक्त 'सम्प्रदाय प्रदीप' में चैतन्य आदि अन्य प्रवर्तकों द्वारा उन्हें साक्षात् देवकी–पुत्र कहवाया गया है ।

परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने इन्हें अवतारवादी गुरू–परम्परा के अनुसार केवल श्रीकृष्ण का अवतार ही नहीं माना अपितु उपास्य एवं अवतारी रूप भी प्रदान किया है ।

कुंभनदास महाप्रभु के जन्म–दिवस की चर्चा करते हुये कहते हैं कि लक्ष्मण भट् के घर में आज बधाई बज रही है क्योंकि वल्लभ के रूप में सुखदाता पूर्ण पुरूषोत्तम आविर्भूत हुये हैं ।[86] समस्त विश्व के आधार गोकुलपति श्रीकृष्ण ने वल्लभ का अवतार धारण किया है । वे अपने भक्तों को सेवा और भजन का मार्ग बता कर आवागमन से मुक्त कर रहे हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने आकर सभी का उद्धार किया ।

नंददास ने भी वल्लभाचार्य को पूरन ब्रह्म पुरूषोत्तम माना है ।[87] हरिदास कवि बल्लभाचार्य को कृष्ण के वदनानल की संज्ञा से अभिहित

करते हैं । इनके पदों के अनुसार इन्होंने मायावाद का खंडन कर अपने स्वजनों का कल्याण किया । वार्त्ताओं में महाप्रभु वल्लभाचार्य को ठाकुर जी का स्वरूप कहा गया है ।

किन्तु श्रीकृष्ण या ठाकुर जी से इस सम्प्रदाय के आचार्यों को स्वरूपित करने की परम्परा केवल वल्लभाचार्य तक ही सीमित नहीं रही अपितु उत्तरोत्तर इसका और अधिक प्रसार होता गया । संभवत 'अष्टछाप' की स्थापना के पश्चात् यह प्रवृत्ति और अधिक व्यापक दिखायी पड़ती है क्योंकि श्री वल्लाभाचार्य जी के प्रति रचे गये अवतार या स्तुतिपरक पदों की अपेक्षा विठ्लनाथ जी या उनके पुत्रों के प्रति अधिक पद लिखे गये विदित होते हैं ।

इस सम्प्रदाय में इष्टदेव के अवतार होने के फलस्वरूप प्रायः विठ्ठलनाथ आदि पुत्रों और पौत्रों को श्रीकृष्ण का अवतार माना गया ।[88] साथ ही सम्प्रदायों की नाद या विन्दु–परम्परा में मान्य श्री वल्लभाचार्य के वंशजों को वल्लभ का भी अवतार माना गया । कुंभनदास के एक पद में कहा गया है कि संभवतः गुसाई जी के रूप में पुनः श्री वल्लभ पकट हुये हैं । गूढ़ ज्ञान की अभिव्यक्ति और सेवारस का विस्तार इनके प्राकट्य का प्रमुख प्रयोजन है ।[89]

चैतन्य :–

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य भी मध्यकाल में एक ओर तो उपास्य देव श्रीकृष्ण के अवतार माने गये और दूसरी ओर गुरु–परम्परा में स्वयं उपास्य और अवतारी रूप में मान्य हुये । डॉ0 रत्नकुमारी के अनुसार चैतन्यदेव के जीवन–काल में उनके नदिया–निवासी भक्तों ने ईश्वरत्व की श्रेणी

तक पहुंचा दिया था और उन्हें स्वयं कृष्ण माना था ।[90] परन्तु यह प्रवृत्ति मध्य काल की एक प्रमुख प्रवृत्तियों में थी, फलतः चैतन्य का अवतारत्व भी इस युग की प्रवृत्तिविशेष से संवलित है । इस सम्प्रदाय के विख्यात गोस्वामी लेखकों ने मंगलाचरण के रूप में उन्हें कृष्ण के अवतार से अभिहित किया है । किन्तु सैद्धान्तिक प्रतिपादन नहीं किया । इसका मुख्य कारण उनका गुरु–परम्परा के अनुसार श्री चैतन्य को कृष्णस्वरूप समझना था ।[91]

चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवि माधुरीदास ने भी सम्भवतः गुरु–परम्परा में ही कृष्ण, रूप चैतन्य को याद किया है । साथ ही उसमें गोस्वामियों को समन्वय करते हुए उन्हे नित्यरूप प्रदान किया है ।[92] नाभादास ने भक्तमाल में नित्यानन्द और कृष्ण चैतन्य द्वारा दशों दिशाओं में व्याप्त इनकी भक्ति का उल्लेख करते हुये सम्भवतः दोनों को पूर्व देश में अवतरित बलराम और कृष्ण का अवतार माना है ।[93]

वल्लभ आदि की अपेक्षा चैतन्य सम्प्रदाय एवं साहित्य का विस्तृत क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत या विशेषकर बंगाल रहा है । चैतन्य चरितामृत के प्रारम्भ में 'आदि लीला' में ही चैतन्य के अवतार और अवतारी उपास्य दोनों रूपों का विस्तृत वर्णन हुआ है ।

चैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने द्वितीय परिच्छेद में कहा है कि स्वयं भगवान् ('कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' का विशेषण) कृष्ण जो विष्णु, परतत्त्व पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द और परम महत्त्व आदि उपाधियों से युक्त हैं, जिन्हें भागवत ने नंदसुत के रूप में गाया है, वे ही चैतन्य गुसाई के रूप में

अवतीर्ण हुए हैं ।[94]

चैतन्यावतार का मुख्य प्रयोजन अन्य तत्कालीन सम्प्रदायों के सदृश पूर्णतः साम्प्रदायिक हैं । इसमें सेवा और भजन की अपेक्षा प्रेम, भक्ति और कीर्तन को अधिक प्रधानता दी गई है । प्रेमाभक्ति के दो मुख्य अंग लीला और रस इस अवतार के प्रमुख प्रयोजन माने गये हैं ।[95] उक्त प्रयोजनों के बहिरंग में प्रचारात्मक तत्त्वों की प्रधानता है और अंतरंग में रसास्वादन जनित तत्त्वों की । इस सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों ने कृष्ण चैतन्य के रसात्मक रूपों को ही अधिक ग्रहण किया है । श्री माधुरीदास की 'दानमाधुरी' के प्रारम्भिक दोहों से यह स्पष्ट है ।[96] उक्त प्रयोजनों के अतिरिक्त मायावाद का खण्डन भी एक विशेष प्रयोजन या कार्य रहा है । चैतन्य चरितामृत के अनुसार चैतन्य ने भी वृन्दावन जाते समय काशी में मायावादियों की आलोचना की थी । इस प्रकार आचार्यावतारों की परम्परा में गृहीत श्री चैतन्य में केवल वैष्णव भक्ति का प्रसार ही एक मात्र प्रयोजन नहीं था अपितु उसमें रसदशा या भावावेश का भी अपूर्व योग था । जिसके फलस्वरूप तत्कालीन युग तक कृष्णभक्ति या राम भक्ति प्रायः सभी सम्प्रदायों में इष्टदेव के रूप में कृष्ण या राम के युगल रूपों का अधिक प्रचार हुआ और साधना की दृष्टि से गोपीभाव, राधाभाव और अन्ततः सखीभाव एवं किंकरीभाव अत्यधिक प्रचलित हुए ।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि दशावतार-परम्परा से प्रभावित होकर आचार्यो को प्रायः किसी न किसी प्रकार अवतार बनाने का प्रयत्न किया जाता रहा है । इन सभी के मूल में एक बात यह लक्षित होती है कि

समाज में दशावतार की परम्परा इतनी बद्धमूल हो गई थी कि भक्तों ने आचार्यों में भी अवतारत्व का विकास कर दिया था । आचार्यों में अवतार-परम्परा के विकास के अतिरिक्त उनके नाम और कार्यों के साम्य से मध्य काल में जिन उपमात्मक रूपों का विकास हुआ है कालान्तर में उसे ही अवतार का रूप प्रदान किया गया है वही अवतारवादी जनश्रुति अथवा अवतार रूढ़ि के रूप में प्रचलित हो गया । शंकर–शंकर, रामानुज–लक्ष्मण शेष, रामानन्द–राम, कृष्ण चैतन्य–कृष्ण, आदि में नाम साम्य देखा जा सकता है ।[97]

अतएव वैष्णव सम्प्रदायों में विष्णु और उनके आयुध तथा विष्णु अवतार एवं उनके आयुध इन सभी का कोई न कोई-अवतारवादी सम्बन्ध मध्यकालीन आचार्यों तथा उनके वंशजों में स्थापित किया गया । इस प्रकार दशावतार-परम्परा समाज़ में इतनी रूढ़िबद्ध हो गई थी और जिससे प्रभावित होकर विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों को भी भिन्न–भिन्न देवताओं का अवतार माना जाने लगा था । यह दशावतार–परम्परा के प्रभाव की पराकाष्ठा प्रतीत होती है ।

चतुर्थ अध्याय
सन्त-साहित्य में अवतारत्व का विकास

चतुर्थ अध्याय

सन्त-साहित्य में अवतारत्व का विकास :-

प्राचीन भारतीय साहित्य में विद्यमान दशावतार-परम्परा के तारतम्य में देवताओं के मानवीकरण तथा ईश्वर के विभिन्न प्राणियों एवं मनुष्यों में अवतरित होने की जो प्रवृत्ति दिखायी देती है, उसके विपरीतं मध्यकालीन हिन्दी सन्त सहित्य में उत्क्रमणवाद की प्रवृत्ति प्रतिष्ठित होती हुई देखी जा सकती है । इस प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य ही उत्कर्ष कर्म करते-करते अपने ऊर्ध्वगामी गुणों के कारण एकेश्वरवादी ईश्वर के समान उसका पर्याय और तत्सदृश अवतारी बन जाता है । इन सन्तों के अनुसार मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास उसके चरम उत्कर्ष में दिखायी देता है । जब वह पूर्ण ईश्वर या उपास्य के समान हो जाता है । मध्यकालीन सन्तों की यह अवधारणा दशावतारों में विद्यमान अवतारवाद से भिन्न प्रतीत नहीं होती है । क्योंकि अवतारवाद की परम्परा में जिन महापुरूषों का अवतार माना गया है उनके अवतारत्व का विकास ही उनमें निहित कतिपय ऊर्ध्वगामी और उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ है ।

दुलर्भ मानव-देह एवं ऊर्ध्वगामी गुण :-

सन्तों ने मनुष्य योनि में जन्म पाने को अत्यन्त श्रेष्ठ एवं दुर्लभ माना है ।[1] इनकी यह भावना प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में दिखायी देती है । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य अपने को श्रेष्ठ मानता भी रहा है । साथ ही अपनी निष्ठा के पात्र श्रद्धेय लोगों को पूज्य और श्रेष्ठ

समझता रहा है ।

वैदिक काल में मानव के लिये कल्याणकारी होने के कारण देवता उसके पूज्य, अराध्य और इष्ट रहे हैं । बाद में उसी काल में वैदिक ऋषि देवताओं के समान माने जाने लगे थे। इसी परम्परा को ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्वानों, ब्राह्मणों और राजाओं को भी देवताओं के समान माना गया है ।[2] इसी प्रकार उपनिषदों में माता–पिता गुरू एवं अतिथि को भी देवताओं के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है । इस प्रकार व्यावहारिक समाज में एक ओर तो मनुष्य देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुये और दूसरी ओर देवताओं की साकार कल्पना करते हुये उनमें मानव रूप प्रतिभाषित होने लगा था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने ऊर्ध्वगामी गुणों और विचारों के कारण समाज में मनुष्य की देवत्व के रूप मं प्रतिष्ठा होने लगी थी । तथा देवताओं का मानवीकरण होने से उनके मानव रूप प्रतीत होने लगे थे । उस समय मनुष्य की जिज्ञासा एक ऐसे परम पुरूष या महामानव की ओर थी जो मनुष्य मात्र और प्राणिमात्र से श्रेष्ठ महान् तथा स्वयं पूर्ण मानव रूप में अत्यन्त महान् और महिमा मण्डित हो । इनकी यह कल्पना ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में साकार होते हुये दिखायी देती है । आगे चलकर वेदान्त के ग्रन्थों, उपनिषदों में पुरूष मानव और पुरूष ब्रह्म की कल्पना का विकास हुआ जिसमें कहा गया है कि ब्रह्म–वेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है ।[3]

ब्रह्मवाद और एकेश्वरवाद के उत्थानकाल में ब्रह्म और ईश्वर दोनों का परस्पर समाहार हो गया था । उपास्य और इष्ट देव दोनों के विशेषण

से सम्बद्ध कर दिये गये थे । इन्हीं समन्वित विशेषणों का आरोप उपास्य रूप में गृहीत होने पर सन्तों और भक्तों पर भी किया जाने लगा था । ब्रह्मवाद और एकेश्वर-वाद के इस वेदान्ती काल में ब्रह्म और ईश्वर, आत्मा और परमात्मा ईश्वर और जीव का समाहार या एक-रूपता विकसित हुई और प्रतिष्ठित हो गयी ।

निर्गुण उपासक सन्त एवं अवतारवादी परम्परा :—

निर्गुणोपासक संतों में भी ऐसे विचार प्राप्त होते हैं जो अवतारवादी परम्परा के अनुकूल सिद्ध होते हैं । सगुणवादी सन्त महापुरूषों में ऊपर से अवतरित ईश्वर शक्ति की कल्पना करते हैं और निर्गुण निराकार वादी संत अपने उत्क्रमण–शील साधक योगी एवं संत शिरोमणि महापुरूषों में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करते हैं ।[4] गीता में कर्मवादी, ज्ञानी और तपस्वियों से श्रेष्ठ, योगी को बतलाया गया है और उनमें भी श्रेष्ठ श्रद्धावान् भक्त को बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त गीता के अनुसार ईश्वर अनेक वर्ग के महापुरूषों में विभूति के रूप में अभिव्यक्त होता है ।[5] इसी तारतम्य में ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में वर्णित पुरुष–सूक्त के अनुसार गीता के सप्तम अध्याय में तदनुसार विराट् पुरूष अपने विराटतम रूप में सर्वशक्तिमान्, पूर्णमानव या पुरूषोत्तम के रूप में उपस्थित होने की बात कहीं गई है । इसी प्रकार योगी भी योग की सर्वोच्च सिद्धि में ईश्वर या विराट् पुरूष से तादात्म्य होने पर ईश्वर हो जाता है । प्राच्य विद्वान् इसे ही पूर्णावतार की संज्ञा से अभिहित करते हैं, क्योंकि यह विराट्रूप भी 'योगैश्वर्यरूप' है । इसके साथ ही उपनिषदों में

उल्लिखित 'अयमात्मा ब्रह्म'' 'पुरूष एवेदं सर्वम्' में ससीम की असीम रूप में अभिव्यक्ति स्पष्ट लक्षित होती है ।[6] सर्वरूप होने पर भी उसमें निहित पुरूष या पुरूषाकार का अस्तित्व, मनुष्य रूप से उसके घनिष्ठ सबन्ध को ध्वनित करता है ।

इस प्रकार मनुष्य का ईश्वरोन्मुख तथा ईश्वर का पुरूषोन्मुख विकास भारतीय वाङ्मय में उस स्थान तक पहुँच जाता है जहां कि पुरुष पुरूषोत्तम के रूप में अभिव्यक्त होता है ।

मानव-मूल्य की प्रतिष्ठा :—

भारतीय साधकों एवं महापुरूषों के मूल्य की अभिव्यक्ति पूर्ण, अंश या कला के रूप में होती रही है । श्रीमद्भागवत् 11.4.17 में इस कोटि के कतिपय प्राचीन साधकों को कलावतार कहा गया है । वीर पुरूषों में मान्य राम और कृष्ण अंशावतार से विकसित होकर पूर्णावतार के रूप में अभिव्यक्त हुये हैं । अतः यह स्पष्ट है कि जिस प्रवृत्ति के द्वारा पुरूषों का ईश्वरीकरण हुआ है, वह केवल श्रद्धा या भावना मात्र पर आधारित नहीं था, अपितु उसे योग एवं साधना का समुचित सम्बल मिला था ।

मध्य युग में साधना का साफल्य ही मनुष्य की श्रेष्ठता एवं चरमोत्कर्ष का कारण रहा है, क्योंकि इस युग में अन्य योनियों को भोग योनि और केवल मानव योनि को ही साधना की योनि कहा गया है ।[7] साधना के फलस्वरूप जो पद मनुष्य ने प्राप्त किया वह देवता भी नहीं प्राप्त कर सके हैं ।[8] इसी से मध्ययुग के साधक यह सोचते थे कि इस जगत् की सबसे बड़ी

सफलता केवल मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है । उसे देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये यह साधना जनित ईश्वरीय गुणों और आदर्शों का मानवीयकरण अवतारवाद का भी सूचक है, क्योंकि उनके आधार पर भी पूर्णावतार अथवा पूर्ण मानवता की कल्पना का विकास हुआ है तथा ब्रह्मा की महत्ता भी आदर्श मनुष्य के रूप में 16 या 12 कलाओं में आंकी गयी है । सन्त साहित्य के चिन्तक क्षितिमोहन सेन ने उपर्युक्त कथन की सत्यता अपने एक निबन्ध में स्वीकार की है ।[9] इस प्रकार मनुष्य प्रत्येक युग में मानव आदर्श एवं उसकी महानता का एक युगानुरूप मानदण्ड प्रस्तुत करता रहा है । अवतारवाद पर से भी यदि पौराणिक आवरण को हटा दिया जाये तो टैगोर की यह उक्ति अत्यन्त उपर्युक्त प्रतीत होती है कि–प्रत्येक युग का एक महान् व्यक्ति नये मानव धर्म का प्रादुर्भाव करता है । इस प्रकार प्रत्येक युग उस महामानव के रूप में अपना एक व्यक्तित्व प्रकट करता है ।[10]

सन्तों में अवतारभाव :–

दशावतार-परम्परा से प्रभावित होकर मध्ययुगीन सन्तों में पौराणिक अन्ध–विश्वासपूर्ण तथ्यों को हटाकर एक नये व्यक्तित्व को जन्म दिया गया है और वह इस युग का सहज तथा भोले भाव की 'रहनि' में रहने वाला सन्त रहा है । जो अपने सन्तभाव में ब्रह्म और ईश्वर से किसी प्रकार कम नहीं है । इसलिये सम्भवतः ऐसे ही सन्तों को कबीर दास ने राम से अभिन्न माना है ।[11] तथा साकार प्रतीक पूजा की अपेक्षा सन्तों को ही प्रत्यक्ष देवता स्वीकार किया है ।[12] जो कि सगुण सन्तों की भाषा में अवतार की संज्ञा से अभिहित किये जा

सकते हैं । आधुनिक युग के सन्त महात्मा गाँधी के विचार से भी मनुष्य के अवतारवादी मूल्यांकन की पुष्टि होती है । महात्मा गांधी के कथनानुसार अवतार से तात्पर्य है– शरीरधारी पुरुष विशेष/जीव मात्र ईश्वर के आधार हैं, परन्तु लौकिकभाषा में हम सबको अवतार नहीं कहते हैं । जो पुरूष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ और धर्मवान् है, उसे सारी प्रजा अवतार रूप से पूजती है । गांधी जी के अनुसार इसमें कोई दोष प्रतीत नहीं होता है । वे आगे कहते हैं कि इसमें न तो ईश्वर की महानता में कमी आती है और न उसमें सत्य को आघात पहुँचता है । यद्यपि आज भी साक्षात् ईश्वर नहीं है लेकिन वह ईश्वर के तेज, बल और अंश से पृथक् भी नहीं है, जिसमें धर्म जागृति अपने युग में सबसे अधिक हो, वह विशेषावतार है । वे इसके आगे कहते हैं कि मनुष्यों को ईश्वर रूप लिये बिना चैन और शान्ति नहीं मिलती है । ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का नाम सत्य और एकमात्र नाम पुरूषार्थ है और यही आत्म-दर्शन है ।[13]

गांधी जी के उपर्युक्त विचार सन्तों में अवतारत्व के समावेश के सन्दर्भ में अत्यन्त सटीक उतरते हैं । इस शोध-प्रबन्ध के अग्रेतर अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस युग के सन्त ही अवतार रहे हैं । दशावतारों से प्रभावित मध्ययुग की बहुदेवोपासक जनता सन्तों और अवतारों में विशेष भेद नहीं देखती थी । उसके लिये सन्त ही ईश्वर के मूर्तिमान् प्रतीक प्रतीत होते रहे हैं ।

उत्क्रमणवाद की प्रवृत्ति एवं मध्ययुग के अवतारी सन्त :–

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवगाहन–विगाहन से यह विदित

होता है कि उसमें दशावतार–परम्परा के प्रभाव में देवताओं का मानवीकरण तथा ईश्वर के विभिन्न प्राणियों एवं मनुष्यों में अवतरित होने की प्रवृत्ति बढ़ गई थी, किन्तु इसके विपरीत मध्यकालीन हिन्दी सन्त साहित्य में उत्क्रमणवाद की प्रवृत्ति का भी उदय होने लगा था । इसके अनुसार मनुष्य ही उत्कृष्ट कर्म करते–करते अपने ऊर्ध्वगामी गुणों के कारण स्वयं एकेश्वरवादी ईश्वर के समान उसका पर्याय बन जाता है । इन सन्तों के अनुसार मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास उसके चरमोत्कर्ष में दिखायी देता है । जब वह स्वयं ईश्वर या उपास्य के समान हो जाता है । मध्यकालीन सन्तों की यह अवधारणा दशावतार–परम्परा में विद्यमान अवतारवादी भावना से भिन्न प्रतीत नहीं होती है क्योंकि अवतारवाद की परम्परा में जिन महापुरूषों को अवतार माना गया है । उनके अवतारत्व का विकास भी उनमें निहित कतिपय ऊर्ध्वगामी और उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ है ।

मध्य युग में सगुणोपासना के विरोधी सन्तों ने सन्तों के जिन रूपों की चर्चा अपने पदों में की है , वे सगुण मार्गी भक्तों में प्रचलित अवतारी उपास्यों के समानान्तर प्रतीत होते हैं । उनमें अवतारी भगवान् की भगवत्ता यथेष्ट मात्रा में विद्यमान है । कबीर दास तो केवन राम का निर्मल गुणगान करने वाले सन्त ही भले प्रतीत होते हैं । जिसके हृदय में राम-ब्रह्म का निवास है उसकी ही चरण धूलि के वे अभिलाषी हैं ।[14] गुरू अर्जुन सन्त और गोविन्द की एकता बताते हुये कहते हैं कि सन्त के तत्क्षण उद्धारक होने के कारण दोनों में एक ही प्रकार का कार्य–साम्य है ।[15] सन्तदादू ने सन्त और भगवान् को

अभिन्न माना है । उनके अनुसार राम सन्त को जपते हैं और सन्त राम को जपते हैं ।[16] मलूकदास कहते हैं कि वही माता सर्वसुन्दरी है जिसके गर्भ से भक्तों का अवतार होता है, अन्य सभी नारियां बांझ के समान हैं ।[17] वे आगे कहते हैं कि सन्त राम का स्थान एक ही है । जिस प्रकार की राम की आराधना आवश्यक है उसी प्रकार साधु की भी आराधना आवश्यक है क्योंकि सन्त की संगति से हरि मिलते हैं और हरि की संगति या भक्ति से सन्त मिलते हैं । इस प्रकार साधु में राम हैं और राम में ही साधु हैं । दोनों एक रस हैं, उन्हें परस्पर अलग नहीं किया जा सकता है । जो सेवक अपने सेव्य ईश्वर का अपना हो गया हो तो उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता है ।[18]

सन्त-साहित्य के अनुशीलन से यह विदित होता है कि सन्त ईश्वर नहीं है, अपितु ईश्वर ही एक आदर्श सन्त के रूप में प्रतिभासित होता है । सन्त उपास्य रूप में स्वयं भगवान् का भी भजनीय हो जाता है । सन्त कवि सुन्दर दास के कथनानुसार सन्त और हरि में माता–पुत्रवत् सम्बन्ध दिखायी देता है ।[19] मन, बचन और कर्म से भजने वाले सन्त ईश्वर के अधीन हो जाते हैं । इस कोटि का सन्त लोक परलोक सर्वत्र दुलर्भ है ।[20] वे आगे कहते हैं कि ब्रह्मा, शिव, विष्णु, आदि देवता भले ही सुलभ हो जाते हों । परन्तु सन्त-दर्शन इतना सुलभ नहीं होता है ।[21] सुन्दरदास पुनः कहते हैं कि सन्तों के चरण धोने के लिये गंगा जी भी इच्छुक रहती हैं [22] और ब्रह्मा तथा इन्द्र इत्यादि देवता मन, वचन और कर्म से ऐसे सन्तों कीसेवा करने की कामना करते हैं ।[23] श्रीकृष्ण ने स्वयं सन्तों का अनुगमन करने के लिये अवतार ग्रहण किया था ।[24] सन्तों

की महिमा का गुणगान श्री-पति अपने श्री मुख से गाते हैं । हरि और हरिजन अभिन्न होने के कारण ही सन्त-सेवा से स्वयं हरि प्रसन्न होते हैं क्योंकि सन्तों में हरि का विश्वास है और हरि की ही सेवा है । इस प्रकार सन्त कवियों ने सन्तों को देवताओं और अवतारों से भी श्रेष्ठतर प्रमाणित करने का प्रयास किया है ।

गुरूग्रन्थ साहब, नानक, कबीरदास, दादूदयाल आदि सन्तों में अवतारत्व की भावना :—

गुरू-ग्रन्थ-साहब में गुरू अर्जुन का कथन है कि सन्त की महिमा वेदों के लिये भी वर्णनातीत है । वेदों को जितना विदित है उतना ही वे वर्णन कर सके हैं । ये सन्त तो तीनों गुणों से भी परे होते हैं ।[25] गुरूनानक के अनुसार सन्त और ब्रह्मज्ञानी एक समान होते हैं ।[26] वे कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानी सन्तों के समान सम्पूर्ण विश्व का उपास्य और उद्धार करने वाले हैं । वे स्वयं परमेश्वर हैं, इसी से महेश्वर भी उनकी खोज में प्रयत्नशील रहते हैं ।[27] उनके अनुसार ब्रह्मज्ञानी की अनन्त विशेषतायें हैं और उनके भेदों का अन्त नहीं है । वे सबके ठाकुर हैं । उनकी सीमा का वर्णन कौन कर सकता है ? वे इतने महान् होते हैं कि उनकी महानता को स्वयं ब्रह्मज्ञानी ही समझ सकता है ।[28] गुरू-ग्रन्थ-साहब के अनुसार ब्रह्मज्ञानी अखिल सृष्टि का कर्ता है । वह जीवन और मृत्यु से परे हैं । वह सदैव एक रस रहता है और जीव के लिये भुक्ति और मुक्ति का प्रदाता है । इस प्रकार वह पूर्ण ब्रह्म और सब अनाथों का नाथ है । उसका हाथ सभी के ऊपर है । वह स्थूल सृष्टि रूप अथवा साकार होते

हुये भी स्वयं निराकार है ।[29] इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों ने सन्त को पर-ब्रह्म कोटि का ही माना है । सन्त का यह रूप केवल काव्यात्मक महत्व का ही नहीं है अपितु वह ईश्वर के सदृश पूज्य और आराध्य है ।[30] गुरू ग्रन्थ साहब सन्त मण्डली को अविनाशी मानता है । उसके अनुसार संसार में हरि के गुणों की अभिव्यक्ति सन्तों के रूप में होती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सन्त इस पृथ्वी के चलते-फिरते देवता हैं जो ईश्वरीय गुणों से ओत-प्रोत हैं ।[31]

सन्त कवि रज्जब के अनुसार सन्त इस विश्व में ज्योति का अवतार हैं । वह एक ओर तो शून्य में समाधिस्थ रहता है और दूसरी ओर परोपकार में लगा रहता है ।[32] यह पैगम्बरों के सदृश पूजनीय हैं और ईश्वर का सन्देश भक्तों और साधुओं के पास पहुँचाते हैं ।[33] सन्त कवि दादूदयाल का कथन है कि सम्पूर्ण प्रपंच या लीला राम जी की है किन्तु सन्त ही इस लीला के अभिनेता हैं । लीला के समाप्त हो जाने पर ईश्वर और सन्त एक रूप हो जाते हैं ।[34] ईश्वर के अवतार के प्रयोजन की भाँति सन्तों के अवतार का भी प्रयोजन समाज का मंगल सम्पादन और उद्धार कार्य रहा है । सन्त कवि सुन्दर दास का कथन है कि सन्तों का आविर्भाव समाज का अज्ञान मिटाकर जीव-मात्र का शिवत्व सम्पादन है ।[35]

सन्त-कवि दादूदयाल के अनुसार सन्त का आविर्भाव कलियुग में परोपकार के लिये होता है, ये स्वयं तो तटस्थ और निष्काम रहते हैं परन्तु बिना किसी स्वार्थ के समाज को राम रस का पान कराते हैं । इस कलियुग में सन्त

ही ईश्वर का कार्य सम्पादित कराते हैं ।[36] इस कलियुग में सन्त ही ईश्वर का कार्य सम्पादित करते हैं । दादूदयाल कहते हैं कि ब्रह्मा, शंकर शेष, मुनि, नारद, ध्रुव और शुकदेव इत्यादि सभी सन्त इस युग में हरि की सेवा में लगे हुये हैं ।[37] इस प्रकार इस युग में सन्तों और भक्तों को ईश्वर के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है । इस अवतारत्व में सगुण–निर्गुण का कोई भेद किये बिना प्रायः समान रूप से पौराणिक भक्तों एवं सन्तों के नाम सन्निहित किये गये हैं । सम्भवतः उक्त प्रवृत्तियों के आधार पर परवर्ती सन्तों ने पौराणिक पद्धति में ही सन्तों को अवतार माना है और इस युग में यह धारणा बलवती हो गई कि ईश्वर सन्तों के रूप में सम्प्रदाय और भक्ति प्रवर्तन के लिये युग–युग में आविर्भूत होते हैं । सन्त पल्टू साहब का कथन है कि वह ईश्वर अन्य अवतारों में तो निर्गुण से संयुक्त रहता है परन्तु सन्त अवतार में वह निर्गुण अवतार से मुक्त रहता है ।[38] इस प्रकार सन्त कवियों में सन्त को ही ईश्वर का अवतार माना है । उनके अवतार का मुख्य प्रयोजन सन्तमत का प्रवर्तन रहा है । फलस्वरूप सन्तों के अवतार एक प्रकार से साम्प्रदायिक अवतारों की कोटि में समाहित किये जा सकते हैं ।

मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध पूर्वकाल से ही एक ऐसी मानवीय भावभूमि पर प्रतिष्ठित रहा है जहाँ पर एक के उत्क्रमण और दूसरे के अवतरण द्वारा परस्पर उनमें आकर्षण की कल्पना की जाती रही है । सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं के अतिरिक्त यहाँ उनकी वैयक्तिक रूचि और उसकी अन्तरोन्मुख भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा उसके मनोनुकूल ईश्वर के व्यक्तित्व का निर्माण

होता है । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि मनुष्य की स्वानुभूतियों से उद्भूत यह ईश्वर भी इच्छामय, प्रेममय और आनन्दमय रूप में प्रकट होता है ।[39] उपर्युक्त दोनों का सम्बन्ध विभिन्न कोटि के लोगों में विभिन्न रूपों में दिखायी देता है । सामान्य रूप से साधारण मनुष्य और बहुदेवता, योगी और परमात्मा ज्ञानी और ब्रह्म, भक्त और भगवान् तथा सन्त और अन्तर्यामी के रूप में उन्हें व्यक्त किया जा सकता है ।

एक ही भावभूमि से उद्भूत होने के कारण उपर्युक्त दोनों के सम्बन्धों में एक विशेष प्रकार की एकता लक्षित होती है । साधनावस्था में ही भाव ग्रन्थियों से आपूरित संवेदनशील मानव अपनी रूचि और भावों का यथेष्ट आरोप अपने उपास्य पर करता है । जिसके फलस्वरूप साधना में पूजा या अर्चना, आसक्ति या आत्मार्पण, तप, संयम, मनन या चिन्तन, आत्मानुभूति या आत्मविह्वलता आदि के माध्यम से किसी न किसी प्रकार की विविधता की सृष्टि होती रहती है । उपासक और उपास्य में जब तक तादात्म्य की स्थिति नहीं आती, तक तक बहिर्मुख या अन्तर्मुख रूप में उस विविधता की अभिव्यक्ति का व्यापक अस्तित्व विदित होता है । यही विविधता सामान्य मनुष्य की देववादी आस्था को अधिक दृढ़तर बनाने में सहायक होता है ।

सन्त अपने अन्तर्यामी के साथ जिस प्रकार सम्बन्ध रखते हैं वह उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियां तथा आत्मानुभूति से संवलित एक प्रकार का भावात्मक रहस्य-वाद है । इस रहस्य-भाव में बुद्धि की अपेक्षा हदय तत्त्व की प्रधानता है, क्योंकि बुद्धि विश्लेषण के द्वारा एक ओर तो वे उसके एकेश्वरवादी रूप को

सुरक्षित रखते हैं और दूसरी ओर उसमें वैयक्तिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा पौराणिक स्रष्टा और द्रष्टा आदि रूपों का आरोप करते हैं । फलस्वरूप निर्गुण और निराकार होते हुये भी उनमें सगुण, लीला युक्त ईश्वर के वैचित्र्य का योग हो जाता है । यही योग सन्त साहित्य की सर्जना में भक्त और लोक रंजन का निमित्त बनकर अभिव्यक्ति का माध्यम होता है । वैसे तो संत किसी विशेष सिद्धान्त या मत के प्रति-पक्षी विदित नहीं होते हैं । इसी कारण उनके आत्माभिव्यंजन की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती हुई दिखायी देती है । उनका अन्तर्यामी अलख, अविनाशी, निर्गुण निराकार और निरुपाधि होते हुये भी मनुष्य के सामने संवेदनशील, एक आदर्श हृदय-सन्त के समान व्यक्तित्व धारण करता है । सन्त कवि कबीरदास ने अपने उपास्य को राम, रहीम, केशव, करीम इत्यादि अनेक नामों से अभिहित किया है ।[40]

इन सन्तों की साधना का मूलमन्त्र नामोपासना भी रही है । इस युग तक निर्गुण सन्तों के उत्कर्ष काल में इस्लामी एकेश्वरवाद को यथोचित स्थान प्राप्त हो चुका था । इसीलिये सन्तों ने भारतीय नामों के साथ ईश्वर के इस्लामी नाम रहीम, करीम आदि को भी अपनाया था । अपनी इस उदारता के कारण वे तत्कालीन युग के धर्मसम्प्रदाय निरपेक्ष व्यक्तियों में गिने जा सकते हैं । वैसे तो रामानन्द आदि प्रवर्तक सन्तों द्वारा प्रवर्तित गुरू परम्परा में गृहीत होने के कारण संत साहित्य में रामनाभ की प्रमुखता दिखायी देती है किन्तु सन्त साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे किसी नाम विशेष के पक्षपाती नहीं थे । कबीरदास कहते हैं कि मैं फकीर हूँ और अपनी राह चलता

हूँ । हिन्दू और तुरूक उस परमेश्वर की गति को नहीं लख पाये हैं ।[41] इस विचार से कबीरदास आदि सन्तों के उपास्य ईश्वर का उपयुक्त नाम अन्तर्यामी समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि इनका उपास्य मुख्य रूप से हृदय में स्थित ब्रह्म ही है ।[42] कबीर इत्यादि सन्तों का उपास्य यह अन्तर्यामी भी बहुत कुछ अंशों में उपनिषद् का आत्मब्रह्म है । उपनिषदों में उसे प्रायः सर्वभूतान्तरात्मा, आत्मरूप, पुरूष ज्योति, षोडशकला–युक्त पुरूष, तथा अन्तर्यामी इत्यादि कहा गया है ।[43]

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि वह यह आत्म तत्व पुत्र से अधिक प्रिय है, धन से अधिक प्रिय है, और अन्य सबसे भी अधिक प्रिय है, क्योंकि यह आत्मा उनकी अपेक्षा अन्तरतर है, अतः आत्मरूप प्रिय की ही उपासना करना चाहिये । जो आत्मरूप प्रिय की उपासना करता है, उसका प्रिय अत्यन्त मरणशील नहीं होता है । कबीदास ने जिसे अन्तर्यामी कहा है उसका सन्दर्भ याज्ञवल्क्य-स्मृति में प्राप्त होता है । याज्ञवल्क्य अन्तर्यामी का रूप स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि जो पृथ्वी में रहने वाला पृथ्वी के भीतर है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती, जिसका पृथ्वीशरीर है और जो भीतर रहकर पृथ्वी का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ।[44] वह अन्तर्यामी जल, अग्नि अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशाओं, चन्द्रमा, तारागण, आकाश, तम, तेज, भूत, प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, विज्ञान और वीर्य के अन्तर स्थित है किन्तु वे उसको नहीं जानते हैं । ये सभी उसके शरीर है और वह इन सभी का नियम करता है ।[45]

कबीरदास इत्यादि सन्तों ने हृदय में स्थित अन्तर्यामी को अपना सहज, सौम्य व्यक्तित्व प्रदान किया है । सन्तगण अन्तर्यामी को अवतारों की कोटि में मानते हैं ।[46] कबीरदास उस अन्तर्यामी के प्राकट्य का अनुभव करते हैं और उस अन्तर्यामी हरि की संगति से शीलता का अनुभव करते हैं तथा उनके सन्ताप को दूर कर देते हैं । नित्य प्रति उन्हें अपने अर्न्तयामी के प्राकट्य का आनन्द प्राप्त होता है ।[47] रामतापनीय उपनिषद् में राम की व्याख्या करते हुये कहा है कि योगी लोग जिस नित्यानन्द स्वरूप चिन्मय ब्रह्म में रमण करते हैं वह पर ब्रह्म परमात्मा राम शब्द के द्वारा जाना जाता है । निर्गुण सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सन्त अपने इस उपास्य अन्तर्यामी राम के प्रति प्रायः उसी प्रकार का आत्म निवेदन करते हैं जिस प्रकार सगुणमार्गी भक्त अपने उपास्य राम से करते हैं ।

सन्त कवि नामदेव अपने सर्वव्यापक अन्तर्यामी राम के समक्ष अपने मन की व्यथा प्रकट करते हैं । उनके राजाराम इसी प्रकार अन्तर्यामी हैं जैसे दर्पण में शरीर लक्षित होता है ।[48] फिर भी सगुण और निर्गुण पंथी सन्तों की उपासना पद्धति में पर्याप्त विषमता दिखायी देती है । सगुणोपसक सन्त अपने इष्ट देव की उपासना विधि निषेध द्वारा करते हैं तथा उनके नाम, रूप, गुण, लीला और धाम की चर्चा के साथ–साथ अष्टयाम पूजा और अर्चना करते रहते हैं ।[49] सहित्य में जहां तक उनका ईश्वर विवेचना योग्य है उसमें सगुण साकार तथा अवतारवादी ईश्वर की विशेषताओं का प्रभाव अवश्य दिखायी देता है । इतना अवश्य है कि इन सन्तों ने सगुणमार्गी भक्तों के समान किसी मूर्ति या रूप को स्वीकार नहीं किया है, फिर भी विश्व में जितनी आत्मायें हैं वे उन

सभी को शालिग्राम के सदृश भगवान् के प्रतीक रूप में मानते हैं ।[50] यद्यपि उनकी इस आत्ममूर्ति में स्थूलरूप का अभाव है, फिर भी इसमें प्रमुख साकार के गुण विद्यमान है ।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में विरचित हिन्दी साहित्य में प्रचलित पौराणिक, औपनिषदिक, सूफी और इस्लामी आदि सभी रूपों का अपूर्व समन्वय देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप इस युग में उस ईश्वर का एक विशिष्ट व्यक्तित्व झलकता है । सन्त विनोबा ने ठीक ही कहा है कि—हमारे सन्तों की पाचनशक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न–भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते हैं, बल्कि इन सबको वे एक साथ हजम कर लेते हैं ।[51] इसलिये सन्तों ने ईश्वर से भाई, बन्धु, माता पिता, सखा, स्वामी, गुरू, दास, पति प्रियतम आदि अनेक प्रकार के वैयक्तिक और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये हैं ।[52] इस सम्बन्ध में सन्त कवि दादूदयाल के पद अवलोकनीय हैं । इतना अवश्य है कि इन सगुणोपासकों की साधना बहिर्मुखी है परन्तु कबीरदास इत्यादि सन्तों की रचनाओं में आन्तरिक पूजा एवं आरती की योग-सम्पृक्त रचनायें मिलती हैं ।[53]

इसके अतिरिक्त इन सन्तों में अपने इष्ट देव के प्रति जितने प्रकार केवैयक्तिक सम्बन्ध दिखायी पते हैं, उनमें सगुणोपासकों की भाँति ऐश्वर्य माधुर्य युक्त, वात्सल्य, दास्य, सख्य, दाम्पत्य आदि भावों की यथेष्ट अभिव्यक्ति हुई हैं । दादू दयाल ऐसे राजा की सेवा करने की कामना करते हैं जिसके तीनों लोक घर हैं । चन्द्रमा और सूर्य दीपक हैं, पवन आँगन बुहारता

है । जहाँ छप्पन कोटि जन है, रात–दिन शंकर और ब्रह्मा उनकी सेवा करने पर भी उनके भेद को नहीं जान पाते हैं । वेद जिन्हें नेति–नेति गाते हैं ।[54] सभी देवता जिसकी सेवा करते हैं, मुंनि ध्यान करते हैं, चित्र–विचित्र जिसके दरबार के लिपिक हैं, धर्मराज द्वार पर खड़े हैं । ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ उसकी दासी हैं, धर्म–अर्थ इत्यादि चारो पदार्थ भरे पूरे हैं । नारद, शारदा इत्यादि जिसका गुणगान करते हैं । वहां प्रभु ब्रह्मा में स्थित है और इस विश्व सृष्टि की रचना कर उसे धारण किये हुये हैं । इस प्रकार के गुणों वाला राजा ही सन्त दादूदयाल का सेव्य है । यहां दादूदयाल के इष्ट देव राजा के रूप में चित्रित हुये हैं । सगुणोपासक सन्त भी अपने इष्टदेव के नित्य लोक और ठाकुर दरबार का इसी प्रकार चित्रण करते हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि जहां उनमें अर्चा रूप का प्रधान्य हैं वहीं निर्गुण सम्प्रदाय के सन्तों में आत्मब्रह्म या अन्तर्यामी का ऐश्वर्य रूप दृष्टिगोचर होता है । उपर्युक्त उद्धरण में सन्त दादूदयाल ने अपने दास्य भाव को भी प्रकट किया है । कबीर दास ने भी पूर्ण ब्रह्म राम के ऐश्वर्य रूप का विशद वर्णन किया है । उनके पदों में 'सारंगपानी' का प्रयोग होने के कारण वे विष्णु से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं । कबीर का दास्यभव एक ऐसे ठाकुर के प्रति लक्षित होता है जो सगुण इष्ट देवों के समान भक्त रक्षक है ।55

गुरू ग्रन्थ साहब में गुरू अर्जुन ऐसे धनी गोविन्द का गुणगान कराते हैं, जिसमें कृष्ण के रूप में करोड़ों अवतार धारण किये हैं । करोड़ों ब्रह्माण्डों में जिसका विस्तार है । करोड़ों ब्रह्मा शिव जिसमें स्थित हैं, उसके विभिन्न अंगों से करोड़ों की उत्पत्ति होती है । करोड़ों भक्त उसके संग नित्य

रहते हैं । करोड़ों वैकुण्ठ उसकी दृष्टि में विद्यमान हैं ।[56]

सगुणोपासक सन्तों की भांति इन निर्गुण पंथी सन्तों में भी इष्ट देव के प्रति उसी प्रकार माधुर्यभाव की अभिव्यक्ति हुई है । विशेष कर कृष्णोपासक तथा कलान्तर में रामोपासक सम्प्रदायों में जिस दाम्पत्य, सखी या सहचरी भाव का विकास हुआ है उसकी अभिव्यक्ति निर्गुण पंथी संतों में भी हुई है । कबीरदास जी, हरि प्रियतम के साथ, अपना अत्यन्त सुदृढ़ सम्बन्ध प्रदर्शित करते हुये कहते हैं कि हरि मेरा प्रियतम है और हरि के बिना मेरे जीवन का अस्तित्व नहीं रह सकता है । मैं इस प्रिय की बहुरिया हूं । वे राम बड़े हैं और मैं उनकी छोटी सी लहुरिया हूं । मैने तो उनसे मिलने के लिये इतना श्रृंगार किया है परन्तु पता नहीं कि वे राजाराम क्यों नहीं मिलते ? यदि इस बार वे मुझे मिल जायें हो पुनः मुझे इस भव सिन्धु में नहीं आना पड़ेगा ।[57]

सन्त कवि दादूदयाल ने एक रूपक के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि को नारी के रूप में चित्रित किया है और केवल एक ईश्वर मात्र को स्वामी के रूप में बताया है । एक विरहिणी नारी के समान आतुर होकर वे कहते हैं कि–हम सभी उसकी नारियां हैं और वही हम सबका एक मात्र प्रति है । सभी अपने–अपने शरीर का श्रृंगार करते हैं तथा घर–घर में अपनी सेज संवारते हैं और अपने प्रिय कान्त का पत्र निहारते हैं । विह्वल होकर अपने पति का सब ध्यान करते हैं कि हम सब अपने नाथ को गले लगायें । इस प्रकार अत्यन्त आतुर वियोगिनी के समान वे अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते हैं ।[58] अन्य सन्त दाम्पत्य भाव से उस ईश्वर की उपासना करते हैं । इस प्रकार सन्तों ने भी अपने इष्टदेव

के प्रति स्वकीयाजनित दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति की है ।

उपर्युक्त सम्बन्धों के अतिरिक्त सन्तों ने अपने इष्टदेव से विभिन्न प्रकार के अन्य सम्बन्ध भी स्थापित किये हैं । एक स्थान पर संत कवि कबीरदास अपने इष्टदेव को माता के रूप में सम्बोधित करते हैं । वे कहते हैं कि हे हरि ! तुम हमारी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूं, तुम हमारे अवगुणों को क्यों नहीं क्षमा करोगी । पुत्र विविध प्रकार के अपराध किया करते हैं, किन्तु माता कभी भी उधर ध्यान नहीं देती हैं । कबीरदास गम्भीरता से विचारपूर्वक कहते हैं कि यदि बालक दुखी है तो माता भी उतनी ही दुखी होती है ।[59]

इसी प्रकार गुरू रामदास अपने प्रियतम से विविध सम्बन्ध जोड़ते हैं । उनका उपास्य मित्र हैं, सखा है और प्रियतम भी हैं ।[60]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इन सन्तों ने अपने अलख, निर्गुण और अविनाशी पुरुष में सगुण ईश्वर के व्यक्तित्व का पूर्ण समावेश किया है । निवेदन, दैन्य भाव तथा अपने स्वाभाविक उद्‌गारों को प्रकट किया है । निर्गुण ईश्वर में सगुण ईश्वर की भांति अवतारवाद का प्रतिबिम्ब झलकता है ।

इष्टदेव में अवतारवादी तत्व :–

सन्त साहित्य में वर्णित निराकार ईश्वर के पौराणिक अवतारों के समक्ष उसके ऊपर विष्णु के अवतारों से सम्बद्ध कथाओं का आरोप सन्तों की वाणियों और पदों में यथेष्ट मात्रा में हुआ है । पुराणों में साधारण रूप से ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एक माना गया है परन्तु साम्प्रदायिक उत्कर्ष के कारण कही शिव का और कहीं विष्णु का उत्कर्ष दिखायी देता है । वैष्णव पुराणों में विष्णु

को प्रधान बताया गया है और शैव पुराणों में शिव को प्रमुख बताया गया है । किन्तु इन सन्तों की वाणियों में साधारण रूप से ब्रह्मा, विष्णु और महेश को गौण रूप में चित्रित किया गया है । विष्णु के अवतार राम के निरन्तर जपने के लिये कबीरदास का निर्देश उल्लेखनीय है ।[61] इसके अतिरिक्त सन्तों ने अपने ईश्वर को पुराणों की जिन कथाओं से सम्बद्ध किया है उनमें प्रायः सभी का सम्बन्ध विष्णु एवं उनके अवतारों से है । ब्रह्मा और शिव सम्बन्धी कथाओं का सन्त साहित्य में नितान्त अभाव दिखायी देता है । सन्तों में विष्णु के पर्यायवाची केवल राम जी नहीं है । अपितु कृष्ण, गोविन्द, हरि, नारायण, माधव आदि नामों का स्वच्छन्दता पूर्वक अपने पदों में प्रयोग किया है । साथ ही निर्गुण सन्तों में मान्य, जयदेव, नामदेव, गुरू अर्जुन आदि कतिपय सन्तों में विष्णु के साकार एवं अवतारवादी रूपों का यथेष्ट परिचय मिलता है । सन्त साहित्य के सन्दर्भ में कविवर जयदेव ने अपने पदों में चक्रधर विष्णु को भजने और उनकी शरण में जाने का अनुरोध किया है ।[62]

कबीर साहित्य के प्रसिद्ध अध्येता डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के पदों में प्रयुक्त विष्णु के नामों को निर्गुण के साथ सगुण अवतारों के अर्थ में भी माना है ।[63]

उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संत साहित्य में ईश्वर का निर्गुण निराकार रूप में चित्रण होते हुये भी उसमें सगुण साकार के तत्व विद्यमान हैं, जिसमें ऐश्वर्य एवं माधुर्य रूपों का अपूर्व संगम दिखायी देता है । इसके अतिरिक्त विशेष रूप से अवधेय यह है कि उक्त चित्रण में पौराणिक

अवतार-परक कथाओं का भी यथेष्ट सम्बन्ध लक्षित होता है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्त साहित्य में प्रतिपादित निर्गुण ईश्वर के अवतारवादी तत्वों का निम्नवत् तीन प्रकार से समावेश दिखायी देता है– प्रथम, उनके अवतारोचित कार्यो से द्वितीय–विष्णु एवं उनके अवतारों से सम्बद्ध भक्तों के भगवत्कार्यों से, तृतीय–विष्णु से सम्बद्ध पौराणिक कथाओं के उल्लेखों से ।

कबीरदास एक पद में ऐस विष्णु का उल्लेख करते हैं जिसकी नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुये हैं और चरणों से गंगा निकली है । वे उसी जगद्गुरू गोविन्दहरि की भक्ति भी चाहते हैं ।[64] गुरू राम दास ऐसे हरिका भजन करने के लिये कहते हैं, जिसका नाम शुक, जनक आदि जपते हैं तथा जिसका नाम जपकर सुदामा, ध्रुव, प्रह्लाद आदि जपकर तर गये ।[65] गुरू अर्जुन ने एक पद में विष्णु के पौराणिक रूप का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है जिसमें विष्णु को विभिन्न प्रचलित नामों के अतिरिक्त उनके अवतारों एवं अवतारी कार्यो का भी वर्णन हुआ है ।[66] सिक्ख गुरूओं में गुरू अर्जुन और परवर्ती गुरू गोविन्द सिंह दोनों ही अवतारवाद के प्रबल समर्थक प्रतीत होते हैं ।[67] इस प्रकार कबीर दास आदि सन्तों के अनेक पदों में भी अवतारवाद के वर्णन प्राप्त होते हैं । उसका विशेष कारण यह है कि इन सन्तों में नामोपासना का अत्यधिक प्रचार था । इस नामोपासना में भजन एक मात्र सहारा रहा है । जिसे पौराणिक अवतारवादी तत्वों के समावेश के लिये पर्याप्त स्थान मिला है । सन्त कबीर हरिभजन का प्रमाण प्रस्तुत करते हुये पौराणिक भक्तों के उद्धार की भी चर्चा करते हैं ।

उनके कथनानुसार हरिभजन के प्रताप से ही जीव ऊंची पदवी प्राप्त करता है । पत्थर जल पर तैरने लगते हैं, अधम भील और अजाति गणिका विमान पर चढ़कर जाते हैं ।[68]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह विदित हो जाता है कि वस्तुतः इन सन्तों ने जिस अवतारवाद का विरोध किया है वह परम्परा-वादी एवं कट्टर पंथी पण्डितों और व्यासों द्वारा उपदिष्ट हैं । हिन्दू–मुसलमान में विद्वेष पैदा करने वाला रूढ़ि-ग्रस्त एवं अन्ध–परम्पराओं में आवृत और मूर्तिपूजा पर आश्रित अवतारवाद इन सन्तों को मान्य नहीं है ।[69] क्योंकि एक ओर जहां सन्तों में अवतारवाद की आलोचना मिलती है वहीं दूसरी ओर उसके परिनिष्ठित रूप का भी दर्शन होता है । जिन्होंने पौराणिक भक्तों को चाहे वे सगुण हों या निर्गुण हों केवल हरि के भक्त के रूप में ग्रहण किया है । कबीरदास के अनुसार सभी के सखा और स्वामी भगवान् वहीं हैं जिन्होंने हिरण्यकशिपु को नख से विदीर्ण किया है तथा भक्त प्रह्लाद के वचनों की रक्षा की है ।[70]

सन्त रैदास का कथन है कि मेरा अटल विश्वास है कि ईश्वर सन्त पालक है जिन्होंने अजामिल, गज और गणिका का उद्धार किया है और कुंजर को बन्धन से मुक्त किया है । वे आगे कहते हैं कि जिन्होंने ऐसे दुर्मति भक्तों को मुक्त किया है वे रैदास को क्यों मुक्त नहीं करेगें ।[71] इसी प्रकार कुंजरदास के कथनानुसार भगवान् ने अनेक सन्तों का उद्धार किया है । वे अपनी प्रतिज्ञा का कभी उल्लेख नहीं करते हैं । जिन्होंने सगुणोंपासक तुलसीदास के समान रामोपासना की परम्परा का भी उल्लेख किया है । वे कहते हैं कि

जिस रामनाम का उपदेश शंकर ने गौरी को किया था, शेष लोग उसी नाम को सदैव जपते हैं । उसी नाम का प्रचार नारद ने किया था, वहीं ध्रुव के ध्यान में तथा प्रह्लाद के लिये वे ही प्रकट हुये थे ।[72]

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त सन्तगण निर्गुण ईश्वर के उपासक होते हुये सगुण और अवतारी विष्णु के कट्टर विरोधी नहीं थे । अन्यथा वे पुराणों में प्रचलित विष्णु के अवतारवादी उद्धार कार्यों का समावेश अपने पदों में कदापि नहीं करते । इसके अतिरिक्त वे जिस निर्गुण ईश्वर को अपना उपास्य मानते हैं वहीं निर्गुण विष्णु ही दश-अवतार धारण करता है । उसके नाम के विविध पर्याय इनके पदों में प्राप्त होते हैं । नामोपासक होने के कारण इन्होंने विष्णु एवं उनके अवतार नामों की सदैव उपासना की है ।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उपास्य की दृष्टि से निर्गुण और सगुण सन्तों में केवल नामोपासना और मूर्ति उपासना को लेकर जितना मतभेद था उतना विष्णु के अवतारवादी रूपों को लेकर नहीं था । उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्त-साहित्य में अवतारवादी तत्व प्रचुर मात्रा में विकीर्ण दिखायी देते हैं । सन्त-साहित्य में अपने इष्ट देव के प्रति सन्तों के मन में अवतार भावना विद्यमान रही है । पौराणिक अवतारों की सगुण धारा के सन्तों में दशवतारों के जिन गुणों और कार्यो की चर्चा की गयी है वही गुण और कार्य इन सन्तों ने अपने इष्ट-देव में आरोपित किये हैं ।

प्रयोजन की दृष्टि से अवतारवाद :-

भारतीय अवतारवाद का प्रयोजन साधुओं की रक्षा, दुष्टों का

दमन और धर्म की स्थापना रहा है किन्तु इस्लामी पैगम्बरों के अवतारवाद में ईश्वरीय सन्देश एवं ईश्वरवाद का प्रवर्तन मुख्य प्रयोजन रहा है । सूफी साहित्य में साधारण रूप में ईश्वर के दो प्रकार के आविर्भाव लक्षित हैं– प्रथम आविर्भाव के रूप में जीव और जगत् माना जाता है, जो इसकी ज्योति के अंश स्वरूप विभिन्न रूपों में आविर्भूत होते हैं । तथा द्वितीय आविर्भाव के रूप में उसकी ज्योति के अंश से पैगम्बरों का निर्माण होता है जो विश्व में आकर ईश्वर का सन्देश सुनाते हैं और सम्प्रदायों का प्रवर्तन करते हैं । दोनों में ही धर्म संस्थापन और ईश्वर का दिव्य–संदेश अवतारवाद का मुख्य प्रयोजन है ।

सन्त कवि रज्जब ने श्रीमद्भागवत एवं सूफी अवतारवाद का अपूर्व समन्वय अपने पदों में किया है । उनके मतानुसार सब का आदि कारण नारायण है जो कार्य रूप या विश्व के रूप में अभिव्यक्त सम्भवतः प्रथम अवतार है ।[73] वही ब्रह्मा माया के द्वारा जीव रूप में आविर्भूत होता है ।[74] जीवात्मा उत्क्रमित होने पर आत्मब्रह्म के रूप में परिणत हो जाता है ।[75] रज्जब का कथन है कि आदि नारायण दीपक है और आविर्भूत आत्मायें दर्पण के समान उसका प्रकाश प्रतिबिम्बित करने वाली हैं ।[76] इस प्रकार दशावतार के अन्तर्गत अवतारवाद अपनी चरम सीमा पर पहुंचता हुआ लक्षित होता है । प्राचीन साहित्य में दशावतार के प्रयोजनों का जो महत्वपूर्ण स्थान था, इस युग में ईश्वर की समष्टिगत अभिव्यक्ति में उसका वैसा रूप दिखायी नहीं देता है । सगुण सम्प्रदायों में भी अवतारों का ब्राह्मीकरण हो गया था और उसके प्रयोजन को लीलात्मक एवं रसात्मक रूप प्रदान कर दिया गया था । इस प्रकार प्रारम्भ में

जिस अवतारवाद का सम्बन्ध केवल अवतरण, जन्म अथवा किसी विषेश प्रयोजनवत् आविर्भाव मात्र से था, इस युग को ईश्वर की समस्त अभिव्यक्तियों के निमित्त उसका प्रयोग किया जाने लगा था ।

वैष्णव अवतारों के रूप :—

सन्त साहित्य में अवतारों के सम्बन्ध मे जो कुछ उल्लेख हुये हैं इस विशाल वाड्मय की तुलना में उनकी मात्रा अत्यन्त अल्प है । इसके मुख्यतः दो कारण प्रतीत होते हैं । उनमें एक तो है निराकारोपासना और दूसरा है मुक्तक काव्यों का प्रयोग । सन्त साहित्य में मुक्तक काव्य की प्रधानता होने के कारण महाकाव्य अथवा पौराणिक अवतारों का पूर्ण एवं विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं होता है फिर भी सन्त साहित्य में प्रसंग वश उनका विविध रूपों में उल्लेख मिलता है ।

नृसिंहावतार :—

सन्तों की रचनाओं में प्रह्लाद कथा के प्रसंग में दशावतारों में नृसिंहावतार का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है । राम और कृष्ण आदि अवतारों की अपेक्षा नृसिंह अवतार के अवतार विरोधी रूप प्रायः कम मिलते हैं । अवतारवाद के कट्टर आलोचकों ने भी कम से कम नृसिंहावतार का उल्लेख उसके पूर्ववर्ती रूप में किया है । नृसिंहावतार के उल्लेख का कारण सम्भवतः सन्तों की नामोपसना प्रतीत होती है । विष्णु पुराण में नृसिंहावतार की जो कथा मिलती है उसमें सन्तों में मान्य नामोपासनाएं एकेश्वरवादी निराकार ईश्वर तथा सर्वान्तर्यामी रूप का समावेश हुआ है । सम्भव है, इन्हीं उपादानों के आधार पर

इस अवतार को सन्तों का समर्थन प्राप्त हुआ होगा ।[77] सन्त कवि कबीरदास के एक ही पद में नृसिंहावतार का वर्णन प्राप्त होता है जो 'कबीर ग्रन्थावली' और गुरू ग्रन्थ साहब में न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ संगृहीत किया गया है । यहां पर नृसिंह, प्रह्लाद की कथा के साथ–साथ नामोपासना का महत्व भी प्रदर्शित किया गया है । इस पद के अनुसार खम्भे से प्रकट होकर नृसिंहावतार ने हिरण्यकशिपु को अपने नख से विदीर्ण किया था । भक्ति भाव के कारण उस देवाधिदेव का प्रादुर्भाव हुआ था । इस प्रकार उन्होंने प्रह्लाद को अनेक बार उबारा है ।[78] सन्त कविनामदेव ने भी नृसिंहावतार का उल्लेख किया है । इनके अनुसार हिरण्यकशिपु को मारकर नृसिंहावतार ने देवताओं और मनुष्यों को सनाथ किया था ।[79] सन्त कवि तुकाराम ने भी अपने पदों में कहा है कि जिसने हिरण्य--कशिपु का वध किया हैं वहीं हमारा सांई है ।[80] इसी प्रकार गुरू अमरदास, सन्त दादूदयाल ने भी प्रह्लाद कथा के सन्दर्भ में नृसिंहावतार की चर्चा की है । सन्त रैदास ने भी प्रह्लाद लीला का वर्णन किया है जिसमें नृसिंहावतार की कथा का विस्तार प्राप्त होता है । इसके अनुसार उन्होंने प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु का वध करके प्रह्लाद का राजतिलक किया था ।[81]

इस प्रकार दशावतारों में नृसिंहावतार इन सन्तों के मध्य में अधि--क लोक–प्रिय रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रह्लाद की कथा में खड्ग और खम्भ आदि मे विद्यमान विष्णु के जिस सर्वात्मवादी रूप का परिचय मिलता है, सम्भवतः वही सन्तों का निर्गुण निराकार किन्तु भक्त-वत्सल और सन्त-सुखदायी

उपास्य रहा है । प्रह्लाद ने उस निराकार या निर्गुण विष्णु की उपासना, नाम कीर्तन अथवा नामजप के माध्यम से ही की थी । सम्भवतः सन्तों ने इसी नामोपासना को अपने जीवन में स्वीकार किया था और शायद इसी से नृसिंहावतार उनके पदों में अधिक चर्चित विषय रहा है ।

रामावतार :-

सन्त-साहित्य में जिस राम का परिचय मिलता है वे रामानुज, राघवानन्द और रामानन्द की परम्परा में कबीर आदि सन्तों द्वारा गृहीत माने जाते हैं । कबीर आदि सन्तों ने राम को भी आत्म ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है ।[82] उनके गुरू रामानन्द के नाम से प्रसिद्ध एक रचना 'ज्ञान तिलक' में जिस राम के प्राकट्य का उल्लेख हुआ है, वे भी आत्मब्रह्म राम हैं ।[83] सन्तों में निराकार उपासना के साथ ही नामोपासना का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । इसी से दशरथ पुत्र एवं व्यक्ति राम की अपेक्षा राम नाम को अधिक महत्व दिया गया है ।[84]

अध्यात्म रामायण में राम को आत्मब्रह्म, चेतन तथा सर्वत्र परिपूर्ण बताया गया है । सन्तों में राम के अवतारी रूप की अपेक्षा इन्हीं रूपों का अधिक प्रचार रहा है । सन्तों ने जहां एक ओर राम के पौराणिक रूपों का प्रासंगिक उल्लेख किया है, वहीं उन्होने निर्गुण राम को विशिष्ट या उसको भिन्न सिद्ध करने के प्रवाह में राम के अवतारत्व की भी चर्चा की है । सन्त कवि दादू का कथन है परन्तु दादू अलख, अनादि राम को भजते हैं ।[85] इससे विदित होता है कि सन्तों ने राम के जिस रूप को लिया है वे विष्णु के सगुण अवतार

न होकर निर्गुण निराकार विष्णु के एक भिन्न रूप में प्रचलित पर्याय मात्र है । कहना न होगा कि सन्त साहित्य में राम को निर्गुण विष्णु का पर्याय मानना अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है । इसीलिये कबीर दास कहते हैं कि दशरथ नन्दन राम उसी प्रकार काल के शिकार हुये जिस प्रकार अन्य लोग होते हैं और उन्हीं के साथ लक्ष्मण और सीता भी चली गयी ।[86] कबीरदास आगे कहते हैं कि हमारे आराध्य देव सृष्टि कर्ता राम ने न तो सीता से विवाह किया था और न जल में पुल ही बांध था ।[87] उनके अनुसार कितने ही राम और कृष्ण जैसे लोग माया के भ्रम में पड़े रहे फिर भी उन्हें ईश्वर का अन्त नहीं मिला ।88 वे कहते हैं कि जिस राम को ये लोग कर्ता और स्रष्टा कहते हैं वह भी काल के आक्रमण से नहीं बच पाया है । इससे स्पष्ट है कि उक्त सन्तों ने दशरथ के घर में अवतार लेने वाले राम को मायिक और नश्वर माना है ।

दूसरी ओर सन्त नाम देव, गुरू–अर्जुन, गुरूनानक ने ईश्वर के अवतारवादी रूपों को स्वीकार किया है । नामदेव के अनुसार राम के द्वारा अहिल्या का उद्धार किया जाना, गुरू अर्जुन के अनुसार घट–घट व्यापी राम का असुर संहारक होना, गुरू नानक के अनुसार राम के द्वारा समुद्र में सेतु बंधवाना, दैत्यों का वध तथा 33 करोड़ देवी देवताओं का उद्धार आदि कार्य करना अवतारी राम के दुर्लभ धर्म-संस्थापना हेतु किये गये कार्य हैं । इस प्रकार कुछ सन्तों ने जहां एक ओर राम के पौराणिक रूपों का खण्डन किया है वहीं दूसरी ओर कुछ सन्तों ने उनके अवतारवादी रूपों को स्वीकार किया है । सन्त साहित्य के अध्ययन के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निर्गुण उपासक

सन्तों में मूर्ति पूजा का प्रचार न होने के कारण, इनके राम अवतारवादी उद्धार कार्योंसे युक्त होते हुये भी निराकार राम हैं जो उनके विशेष रूप में पूजनीय, उपास्य इष्टदेव बने हुये हैं ।

श्रीकृष्णवतार :–

राम के समान कृष्ण के प्रति सन्तों के दो प्रकार के दृष्टिकोण दिखायी देते हैं । एक ओर तो कबीर, नानक आदि सन्तों ने कृष्ण के पौराणिक एवं अर्चावतारी रूपों की आलोचना की है तो दूसरी ओर नामदेव, गुरू अर्जुन आदि ने सगुण और अवतारी रूपों का वर्णन किया है ।

कबीरदास के अनुसार देवकी नन्दन कृष्ण भी माया-ग्रस्त और साधारण मनुष्य के सदृश मृत्यु के पात्र हैं ।[89] कितने मुरली-धर कृष्ण हो गये परन्तु उन्हें ईश्वर का अन्त नहीं मिला । गुरू नानक प्रत्येक युग में गुरू को गोपाल मानते हैं ।[90] वे गुरू गोविन्द और गुरू गोपाल का प्रयोग बार–बार करते हैं तथा सन्त और गोविन्द में कोई भेद नहीं मानते हैं ।[91] सन्तनामदेव कहते हैं कि देवकी धन्य है जिसके घर कमलापति का प्रादुर्भाव हुआ है ।[92] वह बृन्दावन का वनखण्ड भी धन्य हैं जहां श्री नारायण स्वयं क्रीड़ा करते हैं । नामदेव के स्वामी वंशी बजा रहे हैं और गाय चरा रहे हैं ।[93] इससे स्पष्ट है कि अवतार कार्यो का उल्लेख होते हुये भी सन्त कवियो की अधिकांश दृष्टि कृष्ण के निराकार विष्णु के पर्याय के रूप में व्याप्त रही है ।

सन्तों में उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्ति और गुरू में अवतारत्व की भावना :—

प्राचीन भारतीय साहित्य में दशावतार-परम्परा सन्दर्भित अध्ययन से यह विदित होता है कि उसमें देवताओं का मानवीकरण तथा ईश्वर के विभिन्न प्राणियों एवं मनुष्यों में अवतरित होने की प्रवृत्ति दिखायी देती है । किन्तु मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट कर्म करते-करते अपने ऊर्ध्वगामी गुणों के कारण सन्त स्वयं एकेश्वरवादी ईश्वर के समान हो जाता है और उसका पर्याय बन जाता है । इन सतों के अनुसार मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास उसके चरमोत्कर्ष में दिखायी देता है जब वह स्वयं ईश्वर उपास्य के समान हो जाता है । मध्यकालीन सन्तों की यह अवधारणा अवतारवाद से भिन्न प्रतीत नहीं होती है क्योंकि अवतार की परम्परा में जिन महापुरूषों को अवतार माना गया है उनके अवतारत्व का विकास भी उनमें निहित कतिपय ऊर्ध्वगामी और उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ ।

वैदिक काल में मानव के लिये कल्याणकारी होने के कारण प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को भी देवता मान लिया गया था और उनकी विभिन्न देवताओं के रूप में कल्पना की जाती रही है । इसी वैदिक काल में ऋषियों को देवताओं की समानता प्राप्त हुई थी और ऋग्वेद 4.34.3 के अनुसार ऋभु गण मनुष्य से देवत्व को प्राप्त हो गये थे । यह परम्परा आगे भी उत्तरोत्तर विकसित होती गई । जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्वानों, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों, राजाओं, माता-पिता, गुरू और अतिथियों को भी देवताओं के रूप में

प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी थी । शतपथ ब्राहाण 3.7.10 अथर्ववेद 6.84.2 तैत्तिरीयो पनिषद् शिक्षा वल्ली 11 में उल्लिखित 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', आचार्य देवोभव इत्यादि उद्धरणों से उक्त प्रवृत्ति और परम्परा प्रमाणित होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल से ही अपने ऊर्ध्वगामी गुणों और विचारों के कारण समाज में मनुष्य की देवत्व के रूप में प्रतिष्ठा होने लगी थी और देवताओं का मानवीकरण होने से उनके मानव रूप प्रतीत होने लगे थे । उस समय मनुष्य की जिज्ञासा एक ऐसे परम-पुरूष या महामानव की ओर थी जो मनुष्यमात्र और प्राणिमात्र से श्रेष्ठ, महान् तथा स्वयं पूर्ण मानव रूप में अत्यन्त महान् और महिमा-मण्डित थे । उनकी यह कल्पना ऋग्वेद के पुरूष सूक्त 10-90 में साकार होते हुये दिखायी देती है । आगे चलकर वेदान्त के ग्रन्थों, उपनिषदों में पुरुष मानव और पुरूष ब्रह्म की कल्पना का विकास हुआ इसलिये मुण्डकोपनिषद् 3.3.2 में कहा गया है कि- 'ब्रह्मविद् ब्रहौव भवति' अर्थात् ब्रह्म-वेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है । ब्रह्मवाद और एकेश्वरवाद के इस वेदान्तीकाल में ब्रह्म और ईश्वर, आत्मा और परमात्मा, ईश्वर और जीव का समाहार अथवा एकरूपता विकसित हुई थी ।

गुरू में अवतारत्व :-

मध्य युग के सन्तों में भी सन्तभाव और ब्रह्मभाव की एकता परिलक्षित होती है । विभिन्न सम्प्रदायों में गुरू की इष्ट देव के रूप में पूजा की जाती है और गुरू में ईश्वर अथवा अवतार के सदृश भावना रखी जाती है । कबीर के 'गुरू और गोविन्द' तो एक हैं और 'दूजा यह आकार' में गुरू और

गोविन्द का समान रूप से महत्व स्पष्ट है ।[94]

दादूदयाल के अनुसार वह ईश्वर अन्धे को नेत्र युक्त और जीव को ब्रह्म बनाने की शक्ति रखता है ।[95] गुरूनानक, गुरू–अमरदास आदि सिख परम्परा के गुरू को ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि से स्वरूपित करते हैं ।[96] सन्त मलूकदास अपने गुरू की लीला और महिमा को अद्‌भुत बताते हैं । उनके अनुसार गुरू न तो कुछ खाता–पीता है, न सोता जागता है, न मरता है और न जीता है । वह बिना वृक्षों के फल फूल की रचना करता है । यह जो सृष्टि विस्तार दिखायी देता है वह सब उसके खेलों के कार्य हैं । वह क्षणमात्र में अनेक रूप धारण कर लेता है ।[97] सुन्दरदास अपने गुरू दादूदयाल के अवतारोचित गुणों का वर्णन करते हैं । वे कहते हैं कि गुरू तो अवतारी पुरूष है । वह जिस घट में निवास करता है उसका नाम दादू है । वह पूर्ण चन्द्र के सदृश जगत् को प्रकाशित करता है । वह घट में रहते हुये भी घटातीत है ।[98]

इससे स्पष्ट होता है कि सन्तों में गुरू केवल सम्प्रदाय प्रवर्तक नहीं था अपितु अपने अनुयायियों के मध्य वह इष्ट देव, अवतारी और उपास्य के रूप में चर्चित था । सन्तों की इस गुरू अवतार परम्परा का एक क्रम बद्धरूप सिख गुरूओं में स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित होता है । इस प्रकार सन्त गुरू अवतार रूप में ग्रहीत होने के साथ ही उपास्य रूप में भी पूज्य रहे हैं ।

कबीरदास में अवतारभावना :–

सन्त कबीर के देहावसान के पश्चात् कबीर पंथी इनके शिष्यों ने इनके अवतारत्व का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था । कबीर केवल उपास्य के रूप

में ही नहीं मान्य रहे अपितु उनमें अवतारोचित कार्यों का भी समावेशकर दिया गया था । कबीर के शिष्य धर्मदास का कहना है कि परम हंसों के उद्धार के लिये कबीर ने काशी में अवतार लिया था [99] और मगहर में हिन्दु–तुर्कों का संघर्ष मिटाने के लिये वे कब्र से प्रकट हुये थे । तथा उन्होंने अलौकिक कार्य किये थे ।[100] इनका ही यह भी कथन है कि समुद्र की भारी लहरों के कारण भगवान् जगन्नाथ का मन्दिर नहीं बनाया जा सकता था इसलिये अवतारी कबीर ने उस स्थान से समुद्र को हटा दिया था और भगवान् जगन्नाथ का मन्दिर निर्मित हुआ था, जहां लोग तीर्थ यात्रा पर जाते हैं । उनके अनुसार कबीर दास मुक्तिदाता, निराकारोपासना की प्रतिष्ठा करने वाले ईश्वर के अवतार थे । इस प्रकार दशावतार-परम्परा से प्रभावित भक्त शिष्यों ने मध्ययुग के न केवल सन्त कबीर में प्रत्युत उन सभी सन्तों में अवतारत्व की प्रतिष्ठा की है जिनका समाज में विशिष्ट स्थान रहा है, जो परम हरि भक्त रहे हैं तथा जो अपने ऊर्ध्वगामी गुणों और उत्क्रमणशील प्रवृत्तियों के कारण समाज में ईश्वर के अवतार की भांति वन्दनीय और पूजनीय रहे हैं ।

पंचम अध्याय

अवतारवाद के विविध रूप

पंचम अध्याय

अवतारवाद के विविध रूप :–

दशावतार–परम्परा के आलोक में भारतीय साहित्य के अनुशीलन–परिशीलन से यह विदित होता है कि अवतारवाद के विविध रूप हैं इनमें अंश, कला, विभूति, आवेश, पूर्ण, व्यूह, लीला, युगल और रस रूप उल्लेखनीय है । मध्ययुगीन हिन्दी सन्त-साहित्य में दशावतार वर्णन के प्रसंग में जिस अवतारवाद की अभिव्यक्ति हुई है वह प्राचीन एवं पूर्ववर्ती साहित्य का ही यत्किंचित् परिवर्तित, परिवर्धित और तत्कालीन प्रभावों से प्रभावित एवं संवलित स्वरूप प्रतीत होता है । विभिन्न सम्प्रदायों में अवतारवाद के जिन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है और परम्परागत पारिभाषिक शब्दों का निरूपण किया गया है उन्हीं के व्यावहारिक रूपों का प्रयोग तत्कालीन कवियों में दृष्टिगोचर होता है । यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि अवतारवाद से सम्बद्ध अंश कला, विभूति, और आवेश इन चार रूपों का जिन साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत विचार किया गया है, उन्हीं सप्रदायों के मध्यकालीन कवियों में इनका प्रायः उल्लेख मात्र दिखायी देता है । साथ ही लीला, युगल और रस रूपों का इनमें यथोचित विस्तार भी अवलोकनीय है ।

मध्यकालीन कवियों द्वारा अंश, कला विभूति, आदि शब्दों का जहाँ प्रयोग किया गया है, वहाँ पारिभाषिक रूपों में प्रयुक्त होने के कारण वे अपने विकसित रूप तथा पूर्व परम्परा का सम्पूर्ण रहस्य अपने में ही अन्तर्निहित रखते हुये दिखायी देते हैं । मध्यकालीन कवियों ने अपने विभिन्न प्रसगों में इन

पारिभाषिक शब्दों का यथा–समय उल्लेख किया है । श्री कृष्ण अवतार के प्रसंग का वर्णन करते हुये नन्ददास का कथन है कि यदुकुल में ईश्वर अनेक अंश, कला और विभूति के साथ अवतरित हुये हैं ।[1] वशिष्ठ संहिता के आधार पर वैष्णव-धर्म-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि जिस राम के अनन्त अवतार हैं उनमें कोई कलावतार है, कोई अंशावतार है, कोई विभूति अवतार है और कोई आवेश अवतार है ।[2] मध्यकालीन कवि 'ध्रुवदास ने बृन्दावन की महिमा का वर्णन करते हुये कहा है कि श्रीकृष्ण के अंश, कला आदि जितने प्रकार के अवतार हैं वे सभी वृन्दावन का सेवन करते हैं ।[3] भक्त कवि व्यास ने अपने उपास्य राधावल्लभ को आदि देव के रूप में चित्रित किया है और यह कहा है कि राधावल्लभ मूल फल हैं तथा अन्य रूप पुष्पदल और शाखा प्रशाखादि के समान हैं । उनका यह भी कथन है कि इसी आदि देव से अंश, कला आदि विभिन्न अवतार होते हैं ।[4]

इसी प्रकार करूणानिधि कवि ने विट्ठलनाथ के प्रति अपना विश्वास प्रकट करते हुये कहा है कि आंशकला इत्यादि भगवान् विट्ठलनाथ (विष्णु) के ही अवतार हैं । समस्त विभूतियाँ विष्णु भगवान् की ही देन है । इसमें उन्होंने क्षर और विष्णु के अक्षर रूपों से भजन करने वालों की भी चर्चा की हैं ।[5] युगल भावना की श्रेष्ठता प्रमाणित करते हुये श्री भगवद्मुदित ने कहा है कि जो युगल भावना में नित्य निरन्तर निमग्न रहते हैं । उन्हें अंश, कला इत्यादि सभी चाहते हैं । समस्त विभूतियाँ उन्हीं की मानी गयी हैं और इस प्रकार उन्हीं में निमग्न हृदय अन्य किसी को नहीं जानता है ।[6] इससे अंश कला आदि रूपों

का प्रयोग विशेष अर्थ में या पारिभाषिक रूप में प्रतीत होता है । जिनका प्रासंगिक प्रयोग उक्त कवियों ने अपने पूर्व अपास्यों की तुलना में किया है । यहाँ अंश, कला, विभूति आदि का पृथक्–पृथक् विवेचन अत्यावश्यक प्रतीत होता है जो निम्नवत् है :–

अंशावतार :

अवतारवाद के यथोचित विकास के मूल में सर्वप्रथम अंशावतार की प्रवृत्ति दिखायी देती है । दार्शनिक चिन्तकों की दृष्टि से परब्रह्म का असीम रूप जब ससीम रूप में गृहीत होता है तो वहां पूर्ण की अपेक्षा अंश का ही अवतार प्रतीत होता है क्योंकि ईश्वर व्यक्ति मात्र के रूप में ससीम हो सकता है असीम नहीं । इसीलिये सम्भवतः शंकराचार्य अपने गीता भाष्य में श्रीकृष्ण को अंशावतार ही स्वीकार करते हैं ।[7] यदि अवतार रूप में निरपेक्ष ब्रह्म को पूर्णावतार माना जाये तो वह देवता, साधु, भक्त और अपने आराधकों का पक्ष लेने वाला होने के कारण एक पक्षीय अथवा एंकागी हो जाता है ।[8] इसीलिये ब्रह्म का अवतारवादी रूप भक्तों को अभीप्सित है और वहीं उनका उपास्य है । वैदिक साहित्य में अवतारवाद की भावना यद्यपि बद्ध मूल नहीं थी इसलिये मनुष्य रूप में आविर्भाव होने की प्रवृत्ति वहां दृष्टिगोचर नहीं होती है किन्तु फिर भी कतिपय वैदिक मन्त्रों में एक ही ईश्वर के विभिन्न देवताओं या दिव्य शक्तियों के अस्तित्व का पता चलता है । वैदिक साहित्य में कहा है–एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् विप्रगण एक सत् तत्व को अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं अथवा 'एकोऽहं बहुस्याम्' अर्थात् मैं एक हूँ और अनेक रूप धारण करना चाहता

हूँ इत्यादि वैदिक वाक्यों में एक के अनेक होने की भावना विद्यमान है और यह परम्परा उत्तरोत्तर उपनिषदों में विकसित होती हुई दिखायी देती है । कठोपनिषद् 2.2 में यह कहा है कि एक ही परमधामवासी परमात्मा अन्तरिक्ष में वसुधरों में अतिथि, यज्ञ में अग्नि और सृष्टि में पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि के रूप में प्रकट होने वाला वृहत् ऋत् है । वह एक होता हुआ भी अग्नि, वायु, सूर्य आदि के रूप में विविधि रूप धारण करता है ।[9]

मध्यकालीन सन्त कवियों ने भी उपनिषदों के उक्त रूपों से युक्त सगुणोपासकों पर उन्हीं के समानान्तर विभिन्न अंशात्मक रूपों के उत्पन्न होने की कल्पना की है । गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य, रामचरित मानस में कहा है कि उपास्य राम से शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि नाना प्रकार के अंश रूप उत्पन्न होते हैं ।[10] इसी प्रकार कविवर केशवदास उपास्य राम की स्तुति करते हुये कहते हैं । कि–तुम्ही सृष्टि रहस्य के ज्ञात आदि देव हो । तुम्ही से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र और अग्नि इत्यादि अंशावतार के रूप में प्रकट हुये हैं ।[11]

ईश्वर के एक देशीय या अंशस्वरूप होने की भावना ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में आये हुये पुरूष सूक्त के 'पादोऽस्यविश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' में भी लक्षित होती है ।[12] छान्दोग्योपनिषद् में इसका विकास क्रमशः वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और अद्वैत पादों में माना गया है ।[13] विष्णु पुराण 1,22,24–99 में सृष्टि पालन और संहार से सम्बद्ध ब्रह्मा, मरीचि काल और प्राणी, विष्णु, मनु, काल, सर्वभूतात्माक, रूद्र, अग्नि, काल अखिल भूत आदि को

चार–चार अंशों में विभक्त किया गया है । इस प्रकार परमात्मा के विषय में जो कुछ भी ज्ञात हैं वह ज्ञेय रूप इसका केवल अंशमात्र है । केनोपनिषद् 2:1 में ब्रह्म के इस अल्परूपात्मक ज्ञान का उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त मनुष्य आदि सभी प्राणियों के जीवात्मा को परमात्मा का अंश माना जाता रहा है । तुलसीदास का यह कथन 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' इसी परम्परा का द्योतक है । यह कहना न होगा कि मध्यकालीन साहित्य के निर्गुण या सगुण सभी भाव धाराओं में यह प्रवृत्ति समान रूप से दिखायी देती ही नहीं दिखायी देता किन्तु इस वर्ग के काव्यों के विकास में अंश रूपों का योग माना जा सकता है, क्योंकि सन्तों में परमात्मा और आत्मा के कार्यगत और भावगत विविध रूपों की अनेक स्थलों पर मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में अंशाविर्भाव या अंशभिव्यक्ति से मूल रूपों की प्रतीति समझी जा सकती है ।

अंशावतार की व्याप्ति :

अंशावतार की सर्वाधिक व्याप्ति बहुदेववादी अवतारवाद में मिलती है यहाँ परमात्मा के साथ देवता, दैत्य, हरि सभी का सामूहिक अवतरण होता है । बाल्मीकि विरचित रामायण और महाभारत दोनो प्राचीन महाकाव्यों में सामूहिक अंशावतरण की भावना विद्यमान है । महाभारत के आदि पर्व के 67वें अध्याय में अंशावतार का व्यापक रूप दृष्टिगोचर होता है । यहाँ मनुष्य तथा विभिन्न योनियों में अवतरित देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, हरिण, सर्प और पक्षी इत्यादि के जिन अंशावतारों का विस्तृत वर्णन हुआ है वह प्राचीन पौराणिक प्रवृत्तियों का क्रमशः विकसित रूप प्रतीत होता है

क्योंकि महाभारत के मुख्य नायकों के रूप में वैदिक देवताओं का अंशावतार होता है ।[14] जिसके अनुसार वैदिक काल के मुख्य देवता इन्द्र के अंश से अर्जुन तथा तत्कालीन उपास्य नारायण के अंश से कृष्ण का अंशावतार होता है ।[15] महाभारत की यही परम्परा पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में दृष्टिगत होती है । अंशावतार की परम्परा के सन्दर्भ में हमें बाल्मीकि रामायण में भी संकेत प्राप्त होते हैं । इसके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि देवता अपने अंश से आविर्भूत होते हैं ।[16] तदनुसार विष्णु राम आदि अपने भाइयों के रूप में चार अंशों में विभक्त होकर अवतार ग्रहण करते हैं । अंशावतरण की यह परम्परा 'अध्यात्म रामायण' 1.2, 31–32 और आनन्द रामायण सार काण्ड सर्ग 4 में दिखायी देती है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित मानस में अंशावतरण की इस परम्परा का सविस्तर वर्णन किया है ।[18] इसके अतिरिक्त एक तीसरी परम्परा विष्णु पुराण और भागवत पुराण में मिलती है । जिसमें विष्णु के साथ देवताओं के अंशावतारों का वर्णन किया गया है ।[19] इस परम्परा को मध्यकालीन कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने भी ग्रहण किया है । इस प्रकार महाकाव्य एवं पौराणिक बहुदेववादी अंशावतार का परम्परागत समावेश मध्यकालीन काव्यों में लक्षित होता है ।

अंशावतार की एक भिन्न प्रवृत्ति राजाओं के अंशावतार में भी लक्षित होती है । इनमें विविध देवताओं के अंश पृथक्–पृथक् आविर्भूत न होकर एक राजा में ही समन्वित होते हैं । दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुसार राजा को देवताओं का अंशावतारी माना गया है । मनुस्मृति 17,4 के अनुसार इन्द्र,

वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्र और कुबेर इन आठ देवताओं के अंशों से ईश्वर ने राजा का निर्माणकिया है । वाल्मीकि रामायण 3, 40,12–13 में वर्णन प्राप्त होता है कि राजा राम अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरूण इन पाँच देवताओं के स्वरूप को धारण किये हुये हैं । अवतारवाद का सम्बन्ध ज्यों–ज्यों विष्णु या पुरूष के एकेश्वर–वादी रूप से घनिष्ठतर होता गया त्यों–त्यों उनसे आविर्भूत अखिल सृष्टि भी पुराणों में उनके अंशावतार के रूप में मान्य हो गयी । विष्णु पुराण 1.9.53 में अखिल सृष्टि को परब्रम्ह का अंश कहा गया है । गोस्वामी तुलसीदास प्रत्येक जीव को ईश्वर का अंश ही मानते हैं ।[20] भागवत 1,3/5 में अवतारों के अक्षय पुरूष नारायण के लघुतम अंश से देवता, पक्षी और मनुष्य आदि की उत्पत्ति बतायी गयी है । इस प्रकार अंशावतार के बहुदेववादी रूपों का विकास पुराणों एवं महाकाव्यों में पर्याप्त मात्रा में दिखायी देता है । जिसका प्रभाव मध्यकालीन साहित्य में स्पष्ट से प्रतीत होता है ।

प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य में व्याप्त अवतारवाद के अन्य रूपों की अपेक्षा अंशावतार का यह रूप सर्वाधिक वैज्ञानिक, युक्ति संगत और बुद्धि–ग्राह्य रहा है क्योंकि ईश्वर की पूर्ण सत्ता का मनुष्य या रूप विशेष में केन्द्रित होना तर्कशील या बुद्धिवादी विचारक के लिये उतना युक्ति–युक्त प्रतीत नहीं होता जितना कि असीम ईश्वर के अंश रूप को यथोचित और सम्भावना परक समझा जा सकता है ।

वैदिक, ब्राह्मण, और उपनिषद् साहित्य में जो ब्रह्म विविध शक्तियों में भिन्न–भिन्न रूप में स्थित दिखायी देता है, महाकाव्य काल से लेकर

मध्यकालीन काव्यों तक उसके ही विविध रूपों का पुनः पौराणिक तत्वों से समाविष्ट होकर प्रस्तुत आलोच्य काल के साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है । इसमें भेद केवल इतना ही है कि एक में ब्रह्म ज्ञानी की प्रबल जिज्ञासा और कुतूहल की मात्रा विद्यमान है तथा दूसरे में एक भावुक भक्त की अपूर्व श्रद्धा, भक्ति और विश्वास विद्यमान दिखायी देता है । इसके अतिरिक्त कतिपय महाकाव्यों और स्मृतियों में उपलब्ध एक ही राजा में विभिन्न देवताओं के समावेश की कल्पना भी उपर्युक्त भावनाओं से पृथक् नहीं है क्योंकि प्राचीन साहित्य में बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों प्रायः साथ–साथ अभिव्यक्त होते रहे हैं इसलिये यह निश्चय ही प्रतीत होता है कि अंशावतार पर बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों का ही समान रूप से प्रभाव रहा है । इसके अतिरिक्त प्राचीन साहित्य में अंशावतार या अंश रूपों के साथ कला और विभूति का इस प्रकार समन्वय दिखायी देता है कि अंश, कला और विभूति की मौलिक विषमता समझना अति कठिन प्रतीत होता है । इसलिये अवतारवाद के वर्गीकरण में अंश, कला और विभूति का भेद अति विरल और सूक्ष्म हैं । कला–भारतीय साहित्य में कला शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है किन्तु अवतारवादी साहित्य में यह शब्द अंश के ही विशिष्ट मात्रात्मक बोध का सूचक रहा है । प्राचीन साहित्य में अग्नि की दश सूर्य की द्वादश, चन्द्रमा की सोलह कलाओं का वर्णन मिलता है । किन्तु यहाँ पर इनका सम्बध अवतारवाद से न होकर सम्भवतः ज्योति, ऊष्णता, अथवा अन्यगुणों और रूपात्मक परिवर्तनों से रहा है । कला के पर्याय प्रारम्भिक काल में ब्रह्म, पुरूष या ईश्वर के आंशिक रूपों की अभिव्यक्ति के

लिये भी प्रयुक्त होते रहे हैं और कालान्तर में अवतारवादी उपास्य पुरूष या अवतारवादी विष्णु के विविध अवतार रूपों के लिये भी उनका प्रयोग किया जाता रहा है ।

श्रीमद् भागवत महापुराण 1.3 में विभिन्न अवतारों का वर्णन करने के पश्चात् यह कहा गया है कि ऋषि, मनु, देवता प्रजापति, मनुपुत्र इत्यादि सभी महान् और शक्तिमान् व्यक्ति हरि की कलायें हैं ।[21] इसी तारतम्य में फिर कहा गया है कि कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतार अंश या कलावतार थे ।[22] श्रीमद्भागवत 11.4.27 के अनुसार दत्तात्रेय, सनत्कुमार, हंस और ऋषभ इत्यादि हरि के अंशावतार हैं-और इन्होंने समस्त जगत् के कल्याण के लिये बहुत से कलावतार ग्रहण किये हैं । इससे विदित होता है कि कलावतार अंश का ही विशिष्ट अवतार है । भागवत 10 और 24 के अनुसार शेषनाग को कलावतार और कहीं अंशावतार बताया गया है । भागवत के ही अनुसार सम्राट् पृथु, 'भुवन पालनी--कलावतार' हैं और कपिल 'ज्ञान-कलावतार' हैं । इससे स्पष्ट है कि भागवतकाल में अंशावतार के साथ कलावतार का भी व्यवहार होता रहा है ।

वैदिक साहित्य में स्फुट रूप से कला का प्रयोग मिलता है जिसका अंशावतार से सम्बद्ध होने की अपेक्षा स्वतन्त्र विकास दिखायी देता है । शतपथ ब्राह्मण 10.4.1.6 एवं 10.4.1.17 में कल्प और षोडश कला का प्रयोग हुआ है जिसकी परम्परा उपनिषदों में दिखायी देती है । बृहदारण्यकोपनिषद् में षोडश कला वाले प्रजापति और छान्दोग्योपनिषद् में षोडशकला वाले पुरूष का उल्लेख हुआ है ।[23] प्रश्नोपनिषद् 6.2 में कहा गया है कि इस शरीर के भीतर

ही वह पुरूष है जिसमें षोडश कलायें प्रकट होती है । रथचक्र में चिह्नित सोलह अरों की भाँति पुरूष में षोडश कलाओं का अस्तित्व माना जाता है ।

उपर्युक्त वैदिक उल्लेखों से विदित होता है कि प्राचीन साहित्य में केवल कला या षोडश कला के शब्दों का अस्तित्व मात्र ही विद्यमान नहीं था अपितु पुरूष से उसके अभिन्न सम्बन्ध का भी व्यवहार होता था । कालान्तर में श्रीमद्भागवत के एक श्लोक में कहा गया है कि—सृष्टि निर्माण की इच्छा होने पर ब्राह्मण ने पुरूष रूप ग्रहण किया था । जिसमें दस इन्द्रियां, पंच महाभूत और एक मन के रूप में सोलह कलायें विद्यमान थीं ।[24] यही पुरूष अवतारों का अक्षयकोष तथा आदि अवतार के रूप में बीज रूप में गृहीत हुआ था ।[25]

मध्यकालीन कवियों ने अपने उपास्य राम और कृष्ण आदि में पुरूष से सम्बद्ध उपर्युक्त सोलह कलाओं की मनोरम झांकी प्रस्तुत की है ।[26] मध्यकालीन सम्प्रदायों में पुरूष में इन षोडश तत्वों के स्थान में षोडश कलात्मक शक्तियों का समावेश दिखायी देता है । लघुभागवतामृत के अनुसार श्री, भू कीर्ति, कला, लीला, कान्ति और विद्या ये सात और विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, त्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशान और अनुग्रहा ये नौ मिलकर षोडशशक्तियाँ मानी गयी हैं । यह सोलह शक्तियाँ ईश्वरीय गुण और उनकी शक्तियों से युक्त दिव्य सत्ता के बोधक हैं । सनत्कुमार, नारद, व्यास, आदि ज्ञान प्रधान विष्णु के कलावतार हैं । राजा पृथु तथा भरतादि शक्ति युक्त पुरूष के कलावतार हैं । श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध में और 1.3.27 तथा 11.4.17 में गृहीत कलावतारों के प्रति कहा गया है कि मनु, मनु पुत्र आदि धर्मानुष्ठान प्रजापालन और

धर्मपालन करते हैं और भगवान् युग–युग में सनकादि सिद्धों का रूप धारण कर ज्ञान का उपदेश करते हैं और याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का रूप धारण कर ज्ञान का उपदेश देते हैं और दत्तात्रेय आदि के रूप में रूप धारण कर योग का उपदेश देते हैं । वे ही मरीचि और प्रजापतियों के रूप में सृष्टि का विस्तार करते हैं । सम्राट् के रूप में वे ही दुष्टों का वध और काल रूप से संहार करते हैं । इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि कलावतार के विकास में तथा कला शक्तियों के निर्माण में विष्णु पुराण 6.5.74, 6.5.79 और भागवत 1.10.80 के अनुसार ऐश्वर्य, धर्म यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और शक्ति, बल, वीर्य, तेज, सत्य, अमृत, दया आदि का न्यूनाधिक योगदान रहा है क्योंकि कलावतारों के विशिष्ट कार्यो में कलात्मक शक्तियों की अपेक्षा उपर्युक्त गुणों का अधिक समावेश हुआ है ।

मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में इन रूपों की निरन्तर वृद्धि होती रही है जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से चैतन्य सम्प्रदाय में विभिन्न कलात्मक शक्तियों में प्रस्फुटित हुआ है । इस प्रकार अवतारवादी कलारूप का प्रारम्भ तो अंशावतार के पर्याय के रूप में हुआ है किन्तु मध्यकालीन युग तक इसका रूप ही पृथक् प्रतीत नहीं होता है । अपितु इस वर्ग में उन कलात्मक शक्तियों का भी आविर्भाव हुआ जिनके समावेश से कलारूप का अपना पृथक् महत्व दिखायी देने लगा । सूरसागर पृष्ठ 685 में मध्यकालीन भक्तकवि सूरदास ने षोडश कलावतारी श्रीकृष्ण का वर्णन किया है । इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन कवियों में कला के प्रति आकर्षण विद्यमान है किन्तु मध्यकालीन युग तक इस

वर्ग में अनेक कलात्मक शक्तियाँ भी जुड़ गयी थी जिससे इस कला युग का अपना अलग महत्व हो गया था । गोस्वामी तुलसीदास ने राम--चरित-मानस में विष्णु के मुख से यह कहलवाया है कि–वे नारद के सभी वचन सत्य करेंगे और अपनी शक्तियों के सहित अवतार लेंगे । इसके बाद राम अपनी शक्तियों के साथ अपना कला रूप प्रकट करते हैं ।[27]

विभूति अवतार :–

ईश्वर की अनेक विभूतियाँ हैं । उनके विशिष्ट अस्तित्व के कारण ही कालान्तर में विभूति-वाद को अवतार-वाद में समाहित कर दिया गया । पुराणों में उक्त शक्तियों एवं गुणों का सम्बन्ध सामान्य रूप से विभूति के रूप में होता रहा है इसलिये मध्ययुग में अंश और कला के साथ विभूति को भी अवतारों का एक विशिष्ट हेतु माना गया है । गीता के दसवें अध्याय में विभूतिवाद का प्रसिद्ध रूप सामने था । गीता के अनुसार अनन्त विभूतियों में केवल शुभ विभूतियों का ही वर्णन किया गया है ।[28] शंकराचार्य ने गीता 10.7 में व्याख्या करते हुये उसे योगैश्वर्य जनित सर्वज्ञता आदि, सामर्थ्य को ही विभूतिमाना है ।[29] आचार्य रामानुज विभूति को ऐश्वर्य का पर्याय मानते हैं ।[30] आचार्य आनन्दगिरि विभूतियोग को विविध भूतों में आविर्भूत वैभव को मानते हैं ।[31] इस प्रकार विभूतियों के विकास में ऐश्वर्य आदि गुणों का सहयोग प्रतीत होता है । विभूतिवाद की यह प्रवृत्ति गीता से प्राचीन नहीं मिलती है । यद्यपि ऋग्वेद के दशम मण्डल में पुरूष सूक्त के ग्यारहवें और बारहवें एवं तेरहवें मन्त्रों में कतिपय कार्यो में निहित विभिन्न शक्तियों से उत्पन्न चतुर्वर्ण,

चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि आकाश तथा अन्य लोकों में विभूतिवाद के बीज का अनुमान लगाया जा सकता है ।[32]

गीता में सर्वात्म–रूप में कर्ता की स्थिति बताने के बाद विष्णु, सूर्य, मरीचि, सामवेद, इन्द्र, मनु, शंकर, कुबेर, पावक, सुमेरू, वृहस्पति, स्कन्द, सागर, मृग, एकाक्षर, जपयज्ञ, हिमालय, पीपल, नारद, चित्ररस, कपिल, उच्चैः श्रवा, ऐरावत, राजा, वज्र, काम-धेनु, कामदेव, वासुकि अनन्तनाग, वरूण, अर्यमा, यज्ञ, प्रह्लाद, काल, मृगेन्द्र, गरूड़, पवन, राम, मगर, गंगा, वासुदेव, अर्जुन, व्यास, उशनाकवि आदि अनेक वर्गो के प्रधानों को विभूति रूप में समाविष्ट किया गया हैं । विष्णु पुराण में इसका सैद्धान्तिक रूप स्पष्ट करते हुये शासन एवं लोक–पालन में प्रविष्ट सभी भूताधिपतियों को विष्णु की विभूति माना गया है । इसी पुराण के अनुसार देवता दैत्य दानव, मांसभोगी, पशु, पक्षी, मनुष्य, सर्प, नाग, पर्वत गृह आदि विविध वर्ग के भूत भविष्य एवं वर्तमानकालीन जितने अधिपति एवं भूतेश्वर है वे सभी विष्णु के अंश बतायें गये हैं।[33] भागवत में 11.16.6 के अनुसार गीता की ही विभूतियों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है । यहां इन विभूतियों के अवतारों के सदृश उपास्य रूप में पूजित होने का भी पता चलता है । इसी से गीता में वर्णित एवं अन्य अनेक महाविभूतियों के समाविष्ट होने के साथ–साथ सम्भवतः तत्कालीन युग के अर्चा– विग्रह रूप में उपास्य भाव से प्रचलित वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह, इत्यादि नौ अर्चा मूर्तियों को भी विभूतियों में समाहित किया है ।[34]

हरि के नाना अवतारों के समान विभूतियों की भी गणना नहीं की जा सकती है ।[35] विभूतिवाद के पौराणिक और मध्यकालीन रूप को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इसकी रूपरेखा वैष्णव साहित्य में परवर्ती काल में निर्मित हुई हैं किन्तु प्राचीन काव्य में उपलब्ध अनेक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विभूतिवाद की कल्पना की परम्परा विच्छिन्न प्रतीत नहीं होती । यह सुस्पष्ट है कि ईश्वर के सर्वाभिव्यक्ति रूपों में कुछ विशेषभूति से सम्बन्ध और शक्तिमान् शक्तियों के विशेषीकरण के आधार पर ही विभूतिवाद की कल्पना का विकास हुआ है । इस धारणा का मूलस्रोत ऋग्वेद के दशम मण्डल में आये पुरूष सूक्त के मन्त्रों में विभूषित होने लगता है । जिसका विकसित और अविच्छन्न रूप परवर्ती वैदिक साहित्य के ग्रन्थों में देखा जा सकता है ।

इस प्रकार विभूतिवाद में बहुदेवतावाद एकेश्वरवादी और सर्वेश्वरवाद का समाहित रूप देखने को मिलता है, क्योंकि विभूतिवाद की नाना विभूतियों में एक ही ईश्वरीय ऐश्वर्य की सत्ता प्रतिबिम्बित होती है उसका मूलरूप वैदिक बहुदेवता वाद से अधिक भिन्न नहीं है । निर्वचन शास्त्र के प्रणेता यास्क ने निरूक्त, 7.4.8–9 में वैदिक साहित्य में वर्णित सभी देवताओं को एक ही देवता की भिन्न–भिन्न शक्तियों के रूप में माना हैं । जिसकी पुष्टि परवर्ती अनेक वैदिक ग्रन्थों से होती है । वैदिक साहित्य में विहंगम दृष्टि डालने पर विभूतिवाद के परम्परागत विकास का अनुमान लगाया जा सकता है । श्रीमद्भगवत गीता, विष्णु पुराण, भागवत महापुराण आदि में तो विभूतिवाद का विस्तृत परिचय मिलता है और महाभारत अनुशासन पर्व 14.317–324 में भी विभूतिवाद

का वर्णन अधिगत होता है । यहाँ पर विभूतिवाद का सम्बन्ध शिव से स्थापित किया गया और गीता की अधिकांश विभूतियों का सम्बन्ध शिव से जोड़ा गया ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारतीय धर्म एवं अवतार वाद में विभूति-वाद, बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद एवं विश्वरूप-वाद के समान एक पारिभाषिक महत्व का सिद्धान्त है, मध्यकालीन कवियों ने भी अपने पदों में इस विभूतिवाद से प्रभावित होकर हरि की अनेक विभूतियों का वर्णन किया है ।

श्रीमद्भागवत में इस विभूतिवाद का उपसंहार करते हुये कहा गया है कि जिसमें तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा, और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों वह मेरा ही अंश है ।[36] अतः शक्ति एवं गुणों की दृष्टि से अंश, कला एवं विभूति एक ही समानान्तर भूमिपर लक्षित होते हैं क्योंकि गीता में इन दिव्य विभूतियों को अनन्त बताते हुये यह कहा गया है कि जो जो विभूतिमान् श्रीमान् और ऊर्जित हैं वे ईश्वर के अंश से ही उत्पन्न हुये हैं ।[37] उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि कला एवं विभूति सामान्य रूप से अंश के ही विशिष्ट रूप हैं किन्तु पश्चात् काल में अंश, कला और विभूति तीनों के रूप पृथक्-पृथक् स्पष्ट करने के प्रयास किये गये हैं । सात्वत तंत्र के अनुसार अंश के चार, कला के सोलह और विभूति के सौ भाग बताये गये हैं । परम्परा में अग्नि की दस, सूर्य की बारह और चन्द्रमा की सोलह कलायें प्रसिद्ध हैं ।[38]

आवेशावतार :-

अवतारवाद का क्षेत्र व्यापक होने के अनन्तर अंश, कला और विभूति के अतिरिक्त अवतारों का वर्गीकरण आवेशावतार के रूप में लक्षित होता है । अंश, कला आदि रूपों की तुलना में प्रारम्भिक वैष्णव पुराणों में आवेश रूप का अभाव है । यों तो विष्णु पुराण में अंशावतार, भागवत पुराण में कलावतार और परवर्ती पद्म-पुराण में आवेशावतार का अस्तित्व अवश्य दिखायी देता है किन्तु सामान्य रूप से अन्य पुराणों में कला की अपेक्षा आवेश का व्यापक रूप दिखायी नहीं देता है । आवेशावतार के उदाहरण स्वरूप पद्म पुराण में मान्य पृथु, सनकादि, नारद, परशुराम इत्यादि आवेशावतार के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । पद्म-पुराण के अनुसार हरि इनमें आविष्ट होते हैं ।[39]

यद्यपि भागवत् में केवश अंश और कला का उल्लेख हुआ है किन्तु टीकाकारों ने अंश और कला के साथ आवेश का भी समन्वय किया है । भागवत् के 11वीं शताब्दी के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने भागवत के 1.3.27 की व्याख्या में उपर्युक्त अवतारों पर विचार करते हुये मत्स्यादि अवतारों में ज्ञान, क्रियाशक्ति जनित आवेशों का यथा स्थान समावेश माना है तथा अंशकला और आवेश का समन्वय कर सनत्कुमार आदि को ज्ञानावेश और पृथु आदि को शक्त्यावेश के रूप में ग्रहण किया है ।[40] श्रीधर के अतिरिक्त अन्य टीकाकारों ने भी अंश, कला के साथ आवेश का प्रयोग किया है ।[41]

दशवतार-परम्परा की दृष्टि से मध्यकालीन-हिन्दी-साहित्य अध्ययन के क्रम में यह विदित होता है कि अन्य रूपों के साथ आवेश भी

अवतारवाद का एक रूप विशेष होकर प्रचलित हुआ है । फिर भी एतत्कालीन कवियों में अंश और पूर्ण की तुलना में आवेश का बहुत कम प्रयोग हुआ है । केवल वार्ताओं एवं भक्तमाल में कुछ ऐसे प्रसंगों का उल्लेख हुआ है जिनमें उपास्य इष्ट देवों का आवेश भक्त में होता है । किन्तु प्रयोजन की अपेक्षा इसमें भावावेश का ही अधिक योग दिखायी देता है । दो सौ बावन वैष्णववन की वार्ता' में ठाकुर जी के आवेश का आविर्भाव अपने भक्त में होता है । एक प्रसंग में यह कहा गया है हरिदास और मोहनदास में सत्संगवार्ता होने के प्रसंग में हरिदास मोहनदास से अत्यधिक प्रभावित हुये और उनमें साक्षात् ठाकुर जी का आवेश माना गया है । उस काल में प्रचलित वार्ताओं के आधार पर इस स्वमान्य धारणा का पता चलता है कि जो ठाकुर की या भागवत की कथा कहता था इसमें भक्त ठाकुर जी का आवेश मानते थे । चौरासी वैष्णवों की वार्ता में दामोदर दास हरसानी नामक भक्त में उसके आचार्य का ही आवेश आठों प्रहर रहता है ।[42]

इसी प्रकार श्रीकृष्ण लीला में भी शक्तियों के आवेश रूप में स्थिर रहने के प्रसंग मिलते हैं । भक्त माल में भी लीलाओं के प्रभाव स्वरूप भक्तों में आवेश की स्थिति बतायी गयी है । सीता–हरण की कथा सुनते ही राम भक्त कुलशेखर प्रेमावेश में रावण को मारने के लिये तैयार हो जाते हैं ।[43] इसी प्रकार एक भक्त ने लीलावेश में नृसिंहावतार का अनुसरण करते हुये नृसिंह वेश में अभिनय करते हुये हिरण्य कशिपु को मार दिया था और दशरथ का अभिनय करते समय राम के वियोग में स्वयं शरीर छोड़ दिया था । इस प्रकार इस युग

में लीलावेश का अत्यधिक प्रभाव दिखायी देता है ।

पूर्णावतार :-

मध्यकालीन कवियों में अवतारों के विभिन्न रूपों और वर्गों की अपेक्षा पूर्णावतार राम और कृष्ण विशेष रूप से ग्राह्य दिखायी देते हैं । इसका मुख्य कारण राम और कृष्ण के उपासक, वैष्णव सम्प्रदायों का उदय है। वैसे अवतारवाद के प्रारम्भिक काल में पूर्णावतार की अपेक्षा अंशावतार अधिक प्रचलित दिखायी देता है । रामायण और महाभारत में राम और कृष्ण को अंशावतार के रूप में चित्रित किया गया है । इसलिये यह कहा जा सकता है कि पूर्णावतार का क्रमिक विकास अंशावतार से ही हुआ है । भागवत पुराण में विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन करते समय कृष्ण को स्वयं भगवान्– कहा गया है ।[44] इसी प्रकार आनन्द रामायण में विभिन्न अवतारों का वर्णन करते समय कुछ न कुछ दोष या अभाव दिखलाते हुये रामावतार की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है और अन्त में राम से यह कहलाया गया है कि सभी प्रकार के गृहस्थ सुख प्राप्त होने के कारण इस अवतार में मैने पूर्ण रूप धारण किया है ।[45]

रामभक्ति और कृष्ण भक्तिशाखा के तत्कालीन कवियों ने राम और कृष्ण की पूर्णता पर कोई तर्क नहीं किया है अपितु उनके प्रचलित उपास्य रूपों को कहीं पूर्णावतार और कहीं पूर्ण ब्रह्म कहकर सम्बोधित किया है । सूरसारावली में सूरदास ने राम को वासुदेव क पूर्णावतार बताया है ।[46] परन्तु रामावत सम्प्रदाय में राम परब्रह्म होने के कारण स्वयं उपास्य हैं ।[47] गोस्वामी

तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से इन्हें कहीं पूर्णावतार नहीं कहा है केवल एक ही स्थल पर उन्हें पुरूष 'पुराण' कहा है । 'पुरुष-पुराण' से अभिहित करने की परम्परा केशव और सेनापति में भी दिखायी देती है किन्तु इन दोनों ने राम को पुरूष का पूर्णावतार कहा है ।[49] हनुमन्नाटक में लक्ष्मण राम के पूर्ण रूप का परिचय देते हैं ।[50]

सन्त कवि सूरदास श्रीकृष्ण को प्रायः पूर्णब्रह्म के रूप में प्रतिपादित करते हैं और प्रसंगवश उनकी पूर्णता की भी चर्चा करते हैं । सूरसागर के एक पद के अनुसार ब्रह्म इन्हें पूर्णावतार जानकर उनके चरणों में गिरते हैं ।[51] गोविन्द स्वामी ने नन्द सुवन श्रीकृष्ण को पूर्ण परमानन्द एवं पूर्णचद्रमा के सदृश षोडश कला युक्त माना है । इनके पदों में षोडश कला युक्त पूर्णावतार का ज्ञान हो जाता है ।[52] सूरसारावली के एक पद में यह कहा गया है कि यशोदा के गर्भ से सोलह कलायुक्त चन्द्र ने प्रकट होकर अन्धकार का विनाश किया है ।[53] पुनः सूरसारावली में इनके देवकी से उत्पन्न होने और पूर्णरूप में प्रकट होने की चर्चा की गयी है ।[54]

इस प्रकार परब्रह्म या उपास्य रूप में अधिक प्रचलित होने पर भी राम-कृष्ण आदि अवतारों की पूर्णता की चर्चा मध्यकालीन भक्त कवियों ने की है । वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने श्री वल्लाभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ को भी पूर्णब्रह्म अथवा पूर्ण पुरूषोत्तम को श्री कृष्ण का अवतार माना है ।[55] यहां पर इनके पूर्णावतार का भान प्रतीत होता है ।

उक्त अनुशीलन से स्पष्ट है कि पूर्णावतार मध्यकाल में अवतार

की अपेक्षा ब्रह्म या पूर्ण पुरूषोत्तम के उपास्य या रूप उपास्य विग्रह का बोधक अधिक रहा है क्योंकि राम, कृष्ण आदि अवतार और वल्लभ इत्यादि आचार्य विभिन्न सम्प्रदायों के उपास्य होने के कारण ही पूर्णावतार या पूर्ण ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित हुये हैं ।

व्यूह—रूपावतार :—

मध्ययुग में श्रीकृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध के व्यूहवादी रूप का उल्लेख प्राप्त होता है । साथ ही इसके अनुकरण में अन्य विभिन्न प्रकार के चर्तुव्यूह रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं । किन्तु व्यूहवाद का प्राचीनतम रूप वासुदेव व्यूह का ही मिलता है । महाभारत में श्रीकृष्ण के चार रूपों का या उपर्युक्त व्यूह रूपों का श्रीकृष्ण के चार रूपों का या उपर्युक्त व्यूह रूपों का कतिपय स्थलों पर उल्लेख हुआ है । गीता में व्यूहवाद की कोई रूपरेखा नहीं मिलती है । भागवत के अनुसार नारायण के चतुर्व्यूह रूप का पुनः उल्लेख दशम स्कन्ध में हुआ है ।[57] इसी अध्याय में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध का भी उल्लेख प्राप्त होता है । इस प्रकार चतुर्व्यूह रूप में अवतार होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं । रामोत्तरतापनीय उपनिषद् में वासुदेव व्यूह के अनुकरण पर ही राम और उनके तीनों भाईयों को मिलाकर रामव्यूह की रचना की गयी है ।[58] यहाँ पर चारों भाईयों को मिलाकर भी राम को पूर्ण पुरूषोत्तम या पूर्ण परमेश्वर के रूप में चित्रित किया गया है । भक्त कवि सूरदास ने सूरसारावली में राम के व्यूहात्मक रूप का प्रकटीकरण करते हुये उसका वासुदेव व्यूह से सम्बन्ध स्थापित किया है । उनका कथन है कि पुरूषोत्तम श्रीराम चतुर्व्यूह रूप

में प्रकट हुये हैं । भरत संकर्षण हैं, लक्ष्मण प्रद्युम्न हैं और शत्रुघ्न अनिरूद्ध हैं ।[59] भक्तमाल में विष्णु के चतुर्व्यूह रूप की चर्चा की गयी है और उसमें कहा गया है कि हरि ने कलियुग में चतुर्व्यूह रूप धारण किया था ।[60]

महाभारत काल से लेकर मध्यकालीन भक्त कवियों तक व्यूहवाद की जो रूप रेखा मिलती है वह निश्चय ही अवतारवाद का एक विशिष्ट रूप है । वह निश्चय ही अवतारवाद का एक विशिष्ट रूप है । इस व्यूहवाद को पुराणों का समर्थन प्राप्त है । जिसका प्रभाव भक्तमाल में वर्णित व्यूहवाद में दिखायी देती है । व्यूहवाद में अवतारवाद के सदृश युग के अनुरूप नवीन रूप धारण करने की क्षमता विद्यमान है ।

लीलावतार :—

मध्ययुग में अवतार वाद के जिन रूपों का सर्वाधिक प्रचार हुआ है उनमें लीलावतहार का महत्वपूर्ण स्थान है । लीलात्मक रूप अवतार-वाद का प्राचीनतम का प्रारम्भिक रूप नहीं है क्योंकि प्रारम्भ के अवतारों में लीला या क्रीड़ाजनित कोई प्रयोजन नहीं था । प्राचीन साहित्य के अनुसार अवतार का प्रयोजन देवशत्रुओं का विनाश, धर्म की रक्षा, साधुओं का परित्राण, दुष्ट–दलन, धर्म-संस्थापन, वेद, ब्राह्मण, गो, पृथ्वी, भक्त की रक्षा आदि रहा है ।[61] मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में श्री सम्प्रदाय के अनुयायी लोकाचार्य ने तो लीला को ही एक मात्र प्रयोजन माना है ।[62] 'मध्य-सिद्धान्त-सार–संग्रह' के अनुसार हरि के सभी अवतार कार्य लीला के लिये और कभी–कभी असुर जनों को मोहने के लिये होते हैं ।[63] श्रीमद्भागवत में हरि के चौबीस अवतारों को

लीलावतार के रूप में मान्यता दी गयी है । राम और कृष्ण को ही विशेष रूप से लीलावतार माना गया है । वल्लाभाचार्य ने श्रीमद्‌भागवत की टीका में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, पूर्ति, मन्वन्तर, ईशाणु तथा विरोध, मुक्ति, आश्रय आदि प्रधान लक्षणों को श्री कृष्ण की दश-विध लीलाओं के रूप में चित्रित किया गया है ।[64] महाभारत में कहा गया है कि जिस प्रकार बालक खिलौनों से खेलता है उसी प्रकार श्री कृष्ण के रूप में हरि का यह लीलावतार ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि देवताओं के साथ सदैव क्रीड़ारत रहता है ।[65]

मथुरा श्रीकृष्ण की मधुर लीला–नगरी रही है । इस प्रकट लीला में श्रीकृष्ण देवताओं के साथ अवतीर्ण होते हैं और विविध प्रकार की लीलायें करते हैं ।

मध्यकालीन कवियों ने श्रीराम और श्रीकृष्ण के लीला–प्रधान चरितों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । सूरदास के पदों के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है ।[66] वही परम कुशल कोविद लीलानट और लीलावतार है जो अपनी मधुर मुस्कान से भक्तों का मन हर लेता है । यशोदा माता श्रीकृष्ण को निहार–निहार कर यह विचार करती है कि यह मेरा बेटा लीला अवतारी है ।[67] भक्तकवि सूरदास का कथन है कि जब हरि को लीला करने की इच्छा होती है तब वह विविध रूपों में अवतरित होता है । किन्तु फिर भी उसकी लीला को लीलायें दिखा कर वह भक्तों का रँजन किया करता है ।[68]

इसके अतिरिक्त कविवर सूरदास ने अपनी सूरसारावली में हरि की नृत्य लीला की चर्चा की है । उनका कथन है कि अवतारी राम और कृष्ण

अँश कला और विभूति इत्यादि विविध अवतार रूपों में सदा ब्रजमण्डल में विहार करते हैं ।[69] नन्ददास के अनुसार वे नित्य किशोर–धर्मी हैं तथा शिशु और कुमार इत्यादि लीला रूप उनके धर्म हैं ।[70] इस प्रकार श्रीकृष्ण के लीला चरित का विशद वर्णन कृष्णोपासक कवियों ने किया है । इन लीलाओं में जिस प्रकार अवतार कृष्ण अवतारी या परब्रह्म हो गये हैं । उसी प्रकार इनकी अवतार लीलाओं ने ही नित्य लीला का रूप धारण कर लिया है । दोनों में अन्तर यही है कि नित्य लीला गोलोक की विशुद्ध उपास्य पर-विग्रह श्रीकृष्ण की कालातीत है । जबकि प्रकट या अवतार–लीला नरवत् अथवा मनुष्यवत् कालाधीन लीला है, जो भक्तों के रंजनार्थ होती है ।

इसी प्रकार रामोपासक भक्तकवियों ने भी रामचरित अथवा रामलीला का मधुर वर्णन किया है । नित्य–लीला की अपेक्षा राम की प्रकट लीला का अधिक विकसित रूप इनकी कृतियों में दृष्टिगोचर होता है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि राम की सगुण लीला मन को निर्मल करने वाली है ।[71] उनके अनुसार श्रीराम का चरित्र और उनकी लीला परस्पर पर्याय है ।[72] तुलसीदास के कथनानुसार व्यापक, अटल अनीह, अज, निर्गुणरूप से श्रीराम अपने भक्त के लिये 24 प्रकार के चरित करते हैं ।[73] वे सदा स्वतन्त्र अद्वितीय होते हुये भी नट के समान नाना प्रकार की लीलायें करते हैं ।[74]

इस प्रकार मध्यकालीन संत कवियों ने राम और कृष्ण दोनों के लीला चरित का गान करते हुये उनके सभी कार्य व्यापारों को नट-वत्माना है । यहाँ पर इन कवियों ने ब्रह्म और उसकी लीला में अवतारवादी सामंजस्य

स्थापित करने का प्रयास किया है । मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने अन्य अवतारों की अपेक्षा श्री राम और श्रीकृष्ण के लीलात्मक रूपों का ही विशेष रूप से मधु-र चित्रण किया है । जिसे राम–भक्ति शाखा–प्रधान और कृष्ण–भक्ति शाखा–प्रधान कवियों की कृतियों में अथवा वर्णनों में देखा जा सकता है ।

युगल-रूप :–

राम और कृष्ण के विभिन्न लीलात्मक रूपों का, तुलसीदास और सूरदास के पश्चात् उत्तरोत्तर, संकोच दिखायी देता है । केवल युगल रूप का चित्रण हुआ है। तुलसी और सूर के पश्चात्वर्ती कवियों ने जितनी चर्चा इनके युगल रूपों की की है उतनी चर्चा इनकी अन्य लीलाओं की नहीं की गयी है । महाकाव्यों की पृष्ठभमि से सम्बलित विष्णु के विभिन्न अवतारों में राम और कृष्ण ही ऐसे अवतार हैं जिनमें युगल रूप की अभिव्यक्ति की सम्भावना प्रबल रही है । महाकाव्यों में उनके युगल रूप पर इतना बल नहीं दिया गया है जितना कि मध्यकालीन रसिक भक्तों में दिखायी देता है । विशेष रूप से युगलावतार के रूप में जिन 'राम–जानकी' और 'राधा–कृष्ण' रूपों का आविर्भाव माना जाता है । उनका परपरागत इतिहास युगल-रूपात्मक न होकर स्वतन्त्र प्रतीत होता है ।

अवतारवादी विकास की दृष्टि से अवतार–धारणकर्ता विष्णु और लक्ष्मी के जिस युगल–रूप का अस्तित्व पुराणों में दिखायी देता है । उसका यद्यपि वैदिक विष्णु के साथ कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है क्योंकि वैदिक साहित्य में श्री अथवा लक्ष्मी का स्वतन्त्र रूप मिलता है । किन्तु विकास

वाद की दृष्टि से विष्णु और लक्ष्मी का पुराण काल में दाम्पत्य सम्बन्ध दिखायी देना कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं । विष्णु पुराण 1.18.105 के अुसार विष्णु के वक्ष-स्थल में लक्ष्मी का निवास स्थान बताया गया है । यद्यपि महाकाव्यों के अंशावतार क्रम में विशेष रूप से महाभारत में कृष्ण और रूक्मिणी विष्णु और लक्ष्मी के पृथक्–पृथक् अवतार बताये गये हैं ।[75] वाल्मीकि रामायण में सीता को 'पद्मा श्री इव रूपिणी' के रूप में चित्रित किया गया है । इससे प्रतीत होता है कि राम विष्णु के अवतारी थे और सीता लक्ष्मी की अवतार थीं, जो विष्णु और लक्ष्मी के युगल-रूप अवतार के विकास का क्रम प्रतीत होता है।[76]

विष्णु पुराण में विष्णु और लक्ष्मी के युगल रूप का विकास अपनी चरम सीमा पर दिखायी देता है । इसमें कहा गया है कि न्याय–नीति, बोध–बुद्धि, सृष्टा सृष्टि पर्वत–भूमि, सन्तोष–तुष्टि, काम –इच्छा, यज्ञ–दक्षिणा, पुरोडाश–आहुति, शंकर–गौरी, सूर्य–प्रभा, समुद्र–तरंग, दीपक–ज्योति आदि को युगल रूपों में चित्रित किया गया है और कहा गया है कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि में पुरूषवाची भगवान् हरि और स्त्री वाची लक्ष्मी हैं इसके परे अन्य कोई नहीं है ।[77] इनके युगल अवतार की चर्चा करते हुये कहा गया है कि देवाधिदेव विष्णु जब–जब अवतार धारण करते हैं, तब–तब लक्ष्मी उनके साथ रहती है ।[78] इसके आगे कहा गया है कि जब हरि ने आदित्य का रूप ग्रहण किया तब लक्ष्मी का अवतार पद्मा के रूप में हुआ है । परशुराम होने पर भूमि, राम होने पर सीता और श्री कृष्ण होने पर रूक्मिणी के रूप में लक्ष्मी का अवतार हुआ है । इस प्रकार अन्य अवतार होने पर भी यह विष्णु से कभी पृथक् नहीं

होती है । जब विष्णु देव रूप में अवतरित होते हैं तो यह देवी रूप में अवतरित होती है और जब वे मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं तो वे मानवी रूप में अवतरित होती हैं । इस प्रकार विष्णु के अनुरूप ही ये अपना शरीर बना लेती है । इससे विदित होता है कि विष्णु और लक्ष्मी से सम्बन्धित युगल अवतार की भावना विष्णु पुराण में अत्यन्त व्यापक रूप से प्रचलित थी क्योंकि यही पर उनके पुरूष प्रकृति के सदृश नित्य और नैमित्तिक दोनों रूपों को भी प्रस्तुत किया गया है । इसके बाद परवर्ती पुराणों में राधा-कृष्ण युगल-रूप अवतार का वर्णन अत्यधिक हुआ है । 'गीत-गोविन्द' में भी गोपीकृष्ण या राधाकृष्ण के युगल रूप की विशेष चर्चा हुई है ।

मध्यकालीन कवियों में भक्त कवि सूरदास ने युगल अवतार का विशद वर्णन किया है । सूरदास का कथन है कि राधा और हरि दोनों एक ही हैं । वे एक ही शरीर के आधे–आधे दो रूपों में विभक्त होकर दो रूपों में अवतरित हुये हैं । उनके अंगों में इतनी सुन्दरता और रसमरा उमंग है कि उनकी अपूर्व छवि देखकर स्वयं कामदेव भी डर जाता है ।[79] ब्रजमण्डल में राधा--कान्ह और कान्हराधा दोनों एक-रूप होकर विराजमान हैं । उनका कथन है कि उनके इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन रमण–सुख हैं । इसी रमण–सुख के लिये वे वृन्दावन में बार–बार अवतरित होते हैं ।[81] राधाकृष्ण के उपर्युक्त युगल रूप अवतार की परम्परा को सूरदास प्रकृति–पुरूष, श्रीपति और सीता–पति के क्रम में मानते हैं । इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास सीता राम के युगल रूप अवतार के विशद रूप की चर्चा करते हैं । वे 'सियाराम–मय सब जग जानी'

कहकर युगल-रूप की एकता और अखण्डता का चित्रण करते हैं ।

मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों में अवतारवाद के अन्य रूपों की अपेक्षा युगलरूप का ही उत्तरोत्तर अधिक विकास दिखायी देता है । सूरदास इत्यादि अष्टछाप कवियों के अतिरिक्त निम्बार्क, राधावल्लभी, चैतन्य और हरिदासी सम्प्रदायों में भी श्रीकृष्ण और राधा के युगल-रूप और युगल-अवतार की विविध अभिव्यक्त रूपों की चर्चा हुई है ।[82] निम्बार्क सम्प्रदाय के मूर्धन्य भक्त श्रीभट्ट का कथन है कि युगल–किशोर वृन्दाविपिन में नित्य विलास करते हुये निवास करते हैं ।[83] वे युगल-किशोर के वृन्दाविपिन विलास के सुख का अनुभव करना चाहते हैं । उनका कथन है कि श्री राधा श्री कृष्ण जी के मनोरंजन के लिये विविध रूपों में प्रकट हुआ करती हैं ।[84] श्रीभट्ट ने श्यामा और श्याम के द्वैत और अद्वैत रूपों की चर्चा की है । तथा दोनों के मध्य विद्यमान बिम्ब–प्रतिबिम्ब भावका भी काव्यात्मक संकेत किया है । वे कहते हैं कि कृष्ण और राधा के श्याम तथा गौर रंग एक दूसरे के शरीर पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं । इस प्रकार श्यामा–श्याम और श्याम–श्यामा दोनों अभिन्न दिखायी देते हैं ।[85]

इसी प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री हरि-व्यास देवाचार्य ने भी राधा कृष्ण के युगल रूपों का विशद वर्णन किया है । इनका कथन है कि राधा, कृष्ण स्वरूप हैं और कृष्ण, राधा–स्वरूप हैं । दोनों के एक ही तन और मन हैं । एक ही सांचे में दोनों ढ़ले हैं । दोनों की जोड़ी अद्‌भुत है और दोनों सहज आनन्द पा रहे हैं । यह सदा सनातन एक-रस जोड़ी सच्चिदानन्दमयी स्वरूपा है ।[86] वृन्दावन के स्वामी ये युगल किशोर अनन्त शक्ति और पूर्ण

पुरूषोत्तम हैं । वही बार-बार प्रकट होकर दर्शन देते हैं और नित्य प्रति सभी लोगों को सभी प्रकार के सुख प्रदान करते हैं ।[87]

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास के पदों में श्यामा-श्याम के अधिकतर नित्य युगल रूप का ही वर्णन हुआ है । इन्होंने श्यामा-श्याम गौर रूप को धन-दामिनी जैसा परस्पर सम्बन्धित बताया है ।[88] उनके इस वर्णन से राधा-कृष्ण के भिन्न और अभिन्न दोनों रूपों का स्पष्टीकरण हो जाता है । राधाकृष्ण के सम्बन्ध को वे घन-दामिनी सम्बन्ध से चित्रित करते हैं । उनका कथन है कि घन-दामिनी सम्बन्ध वाले श्यामा-श्याम अलौकिक रसमें सराबोर होकर कुंज में बिहार करते हैं ।

रस-रूपात्मकता :-

मध्यकालीन उपास्यों का रसात्मक रूप लीला का ही एक विकसित रूप है क्योंकि कृष्ण और राम के ब्रह्म से स्वरूपित होने के अनन्तर पहले तो लीलात्मक रूपों की कल्पना की गयी किन्तु बाद में वैष्णव सम्प्रदायों से ही रसिक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ । जिनमें कृष्ण और राधा तथा राम और जानकी के रसात्मक् रूपों का चित्रण दिखायी देता है । इन रसात्मक रूपों के विकास में 'रसों वैसं : इस वैदिक कथन की मूल प्रेरणा दिखायी देती है । ब्रह्म के आनन्द रूप का उद्भव और विकास वैदिक काल से उसके रसात्मक रूप के साथ होता रहा है किन्तु ब्रह्मानन्द और रसानन्द के साथ विषयानन्द का सम्बन्ध जिस पार्थिव स्त्री पुरुष के साथ माना जाता है, वह वैष्णव सहजिया बाउल सम्प्रदायों से होता हुआ मध्यकालीन रसिक सम्प्रदायों में पूर्ण रूप से

प्रचलित हुआ है । इन सम्प्रदायों मे जीवात्मा में पूर्ण रूप से प्रचलित हुआ है । इन सम्प्रदायों में जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्त्री पुरुष वत् माना गया है जिसका चरम लक्ष्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है ।

मध्यकालीन काव्यों में इस रसात्मक रूप का अत्यधिक विकास हुआ है ।

कतिपय कवियों के पदों में श्रीकृष्ण के रसावतार परम्पराओं की प्रासंगिक चर्चा प्रचुर मात्रा में दिखायी देती है । रसावतार में कवियों ने कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में नहीं अपितु गोलोक के निवासी तथा नित्यलीला में रत परब्रह्म एवं रसिकों के उपास्य राधाकृष्ण या गोपीजन वल्लभ कृष्ण के रूप में चित्रित किया है । कल्प विशेष में वे पृथ्वी पर स्थित वृन्दावन में रसिकों के रंजन के निमित्त प्रकट रस-लीला करते हैं । वह रस—लीला इसी वृन्दावन में गुप्त रूप से होने वाली नित्य-लीलाका अवतारित रूप है । अतएव इस युग के कवियों में दोनों प्रकार की रस-केलियों का अपूर्व समावेश हुआ है ।

मध्यकालीन भक्त कवि सूरदास का कथन है कि कृष्णावतार की नायिका राधा समस्त गुणों से पूरित है । श्याम इस रूप में राधा के आधीन हैं । दोनों रस-केलि में इस प्रकार लीन हैं कि वे परस्पर क्षणभर के लिये भी अलग नहीं होते हैं ।[90] उनका कथन है कि राधा और कृष्ण इस रसके लिये वृन्दावन में बार—बार अवतरित होते हैं ।[91] नन्ददास के कथनानुसार वे अपने शब्द—ब्रह्ममय वेणु से सुर, नर, गन्धर्व आदि सभी को मोह लेते हैं ।[92] सूरदास का कथन है कि वृन्दावन में सदैव क्रीडारत श्रीकृष्ण को मथुरा की याद आ

जाती है परन्तु राधारानी उन्हें वहाँ जाने से रोक देती है ।[93] इस प्रकार रस रूप में राधा की प्रधानता विशेष रूप से लक्षित होती है । युगल शतक के अनुसार वे स्वयं इस रस के निमित्त विभिन्न प्रकार के रूप धारण करते हैं । सूरदास का कथन है कि जो सर्वोपरि कृष्ण प्राणों के सदृश प्रिय और प्रियतम हैं, जो ललिता आदि सखियों के द्वारा सोवित है उन्होंने अपने रसिक भक्तों के निमित्त यह लीला रूप धारण किया है ।[94] ब्रज में जितने लीला–चरित हुये हैं उनमें निकुंज के लिये सम्भवतः सबका सार स्वरूप है ।

कविवर सूरदास ने गोपी-जनवल्लभ कृष्ण के रसावतार की चर्चा करते हुये कहा है कि श्रुतियों ने सच्चिदानन्द कृष्ण से त्रिगुणातीत एवं मन वाणी से अगम रूप को दिखाने की याचना की है । उनकी याचना पर श्रीकृष्ण ने वृन्दावन की रासलीला स्वीकार की है जिस में वेद की ऋचाओ ने गोपियों के रूप में अवतरित होकर उनके संग बिहार किया है ।[95]

इस प्रकार एक ही अवतरित रूप विभिन्न प्रयोजनों के फलस्वरूप विविध रूपों में तत्कालीन साहित्य में प्रस्तुत किया गया है जिसमें अन्तिम रसावतार रसात्मक प्रयोजन के निमित्त विकसित श्रीकृष्ण की रस-लीला और युगलकेलि से सम्बन्ध रसात्मक रूप हमारे सामने प्रकट होते हैं जो कालान्तर में रसिक सम्प्रदायों में नित्यलीला एवं अवतरित लीला के रूप में प्रचलित हुआ प्रतीत होता है ।

अर्चावतार–परम्परा :–

अवतारवादी प्रवृत्तियों के समान अर्चावतार की भी प्राचीन परम्परा

विदित होती है । अवतारवाद के साथ ही इस धारणा का विकास दिखायी देता है क्योंकि अवतार और अर्चा एक ही भूमि पर स्थित दिखायी देते हैं, अवतार यदि ब्रह्म का प्रतिनिधि है तो अर्चा ब्रह्म का प्रतीक है ।

मध्यकाल में एक ओर तो अवतारों के जीवात्मक रूपों की अभिव्यक्ति हुई है तो दूसरी ओर दिन प्रतिदिन के व्यवहारों में प्रयुक्त अर्चा विग्रहों या अर्चावतारों का प्रचार हुआ है। जहाँ सूर-साहित्य में पौराणिक कथाओं से सम्पृक्त सगुन लीलापद मिलते हैं, वहाँ कालान्तर में राम-कृष्णादि अवतारों के अर्चा रूपों की व्यापकता दिखायी देती है । अर्चा रूपों की आठो प्रहर सेवा पूजा अर्चना तथा पाक्षिक, मासिक अर्धवार्षिक और वार्षिक उत्सवों के ही लीलापद अधिक प्रचलित रहे हैं । इसलिये यदि परवर्ती मध्यकालीन साहित्य को अर्चावतारों का साहित्य माना जाये तो अतिशयोक्ति न होगी ।

जिस प्रकार समस्त देवतावाद का पौराणिक विकास दिखायी देता है, उसी प्रकार अर्चावतार के स्रोत का विकास भी पुराण-साहित्य को माना जा सकता है । एक पौराणिक कथा में उपलब्ध नृसिंहावतार की कथा से अर्चावतार अर्थात् मूर्ति या देव-विग्रह की पूजा का संकेत मिलता है, [96] तदनुसार प्रह्लाद का कथन सत्य करने के लिये खम्भे से विष्णु का नृसिंहरूप में आविर्भाव होता है । पिता के विरोध करने पर भी प्रह्लाद ने प्रतीक-पूजा के रूप में विष्णु को स्वीकार किया था । इस का अनुसरण करते हुये गोस्वामी तुलसीदास ने उक्त कथा को आधार मानकर पत्थर पूजा के प्रचलन का उल्लेख किया है । प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु जब विष्णु की भक्ति करने से अपने पुत्र को माना करते

हैं, तब वह विष्णु को सर्वव्यापक बतलाता है और खम्भे में भी उसके अस्तित्व की बात कहता है, उसी समय विष्णु खम्भे से नृसिंह के रूप में प्रकट हो जाते हैं; यह सब प्रह्लाद के अतिशय प्रेम के कारण संभव होता है । इस प्रकार जब से प्रीति की प्रतीति बढ़ी तभी से पत्थर पूजे जाने लगे, अर्थात् मूर्ति पूजा का यह प्रारम्भ काल था ।[97] परन्तु नाभादास मूर्ति-पूजा का सम्बन्ध राजा पृथु के समय से मानते है ।[98]

अर्चारूप की विशिष्टता :–

ईश्वर का अर्चारूप मनुष्य के अधिक निकट दिखायी देता है । इस रूप में ईश्वर मनुष्य के साथ अनेक रूपों तथा विविधभावों में मानव भक्त के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है । भक्त और भगवान् में कभी 'सेव्य–सेवक–भाव' तो कभी सखा–भाव, कभी वात्सल्य एवं कभी पति पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका–भाव रहता है, जिसमें इसकी चरम परिणति हो जाती है । अर्चावतार अपने स्वामी रूप में अखिल विश्व का प्रतिपालक, सर्वशक्तिमान् और परम स्वतन्त्र है । श्रीगोपी नाथ कविराज के अनुसार यह किसी भी द्रव्य को अपना विग्रह मानकर उसमें विराजने लगता है, इसमें देश काल का नियम या प्रतिबन्ध नहीं है । अयोध्या मथुरा आदि देश न होने पर कोई हानि नहीं है । काल नियम भी नहीं, जब तक उनकी इच्छा हो तभी तक रह सकते हैं । अर्चक जिस किसी स्थान में और जिस किसी भी समय उनको प्राप्त करना चाहता है, वह उसी समय उन्हें प्राप्त कर सकता है ।[99] उस सर्वशक्तिमान् की प्रत्येक कामनायें और इच्छायें भक्त की इच्छा के रूप में परिणत हो जाती हैं ।

भक्त की प्रत्येक कामना उसके इष्ट देव में अर्चा–रूप में प्रतिबिम्बित होती है । अर्चा–इष्टदेव अपार करूणा के वशीभूत हो कर अपने भक्त को प्रत्येक अभीष्ट प्रदान करता है ।

अर्चावतार सभी का बन्धु और भक्त-वत्सल है । भक्त उसे अपना भगवान् समझता है । अर्चा अपास्य भक्त की इच्छानुसार खाता पीता और सोता है ।[100] अर्चावतारवादियों का कथन हैं कि देशकाल की उत्कृष्टता से रहित, आश्रिताभिमत अर्चक के समस्त अपराधों को क्षमा करने वाली दिव्य–देह–युक्त, सहिष्णु, अपने सभी कर्मो में अर्चक की अधीनता स्वीकार करने वाली मूर्ति को अर्चावतार कहते हैं ।[101]

सोलह प्रकार से पूजनीय अर्चा–विग्रह चार प्रकार के माने जाते हैं :–

1. स्वयं व्यक्त –
2. दैव (देवता द्वारा स्थापित)
3. सैद्ध (सिद्धों द्वारा स्थापित
4. मानुष (मनुष्य द्वारा स्थापित)102

रामभक्ति-शाखा में अर्चारूप :–

विक्रम सवत् की 15वीं शताब्दी में रामानन्दाचार्य ने उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का प्रवर्तन किया था, उसके प्रसार और प्रचार के लिये उन्होने राम के दो विशिष्ट रूप अन्तर्यामी और उनके अर्चा का प्रतिपादन किया था जो क्रमशः निर्गुण और सगुण रूप भक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित हो गये

थे । सगुण भक्ति के अन्तर्गत उपास्य राम के साथ मूर्ति और बहुदेववाद का समन्वय हो गया था । तत्वत्रय के अनुसार रामानन्द ने राम (ईश्वर) सीता (माया–प्रकृति) और लक्ष्मण (जीव) इन तीनों में ध्यान का विधान किया था ।[103]

रामानुजाचार्य का अनुसरण करते हुये राम–सहित्य में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरितमानस में तीनों के उक्त रूप का विधिवत् उल्लेख किया है । वे कहते है कि राम लक्ष्मण के मध्य स्थित सीता इस प्रकार सुशोभित होती है जैसे ब्रह्म और जीव के मध्य माया सुशोभित हो रही हो वे इसी बात को गीतावली में भी पुनः कहते हैं, कि ये तीनों रूप, शोभा और प्रेम के कमनीय वपु हैं, मुनिवेश धारण किये हुये माने ब्रह्म, जीव माया है ।[104] इस सम्प्रदाय में यद्यपि अन्य देवों को समुचित स्थान मिला है, और विनयपत्रिका में अनेक देवों की स्तुति भी की गई है, किन्तु इस सम्प्रदाय में इष्टदेव के रूप में राम, लक्ष्मण और जानकी के अतिरिक्त जानकी-वल्लभ राम विशेष रूप से मान्य हुये हैं ।[105] इस प्रकार राम के परवर्ती रूपों के साथ–साथ उनके माधुर्य रूपों का भी अधिक विस्तार हुआ था और उनके अवतारत्व के साथ उनकी नित्य लीला तथा नित्य केलि उपासकों के लिये सुख–शांन्ति प्रदाता रही है ।[106]

कृष्ण–भक्ति-शाखा में अर्चारूप :–

रामभक्ति-शाखा की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति-शाखा में अर्चावतारों का अधिक व्यापक एवं विस्तृत रूप दिखायी देता है, द्वारिका से जगन्नाथ–पुरी तक कृष्ण के अर्चा-रूपों का प्रभाव सर्वविदित है ।

यह उल्लेखनीय है कि भक्त और अर्चा का सम्बन्ध सेवक–सेव्य

भाव सम्बन्ध है । इस दृष्टि से श्री कृष्ण को लेकर प्रायः जितने सम्प्रदायों की स्थापना हुई, उन सभी में श्रीकृष्ण के विभिन्न और विशिष्ट व्यक्तित्व एवं चरित्र से समन्वित रूपों वाले अर्चा–विग्रह मान्य हुये हैं । भक्तकवि व्यास जी ने इसीलिये श्रीकृष्ण की लीला से सम्बन्धित अनेक अर्चा-विग्रहों की परिकल्पना की है । तदनुसार प्रथम 'गोविन्द' का दर्शन, द्वितीय 'मदन–मोहन' तृतीय 'गोपीनाथ चतुर्थ 'राधारमण' पंचम 'राधावल्लभ' षष्ठ 'युगल किशोर' और सप्तम लीलाधर 'कुंज बिहारी' हैं ।[107] श्रीनाथ जी परब्रह्म श्री कृष्ण के साक्षात् स्वरूप माने जाते हैं ।[108] डॉ0 दीनदयाल गुप्त का कथन है कि श्री नाथ जी का स्वरूप तो साक्षात् पूर्ण पुरूषोत्तम ब्रह्म का है और अन्य स्वरूप पूर्ण पुरूषोत्तम की विभूति तथा उनके व्यूहात्मक स्वरूपों के स्वरूप हैं ।[109]

श्रीकृष्ण देवी जीवों के उद्धार के निमित्त अखिल लीला–सामग्री साहित व्रज में आविर्भूत होते हैं ।[109] लीला-भेद से इन्द्रदमन, दानवदमन और नाग–दमन इनके अन्य नाम हैं । लीला पुरूषोत्तम श्री नाथ जी के चतुर्व्यूह के प्राकट्य का विधान भी प्राप्त होता है । उस व्यूह में सकर्षण बलदेव, गोविन्ददेव और दानीराय माने जाते हैं ।[110]

इस प्रकार मध्ययुग में अर्चावतारों का आविर्भाव श्रीकृष्ण आदि पौराणिक अवतारों के समान समाज में प्रतिष्ठित प्रतीत होता है । श्रीकृष्ण और श्रीनाथ जी दोनों ही जगत् में उपास्य रहे हैं, श्री कृष्ण और उनके रूपों में विशेष अन्तर यह है कि श्री कृष्ण की लीलायें जहां पौराणिक पात्रों से सम्बद्ध है वहीं श्रीनाथ जी एवं इनके स्वरूप की लीलायें तत्कालीन अचार्य, भक्त

और उनके प्रेमी समाज के साथ सन्निविष्ट हैं । इस युग की प्रसिद्ध मान्यता भक्त, भगवन्त और गुरू की एकता रही है, जिसका उल्लेख नाभादास ने 'भक्तमाल' के प्रारंम्भ में किया है ।"

उपर्युक्त उल्लेखों और प्रसंगों से यह प्रतीत होता है कि विभिन्न सम्प्रदायों के उद्‌भव एवं विकास में तत्कालीन अर्चावतारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इस सन्दर्भ में 'भक्तमाल' में वर्णित अनेक संतों और भक्तकवियों के साथ अर्चावतारों की उद्धार और लीला–सम्बन्धी कथाओं का अनुशीलन अतिशय महत्व का प्रतीत होता है । भक्तों को अपने इष्टदेव की विशिष्टमूर्ति के प्रति अत्यन्त दृढ़ आसक्ति होती है । अर्चा–विग्रह भक्त के इस विश्वास का प्रतिरोध नहीं करते । यह कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास के निमित्त नंददास की प्रार्थना सुनकर श्रीनाथ जी ने उनको श्री राम के रूप में दर्शन दिया था । वे कहते हैं कि आज की छवि अवर्णनीय हैं । लेकिन तुलसीदास का मस्तक तभी झुकेगा जब आपके हाथ में धनुष बाण हो ।[112]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवतारवाद के विविध रूप होते हुये भी दशावतार–परम्परा के अन्तर्गत परवर्तीकाल में नृसिंह, राम और कृष्ण अदि अवतारों के पूजा–विग्रह या अर्चा-विग्रह समाज में अत्यधिक प्रचलित हो गये थे, कालान्तर में बौद्धधर्म के उदय होने पर बुद्धावतार के भी अर्चा–विग्रहों का व्यापक प्रचार और प्रसार होने लगा था ।

षष्ठ अध्याय
दशावतार परिगणन एवं निरूपण

षष्ठ अध्याय

दशावतार परिगणन एवं निरूपण :-

अवतारों की संख्या के सम्बन्ध में विविध मतमतान्तर प्राप्त होते हैं । विष्णु के सर्वाधिक प्रचलित अवतारों की संख्या यद्यपि दशावतार है किन्तु पुराणों में कहीं 22 और कहीं 16 अवतारों के विवरण प्राप्त होते हैं ।[1] किन्तु दशावतारों की परम्परा और क्रम-बद्धता जितनी स्पष्टता के साथ मिलती है उतनी अन्य परिगणित अवतारों की नहीं । भागवत पुराण में वर्णित दशावतारों के अतिरिक्त मध्य-कालीन हिन्दी साहित्य में 24 अवतारों का भी वर्णन प्राप्त होता है । हिन्दी साहित्य में जहां 24 अवतारों का विस्तृत वर्णन किया गया है उसमें प्रायः भागवत महापुराण में वर्णित तीन प्रकार की सूचियों का समावेश किया गया है । पुराणों में अवतारों की जो यह 24 संख्या प्राप्त होती है । वह बौद्धों के 24 बुद्धावतार और जैनों के 24 तीर्थकरों की कल्पना के आधार पर प्रतीत होती है ।[2] परन्तु यह कहना कठिन है कि किसने किसकी परम्परा का अनुकरण किया है । सूरदास 24 अवतारों का वर्णन भागवत-पुराण के अनुसार करते हैं ।[3] इसके अतिरिक्त संतरामानन्द और रज्जब इत्यादि तथा सगुण भक्तों में बैजु, लखनदास और नाभादास आदि ने केवल 24 अवतार शब्द का प्रयोग किया है और सामान्य रूप से उनके नामों का परिगणन किया है ।[4]

इससे प्रतीत होता है कि 24 अवतार शब्द भी तत्कालीन समाज में दशावतारों के समान रूढ़ि के रूप में प्रचलित हो गये थे । सूरदास लखनदास और नाभादास आदि ने प्रारम्भ में दशावतारों का क्रम रख कर अन्त

में शेष चौदह अवतारों के नाम का परिगणन किया है । कविवर सूरदास के अनुसार कूर्म वराह नृसिंह वामन परशुराम, राम, वासुदेव कृष्ण बुद्ध और कल्कि आदि दशावतारों के साथ सनक इत्यादि अन्य चौदह अवतारों को भी संयुक्त किया है ।[5] इन्हीं की तरह नाभादास ने भी भक्तमाल में दशावतार की चर्चा करते हुये तत्पश्चात् चतुर्दश अवतारों का वर्णन किया है ।[6] किन्तु सभी संतों और भक्तों ने निम्नांकित दशावतारों को ही प्रमुखता दी है । वे दशावतार निम्नवत् हैं । (1) मत्स्य (2) वराह (3) कूर्म (4) नृसिंह (5) वामन (6) परशुराम (7) राम (8) कृष्ण (9) बुद्ध (10) कल्कि इनमें 5 अवतार पौराणिक है और शेष 5 ऐतिहासिक ।

मत्स्यावतार :-

विष्णु के अवतारों में मत्स्यावतार को प्रायः प्रथम स्थान दिया जाता है । आलोच्यकाल में मत्स्यावतार के जिन रूपों को विष्णु से सम्बद्ध किया गया है । वह विष्णु और मत्स्य सम्बन्ध का प्राचीनतम रूप नहीं है । मत्स्यावतार का प्राचीनतम रूप ब्राह्मण साहित्य में मिलता है और इसका सम्बन्ध जल-प्लावन के उस कथन से सम्बद्ध है जो इतर साहित्य में मिलता है जल-प्लावन की यह कथा आवेस्ता, अर्थव-वेद, शतपथ ब्राह्मण और महाभारत में दृष्टव्य है ।

मध्यकालीन साहित्य के कवियों ने स्वतन्त्र रूप से तो नहीं पर दशावतारों के क्रम में मत्स्यावतार का वर्णन किया है । इनमें क्षेमेन्द्र और जयदेव का नाम उल्लेखनीय है । हिन्दी के प्रसिद्ध काव्य पृथ्वीराज रासो की

कथा में मनु मत्स्या कथा का उल्लेख नहीं मिलता अपितु वेदों को चुराने वाले असुरों का संहारक रूप का वर्णन है । इसमें कहा गया है कि मत्स्यावतार ने राक्षसों का पेट फाड़कर वेदों को निकाला था और उन्होंने ब्रह्मा जी को प्रदान कर दिया था ।[7]

कविवर सूरदास ने सूरसागर और सूरसारावली में मत्स्यावतार का श्रद्धापूर्वक वर्णन किया है । तदनुसार भक्तों का संकट दूर करने वाले हरि ने वेदों की रक्षा के लिये मत्स्य रूप धारण किया था । इन पदों में शंखासुर, सत्यव्रत और वेदो के उद्धार की कथा का समावेश हुआ है ।[8] गोस्वामी तुलसीदास ने राम की लीला का गान करते हुये कहा है कि भक्तों के विस्तार के लिये राम ने मत्स्य रूप में पृथ्वी को नौका बनाई थी । नरहरिदास के अनुसार मत्स्य रूप में प्रलय से पृथ्वी की रक्षा तथा शंखासुर से वेदों का उद्धार आदि की कथा का वर्णन है । संतों में परवर्ती गुरू गोविन्द सिंह ने भी शंखासुर वध एवं वेदो के उद्धार के लिये मत्यावतार का प्रयोजन माना है ।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि मध्यकाल में मत्स्यवतार के उन्हीं रूपों को लिया गया है जो पुराणों मे अधिक प्रचलित थे । इस युग में भक्तों का उद्धार अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में एक था । मत्स्यवतार का भी यही प्रयोजन प्रतीत होता है ।

वराहावतार :—

विष्णु के प्रारम्भिक अवतारों में पशु, पशु-मानव और मानव यह तीन प्रकार के अवतार मिलते है । उनमें पशु अवतार वराह का स्थान विशेष रूप

से उल्लेखनीय है । मत्स्यवतार के समान वराह का प्रचीन सम्बन्ध भी प्रजापति से रहा है । मध्यकालीन कवियों ने वराह का पौराणिक रूप और प्रयोजन ग्रहण किया है । पृथ्वीराज-रासो के वर्णनानुसार देवताओं की पुकार पर हरि वराहावतार के रूप में हिरण्याक्ष का वध करते हैं और पृथ्वी का उद्धार करते है महाकाव्यों के अवतार राम और कृष्ण की भाँति इस अवतार को भी देव शत्रुओं का वध एवं भू-भार हरण की परम्परा से सम्बद्ध किया गया है ।[11] सूरसागर में सूरदास का कथन है कि ब्रह्मा ने हरिपद का ध्यान किया था । तब हरि वराह का रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करने के लिये आये थे और हिरण्याक्ष का वध किया था ।[12] सूरदास के पदों के अनुसार हिरण्याक्ष पृथ्वी का हरण कर पाताल चला गया था । ब्रह्मा ने हरि से असुरों का संहार और पृथ्वी का उद्धार करने की प्रार्थना की थी । जब वराह रूप हरि पाताल से पृथ्वी को ऊपर ला रहे थे । तब हिरण्याक्ष से उनका युद्ध हुआ था और हरि के हाथों हिरण्याक्ष मारा गया था । सूरसारावली और अवतार लीला में क्रमशः भूभार हरण और दितिकुल का नाश वराहावतार के प्रमुख प्रयोजन माने गये है ।[13]

गोस्वामी तुलसीदास और केशवदास के अनुसार वराह यज्ञों के अंश रूप हैं । इन्होंने ही दैत्यों का मर्दन कर पृथ्वी का उद्धार किया था ।[14]

कूर्मावतार :—

विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा कूर्मावतार का अपना विलक्षण स्थान है । अन्य अवतारों के विपरीत इस अवतार का प्रयोजन न तो किसी राक्षस का वध रहा है और न ही भू–भार हरण रहा है । इस अवतार का सम्बन्ध समुद्र

मंथन से किया गया है किन्तु हिन्दी के प्रसिद्ध काव्य पृथ्वी राजरासो में यह कहा गया है कि कूर्मावतार देवासुर-संग्राम तथा दानवों के संहार के निमित्त होता है ।[15]

कविवर सूरदास कूर्मावतार का सम्बन्ध समुद्र मंथन से बताते है और इस अवतार का प्रयोजन वे देवहित से जोड़ते हैं । वे आगे कहते हैं कि बलि के कष्टों से त्रस्त देवताओं की प्रार्थना पर हरि ने कूर्म रूप धारण किया था और समुद्र मंथन से अमृत निकाला था ।[16] समुद्र मंथन के समय मंदराचल के डूबने की स्थिति में उसे हरि ने अपनी पीठ में धारण किया था । सूरसारावली में इसका सारांश प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि देवता और दानवों ने मिलकर जब चौदह रत्न निकाले थे तब हरि ने कूर्म रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर रखा था ।[17]

राम भक्ति शाखा के कवियों में तुलसीदास, कान्हरदास और दरबारी कवि केशवदास ने मन्दराचल धारण करने वाले राम के कूर्म रूप का वर्णन किया है ।[18] इस प्रकार कूर्म भी अन्य अवतारों के साथ मध्यकालीन उपास्यों के अवतार माने गये हैं । इसके अतिरिक्त कूर्मावतार के सगुणवादी और निर्गुणवादी दो रूप भी मध्यकालीन साहित्य में मिलते हैं । कबीर पंथी साहित्य में कूर्म के निर्गुण रूप का वर्णन उपलब्ध है ।

नृसिंहावतार :-

वैष्णव साहित्य में नृसिंहावतार की कथा विस्तार से मिलती है । तदनुसार हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद की रक्षा के लिए तथा उस दैत्य के

वध के लिए विष्णु का यह पशु–मानव–सयुंक्त अवतार होता है । हिन्दी काव्य पृथ्वीराज रासो के अनुसार देवता भगवान् के इस अवतार के लिए पुकार करते हैं । इसके फलस्वरूप वे आविर्भूत होकर हिरण्यकशिपु का विनाश करते हैं । इस काव्य में प्रह्लाद उनकी स्तुति करते हैं और उनकी महिमा का गान करते हुए उनके पूर्व अवतारों में किये हुए विभिन्न अवतारी कार्यों का वर्णन करते हैं ।[19] देवकार्य–सम्पादन एवं सर्वजन कल्याण है । इस अवतार का प्रयोजन कविवर सूरदास सूरसागर में हिरण्यकशिपु की कथा का उल्लेख करते हैं । वे कहते हैं कि अपने भाई हिरण्याक्ष के वध के पश्चात्ताप से पीड़ित प्रतिशोध की अग्नि में जलता हुआ हिरण्यकशिपु कठिन तपस्या करता है । इस तपस्या के वरदानस्वरूप वह रात या दिन, आकाश या पृथ्वी, अस्त्र या शस्त्र, भीतर या बाहर अवध्य हो जाता है ।[20] फिर भी अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए और उसका वचन सत्य करने के लिए हरि खम्भा फाड़कर नृसिंह के रूप में प्रकट होते हैं । वे संध्याकाल में अपने नख से हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल विदीर्ण कर देते हैं ।[21] सूरदास का कथन है कि भक्त की रक्षा करना इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन है ।[22] यद्यपि देवता भी इससे सुखी होते हैं किन्तु उनका क्रोध शान्त करने के लिए वह प्रह्लाद से ही आग्रह करते हैं । यहाँ नृसिंह अवतार ही नहीं अपितु उपास्य भी है । वे दीनानाथ, दयालु, भक्तों के निमित्त असुरों का संहार करने वाले हैं ।[23] सूरदास सूरसागर और सूरसारावली दोनो में ही इस तथ्य पर बहुत बल देते हैं कि निर्गुण और सगुण दोनो ही दृष्टियों से देखा है किन्तु प्रह्लाद जैसा भक्त नहीं प्राप्त हुआ है । सूरदास के अनुसार जहाँ जहाँ

भक्तों पर आपदा आती है वहाँ वहाँ वे प्रकट होते हैं ।[25] गोस्वामी तुलसीदास भी नृसिंहावतार का वर्णन करते हैं । उनके अनुसार हरि ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया और भक्त प्रह्लाद का आह्लाद किया था।[26] केशवदास के अनुसार इस अवतार में राम ने प्रह्लाद का दुःख दूर किया है और उसकी प्रतिज्ञा पूरी की है।[27]

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नृसिंह मध्यकाल में केवल अवतार ही नहीं रहे अपितु भक्तों की रक्षा करने वाले उपास्य भगवान् के रूप में प्रचलित हुए । इस प्रकार इस युग के अवतारवाद में उपास्य प्रवृत्ति का अत्यधिक समन्वय लक्षित होता है । सगुणोपासकों के अतिरिक्त संतों में नृसिंहावतार अधिक लोकप्रिय विदित होता है ।

वामनावतार :

वामनावतार का सम्बन्ध राजा बलि की कथा से है । वामनावतार विकसित शरीर वाला न होता हुआ भी बौद्धिक विकास का प्रतीक है । इन्होंने अपने तीन पदों से पृथ्वी को नाप लिया था । इसलिए इन्हें त्रिविक्रम भी कहते हैं । बलि–वामन की यह कथा हिन्दी काव्य पृथ्वी राज रासो में भी प्राप्त होती है । इस अवतार में देवता और ऋषि बहुत प्रसन्न होते हैं । राजा बलि को छलने के लिए विष्णु ने वामन अवतार धारण किया था ।[28]

कविवर सूरदास ने भी सूरसागर में वामनावतार की चर्चा की है जिसके अनुसार बलि के 99 यज्ञ करने के फलस्वरूप देवता उससे बहुत भयभीत हो गये थे । अतः अदिति की तपस्या एवं देवताओं के कारण बलि ने वामन रूप

धारण किया था।[29] अदिति की तपस्या और देवताओं की प्रार्थना के कारण हरि ने वामन रूप धारण किया था । उन्होने बलि के यज्ञ में जाकर पर्णकुटिया बनाने के बहाने उससे तीन पग वसुधा मांगी थी । दो पग में ही तीनों लोक समाप्त हो गये तब बलि ने अपना देह नापने के लिए उनसे प्रार्थना की थी ।

अष्ट छाप के कवि गोविन्द स्वामी ने वामन–जयन्ती के उपलक्ष में वामनावतार का वर्णन करते हुए कहा है कि अदिति के जीवन आधार चतुर्भुज विष्णु वामन वटुक होकर बलि के द्वार पर खड़े हैं ।[30] गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार राम ने वामन रूप में बलि के साथ छल किया था । उन्होने बलि से तीन कदम पृथ्वी मांगी और लेते समय तीनों लोक ही तीन पैरों से नाप लिये । नापते समय इनके चरण नख से जो जल निकला वही गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[31] तुलसी की दोहावली में भी वामन की महिमा का गुणगान किया गया है ।

परशुरामावतार :–

दशवतारों में पांच उपर्युक्त पौराणिक अवतारों के अतिरिक्त परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि जिन अवतारी महापुरुषों को ग्रहण किया गया है वे इतिहास वेत्ताओं के अनुसार ऐतिहासिक महापुरुष हैं । अतः इनका अवतारवादी विकास–पथ में विशिष्ट स्थान है ।

ऐतिहासिकता :–

परशुराम अपने युग के सबसे प्रभावशाली व्यक्तियों में रहे हैं । अतः इतिहासकार उस काल को परशुरामकाल से अभिहित करते हैं ।[33] भार्गव

परशुराम का प्राचीन भार्गव वंश से सम्बन्ध रहा है ये जमदग्नि के पुत्र थे । इनके अवतार का प्रमुख प्रयोजन भृगुवंशी और हैह–है - वंशी क्षत्रियों के संघर्ष का समापन और गांवों की रक्षा रहा है, उत्पाती क्षत्रियों का विनाश करना और गो, ब्राह्मणों की रक्षा करना इनका मुख्य प्रयोजन रहा है । हिन्दी काव्य पृथ्वीराज रासो में यह कहा गया है कि सहस्रार्जुन एक दिन जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर आये और वह उनकी कामधेनु को बलपूर्वक ले जा रहे थे । परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध कर उससे कामधेनु को मुक्त कराया था।[34] कविवर सूरदास ने सूरसागर और सूरसारावली मे परशुराम अवतार की चर्चा की है जिसके अनुसार पृथ्वी पर दुष्ट क्षत्रियों की बृद्धि हो जाने पर कृष्ण ने परशुराम अवतार धारण कर भू–भार हरण किया था ।[35]

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित–मानस मे राम–लक्ष्मण के साथ परशुराम के विस्तृत संवाद का वर्णन किया है । वे विनय–पत्रिका में यह कहते हैं कि सहस्रबाहु इत्यादि दुष्ट क्षत्रियों के विनाश करने के लिए तथा ब्राह्मण रूपी धान को हरा भरा करने के लिए मेघ बनकर परशुराम ने अवतार धारण किया था ।[36]

कविवर केशवदास ने भी रामचन्द्रिका में दुष्ट क्षत्रियों के विनाशक के रूप में परशुराम अवतार का उल्लेख किया है । इस प्रकार मध्यकालीन काव्यों में परशुराम का यथास्थान सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है ।[37]

श्रीरामावतार :–

दशावतारों में रामावतार का महत्व अत्यधिक है, भारतीय वाङ्मय

में श्री राम को केन्द्र बनाकर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है । यह अवतार भारतीय जनमानस को युगों से प्रभावित करता रहा है, इसकी व्यापकता अनन्त है ।

ऐतिहासिकता –

वाल्मीकि रामायण और महाभारत के वर्णनों से राम की ऐतिहासिकता का परिचय मिलता है । यद्यपि वैदिक साहित्य में राम शब्द के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु उनका अध्ययन-विषयीभूत रामावतार से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता क्योंकि वैदिक साहित्य में उल्लिखित राम विभिन्न वाच्यार्थों में प्रयुक्त हुआ है । यथा यजमान राम ऐतरेय ब्राह्मण 7/27/34, भार्गवेय राम शतपथ ब्राह्मण 4/6/1/7/ आधुनिक विद्वानों के अनुसार राम का रूप ऐतिहासिक न होकर पौराणिक अधिक प्रतीत होता है । क्योंकि वाल्मीकि रामायण और महाभारत में आये हुए रामोपाख्यान भी जनश्रुति परक माने गये हैं ।[38]

वाल्मीकि रामायण के प्रथम और अन्तिम काण्डों में राम के अवतारत्व का अधिक उल्लेख मिलता है । किन्तु पाश्चात्य विद्वान Winternits उन दोनों अंशों को परवर्ती मानते हैं ।[39] महाभारत में उल्लिखित नारायणीयों–पाख्यान में अवतारों की दोनो सूचियों में राम का नाम उल्लिखित है ।[40] वाल्मीकि रामायण की प्रारम्भिक कथा में राम को विष्णु के समान वीर्यवान् कहा गया है ।[41] इसी में आगे राम को विष्णु का अंशावतार माना गया है और छठे काण्ड में उन्हें पूर्णावतार माना गया है ।[42] प्राच्य–विद्या–विशारद श्री

भण्डारकर रामावतार की प्राचीनता मानते हुए भी रघुवंश महाकाव्य के दशवें सर्ग में वर्णित क्षीरशायी विष्णु के अवतारी राम को अधिक प्रामाणिक मानते हैं क्योंकि पुराणों की अपेक्षा महाकाव्य रघुवंश में प्रक्षेप की आशंका नहीं है ।[43] बौद्ध साहित्य में बुद्ध को रामावतार और बोधि–सत्व के रूप में मान्यता प्रदान की गई है और जैन साहित्य में राम को आठवें बल्देव के रूप में चित्रित किया गया है ।[44] इन उल्लेखों और वर्णनों को ध्यान में रखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा से अनेक वर्ष पूर्व श्रीराम अवतार के रूप में चर्चित और विख्यात हो गये थे ।

साम्प्रदायिक राम –

मध्यकाल में राम–भक्ति–शाखा, कृष्ण–भक्ति–शाखा से कम व्यापक नहीं है । परन्तु कृष्ण–भक्ति–शाखा के जितने प्राचीन चिन्ह और प्रमाण मिलते हैं राम भक्ति के उल्लेख उतने नहीं मिलते । डॉ0 भण्डारकर ने राम और सीता की मूर्ति सम्बन्धी एक घटना के आधार पर रामपूजा का काल ग्यारहवीं शताब्दी माना है । उनके अनुसार मध्वाचार्य बदरिकाश्रम से दिग्विजयी राम की एक मूर्ति लाये थे । यह ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल था । अतः उनका कथन है कि राम सम्प्रदाय का अस्तित्व ग्यारहवीं शताब्दी में अवश्य होना चाहिए ।[45]

किन्तु डॉ0 भण्डारकर की उक्त मान्यता अधिक सत्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि दक्षिण भारत में इस काल से पूर्व ही राम पूजा के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि राम पूजा का

प्रचारकाल इससे अधिक प्राचीनतर रहा है । तमिल साहित्य में विष्णु के अन्य अवतारों के साथ राम पूजा का पर्याप्त उल्लेख मिलता है । नवम शताब्दी के कुल शेखर आलवार की रचनाओं में राम सम्बन्धी अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है ।[46] तमिल के अनेक भक्त राम भक्ति में मुग्ध और लीन हो जाते थे । कम्बन की तमिल–रामायण रचनाकाल 885 ईस्वी को आलवार विद्वानों ने बहुत मान्यता दी थी । इससे उनका राम चरित से प्रभावित होना दिखायी देता है । आलवार साहित्य में राम का पूर्णोत्कर्ष दिखाई देता है । आलवार साहित्य की रचनाओं में एक स्थल पर कहा गया है कि राम पूर्णावतार है और अन्य अवतार समुद्र में खुर के समान है । कम्बन–रामायण का दक्षिण में विशेष प्रचार और प्रसार रहा है ।[47]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि विष्णु और उनके अन्य अवतारों की पूजा के साथ–साथ राम की पूजा भी प्रचलित थी । श्री कृष्ण स्वामी दक्षिण में श्री राम पूजा का प्रारम्भ रामानुज सम्प्रदाय से मानते हैं । इनका कथन है कि श्री–रंगम के मन्दिर में रामानुज के अनुरोध से श्रीराम की मूर्ति स्थापित की गई थी ।[48] वैसे भी सामूहिक अवतारों के रूप में मंदिरों में अन्य मूर्तियों के साथ–साथ राम की मूर्तियां भी रखी जाती थीं ।[49] यह कहा जाता है कि राम जी की मूर्ति की पृथक् पूजा सर्वप्रथम रामानुज ने ही प्रारम्भ की थी । रामानुज ने श्रीराम की विधिवत् पूजा के लिए एक अविवाहित युवक को नियुक्त किया था और पूजा के लिए उसे राम जी की एक मूर्ति तथा खजाने के लिए एक हनुमान जी की मुहर प्रदान की थी और उस युवक की सहायता के

लिए तीन या चार वैरागी भी रखे गये थे । जो वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में प्राचीन काल से ही राम का विधिवत पूजन आरम्भ हो चुका था ।[50]

किन्तु राम भक्ति का काल इससे भी प्राचीनतर है । राम–पूर्व और उत्तर तापनीय उपनिषदों के वर्णन के अनुसार यह विदित होता है कि राम भक्ति का काल रामानुज सम्प्रदाय से अधिक पूर्ववर्ती था । इन उपनिषदों के आधार पर रामावत सम्प्रदाय का अस्तित्व पूर्ववर्ती सिद्ध होता है । इन उपनिषदों के अध्ययन से विदित होता है कि इन उपनिषदों के रचनाकाल के समय राम की अनेक मूर्तियों का निर्माण होने लगा था । क्योंकि 'राम–पूर्व–तापनीय–उपनिषद्' में राम के अनेक स्वरूपों का उल्लेख मिलता है ।[51]

ईसा पूर्व द्वितीय या तृतीय शताब्दी में विद्यमान नाटककार भास के नाटकों में राम की भक्ति का उल्लेख मिलता है । उनके द्वारा विरचित प्रतिमा–नाटक में राम, लक्ष्मण, सीता को क्रमशः सत्य, शील और भक्ति के साक्षात् स्वरूप के रूप में चित्रित किये गये हैं ।[52] इसके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय इतिहासकार गुप्तकाल में राम पूजा का अस्तित्व मानते हैं । उनके मतानुसार चन्द्रगुप्त की पुत्री श्री राम की उपासिका थी तथा इसके साथ ही चतुर्थ शताब्दी के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की रचना में इक्ष्वाकु–वंशी राम की मूर्ति के निर्माण का नियम बतलाया गया है ।[53] यह संदेह रहित है कि गुप्त काल में वैष्णव धर्म का बहुत उत्थान हुआ था । इससे प्रतीत होता है कि गुप्त काल की चतुर्थ शताब्दी में राम–भक्ति का शुभारम्भ हुआ होगा । इसके

फलस्वरूप राम के साम्प्रदायिक रूपों का विकास भी गुप्तकाल से माना जा सकता है ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राम के जिस साम्प्रदायिक रूप की प्रतिष्ठा हुई है वह चौदहवीं शताब्दी के प्रवर्तक रामानन्द की देन है । रामानन्द की प्रमुख रचना अध्यात्म-रामायण मध्यकालीन राम-भक्ति का प्रमुख स्रोत है ।

मध्यकालीन सम्प्रदाय में राम :-

तत्कालीन साहित्य में राम का राम भक्ति-शाखा से सम्बन्ध रहा है । राम साहित्य के महान कवि गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व अथवा समकालीन राम के निर्गुण रूप से सम्बद्ध साहित्य संत-सम्प्रदायों में उपलब्ध होता है । रामानन्द के कबीर इत्यादि बारह शिष्यों की जो बात कही गई है उनमें कबीर आदि सन्त मत के प्रवर्तक अवतारवाद एवं सगुणोपासना के विरोधी थे अतएव इस काल में राम भक्ति का प्रारम्भ इस धारा के प्रवर्तक अनन्तानन्द की परम्परा में आने वाले कील्हदास और उनके शिष्य द्वारकादास से माना जाता है ।[54] किन्तु अवतारवादी राम साहित्य की परम्परा मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास से प्रारम्भ होती है ।

श्री कृष्ण के समान गोस्वामी तुलसीदास जी के काल तक राम के अवतार रूप के साथ-साथ उनका उपास्य रूप भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित था । श्री कृष्ण चरित और श्री कृष्ण लीला के समान रामायणों की परम्परा को लेकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित और राम लीला की परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है । श्री कृष्ण साहित्य के पीछे

आचार्यों की एक महान् परम्परा थी जिसके कारण कतिपय सम्प्रदायों में श्री कृष्ण के नाना नाना रूपों का विकास हुआ था । किन्तु राम भक्ति में आचार्यों की अपेक्षा रामायणों की परम्परा अधिक थी । जिसका वाल्मीकि रामायण से लेकर गोस्वामी तुलसीदास विरचित राम–चरित–मानस तक विकास होता आया था ।

मध्य युग के पूर्ववर्ती काल में लिखे गये अध्यात्म–रामायण या आनन्द रामायण में भी एक विशिष्ट प्रकार के राम का साम्प्रदायिक रूप मिलता है । अध्यात्म–रामायण और आनन्द–रामायण दोनो में एक ओर तो राम का अवतार रूप दृष्टिगत होता है और दूसरी ओर उपास्य रूप भी मिलता है । अवतार के रूप में राम विष्णु के अवतार हैं और उपास्य रूप में वे अवतारी या ब्रह्म है । इसलिये इस परम्परा का निर्वाह करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने एक ओर तो राम के अवतार चरित का प्रतिपादन किया है तो दूसरी ओर उनके ब्रह्मत्व को भी स्थापित किया है ।

रामावतार के सम्बन्ध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि राम आदि से अन्त तक पुरुषोत्तम और मर्यादा पालक श्री राजाराम हैं । वे ब्रज के लीला–पुरुष कृष्ण के समान रास लीला या अन्य विशिष्ट लीलाओं के कर्ता धर्ता नहीं हैं । सम्भवतः इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम की गाथा को राम–चरित के नाम से अभिहित किया है ।

अवतार के हेतु और प्रयोजन :–

राम के अवतार का हेतु और प्रयोजन बहुत स्पष्ट है । आदि कवि

बाल्मीकि से लेकर मध्यकालीन कवियों तक इनके अवतार का मुख्य हेतु और प्रयोजन भूभारहरण है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि पृथ्वी के भार का भंजन करने के लिए हरि ने विख्यात रघुवंश कुल में अवतार ग्रहण किया है ।[55] किन्तु वाल्मीकि रामायण में इसके अतिरिक्त देव शत्रुओं का वध मुख्य प्रयोजन है ।[56] अध्यात्म रामायण में भू–भार हरण के साथ ही देव शत्रुओं के विनाश को प्रबल हेतु माना गया है ।[57] किन्तु पुराण–साहित्य से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक हरि के अवतार के अनेक हेतु और प्रयोजन बन चुके थे । गोस्वामी तुलसीदास ने अपने राम-चरित-मानस में प्रतिपादित अवतारवाद में अवतार के सभी हेतुओं और प्रयोजनों का एकत्रीकरण कर दिया है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि हरि भक्त, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर इन सब पर कृपा करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और मनुष्य शरीर धारण कर अपने नाना प्रकार के मधुर चरितों के द्वारा लोगों के जंजाल को नष्ट कर देते हैं ।[58] इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने श्री हरि के 'सुरहित नर-तनु धारी' प्रयोजन की भी अवहेलना नहीं की ।[59]

अवतारवाद से हेतु का समन्वय और सामञ्जस्य –

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस प्रकार अवतारवाद का और उसके प्रयोजनों का प्रतिपादन किया है उसमें समन्वयवाद की एक स्थूल रूव रेखा झलकती है । गोस्वामी तुलसीदास के उपास्य ब्रह्म राम के रूप में अवतार ग्रहण करने वाले विष्णु, क्षीरशायी विष्णु, ब्रह्म और पांचरात्र पर–विग्रह रूप का सभाहार प्रतीत होता है । फलस्वरूप 'सुरहित नर तनु–धारी' और 'श्री–पति–

बाल्मीकि से लेकर मध्यकालीन कवियों तक इनके अवतार का मुख्य हेतु और प्रयोजन भूभारहरण है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि पृथ्वी के भार का भंजन करने के लिए हरि ने विख्यात रघुवंश कुल में अवतार ग्रहण किया है ।[55] किन्तु वाल्मीकि रामायण में इसके अतिरिक्त देव शत्रुओं का वध मुख्य प्रयोजन है ।[56] अध्यात्म रामायण में भू–भार हरण के साथ ही देव शत्रुओं के विनाश को प्रबल हेतु माना गया है ।[57] किन्तु पुराण–साहित्य से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक हरि के अवतार के अनेक हेतु और प्रयोजन बन चुके थे । गोस्वामी तुलसीदास ने अपने राम-चरित-मानस में प्रतिपादित अवतारवाद में अवतार के सभी हेतुओं और प्रयोजनों का एकत्रीकरण कर दिया है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि हरि भक्त, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर इन सब पर कृपा करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और मनुष्य शरीर धारण कर अपने नाना प्रकार के मधुर चरितों के द्वारा लोगों के जंजाल को नष्ट कर देते हैं ।[58] इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने श्री हरि के 'सुरहित नर-तनु धारी' प्रयोजन की भी अवहेलना नहीं की ।[59]

अवतारवाद से हेतु का समन्वय और सामञ्जस्य –

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस प्रकार अवतारवाद का और उसके प्रयोजनों का प्रतिपादन किया है उसमें समन्वयवाद की एक स्थूल रूव रेखा झलकती है । गोस्वामी तुलसीदास के उपास्य ब्रह्म राम के रूप में अवतार ग्रहण करने वाले विष्णु, क्षीरशायी विष्णु, ब्रह्म और पांचरात्र पर–विग्रह रूप का सभाहार प्रतीत होता है । फलस्वरूप 'सुरहित नर तनु–धारी' और 'श्री–पति–

–असुरारी' विष्णु राम के अद्‌भुत व्यक्तित्व में समाहित हो गये हैं ।

विष्णु के अवतारी रूप से राम का उतना ही सम्बन्ध विदित होता है जहाँ वे वैदिक कार्यो के लिए आविर्भूत होते हैं । वैदिक कार्यो से तात्पर्य यहाँ भूभार हरण, ताड़का से रावण तक देव–शत्रु असुरों का संहार, वेद, ब्राह्मण और गौ रक्षा से इन अवतारी कार्यो का प्राचीनतम रूप वैदिक प्रतीत होता है ।

रामचरित-मानस में जिस क्षीरशायी के अवतरित होने की घोषणा होती है वे वाल्मीकि रामायण के विष्णु प्रतीत नहीं होते ।[60] अपितु परवर्ती पुराणों के क्षीरशायी विष्णु या नारायण है । हरि की खोज के सम्बन्ध में कुछ लोग बैकुण्ठ जाने की सलाह देते हैं तो कुछ लोग कहते हैं कि वे हरि क्षीर सिन्धु निवासी है ।[61] गोस्वामी तुलसीदास ने अपने महाकाव्य रामचरित मानस के महानायक श्री राम में क्षीरशायी विष्णु को समाहित किया था क्यों कि नारद जी के शाप के कारण ही क्षीरशायी विष्णु का अवतार होता है तथा नाना चरितों के लिए वे कल्प–कल्प में अवतीर्ण होते हैं ।[62] इस प्रकार विष्णु के साथ ही पौराणिक प्रतिकल्पों में होने वाले नाना अवतारों का समावेश किया गया है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने पौराणिक विष्णु के अवतार के अतिरिक्त उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है ।[63] वे कहते हैं कि निर्गुण अरूप, अलख और अज होते हुए भी वह ब्रह्म, भक्त के प्रेमवश सगुण रूप धारण करता है ।[64] यह निर्गुण ब्रह्म ही गोस्वामी तुलसीदास का उपास्य राम है जो निर्गुण और नाम–रूप–रहित होकर भी भक्त के लिए नाना प्रकार के चरित्र करता है ।[65]

गोस्वामी तुलसीदास का अग्रेतर कथन है कि वह निर्गुण ब्रह्म माया से मनुष्य रूप धारण किये है । 'माया-मानुष-रूपिणौ रघुवरौ' और उनका चरित नट के समान है जिसे गोस्वामी जी ने कपट चरित की संज्ञा प्रदान की है । इस कथन को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार नट अनेक प्रकार का रूप धारण कर अभिनय करता है तथा वह जो जो भाव प्रदर्शित करता है किन्तु वह स्वयं उस भाव में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार राजाराम का चरित भी साधारण प्राकृत नर के अनरूप ।[66] इस ब्रह्म के आविर्भाव में भगत हेतु या प्रेमवश जैसे प्रयोजनों के चलते उसके एकांगी होने की सम्भावना प्रतीत होती है ।[67] किन्तु गोस्वामी जी ने 'निजइच्छानिर्मित तनु' कहकर रामानुज आदि के द्वारा प्रवृत्त 'सोऽकामयत्' या 'अवताराणाम् हेतुरिच्छा' के समान अवतार के प्रति ईश्वर की इच्छा कहकर उसके एकांगी होने की बात का निराकरण करने का प्रयास किया है । यह ब्रह्मजो राम के रूप में अवतरित होता है गोस्वामी जी का उपास्य है, यह ब्रह्म उपयोगितावादी रूप में प्रकट होता है । यह पारमार्थिक होते हुए भी व्यावहारिक अधिक है । यह निरपेक्ष और तटस्थ होने की अपेक्षा सक्रिय भी है ।

गोस्वामी जी ने रामानुज-सम्प्रदाय में मान्य पर-विग्रह रूप से भी उपास्य राम को सम्बद्ध कर उसका अवतार माना है । परब्रह्म-रूप और वेदान्त में मान्य उपास्य ईश्वर का अद्वितीय रूप है । उससे परे कुछ भी नहीं है । ब्रह्म-वादियों का निर्गुण निराकार रूप भी उसका एक विशिष्ट रूप मात्र है । वह ब्रह्म सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित सम्पूर्ण प्रकार की उपाधियों से विवर्जित सभी

कारणों का कारण है ।

तुलसीदास के वर्णन के अनुसार श्री राम अपने सगुण रूप में उस परब्रह्म शक्ति का दर्शन माता कौशल्या को कराते हैं । तदनुसार कौशल्या उस अद्भुत, अखण्ड रूप को देखती है जिसके प्रत्येक रोम में करोड़ों ब्राह्मण दिखाई देते हैं ।[68] असंख्य रवि, चन्द्रमा शिव, ब्रह्मा, अनेक पर्वत सरितायें और समुद्र, पृथ्वी एवं वन उसमें स्थित हैं ।[69] उपास्य राम में 'परविग्रह' के सर्वाश्रयदाता तथा भिन्न–2 रुचियों को उत्पन्न करने वाले और शुभआश्रयत्व आदि गुणों का आरोप हुआ है इसीलिए तुलसीदास जी का कथन है कि नारियां श्री राम को अपनी–अपनी रुचि के अनुरूप अत्यधिक प्रसन्नता के साथ देख रही हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मानों अतिसुन्दर मूर्ति को धारण किये हुए साक्षात् श्रृंगार ही विद्यमान है ।[70] श्री राम अनपायनी प्रेम भगति के दाता, अनामय, अनन्त, अनादि, एक होते हुए भी अनेक और करुणा–वरुणालय हैं ।[71] वे अन्तर्यामी रूप में सर्वदा सभी के हृदय में वास करते हैं और उसका पालन करते हैं ।[72] श्री राम का व्यक्तित्व कौतुकता से भरा हुआ है । रामचरित–मानस के उत्तरकाण्ड में वर्णनानुसार कागभुशुन्डि श्री राम के उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड, अनन्त लोकों और लोक-पालों का दर्शन करते हैं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्ड में राम का अवतार देखते हैं ।[73] फिर भी मायापति कृपालु भगवान् राम इनसे परे दिखाई देते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपास्य राम जहां एक ओर अपनी सृष्टि से परे हैं और इष्ट देवात्मक गुणों से सम्पन्न हैं वहीं दूसरी ओर एकेश्वरवादी तत्वों से युक्त उनका पररूप ही साकार विदित होता है ।

प्रयोजन—समन्वय :—

अवतारवाद का महत्वपूर्ण अंग उसका प्रयोजन है मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्राप्त वर्णनों के अनुसार निज इच्छा से आविर्भूत होकर लीला एवं चरित्र का विधान करने वाले भगवान् का समस्त कार्यकलाप किसी न किसी प्रयोजन से संयुक्त रहा है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने मध्यकाल में प्रचलित प्रायः सभी प्रयोजनों को अपने महाकव्य रामचरित-मानस में समाविष्ट कर दिया है ।

यदि प्रयोजन की दृष्टि से वैदिक साहित्य का मन्थन किया जाये तो सर्वप्रथम वैदिक विष्णु और इन्द्र इत्यादि देवताओं के प्राचीन कार्य मुख्य प्रतीत होते हैं । ऋग्वेद में वैदिक विष्णु को त्रिविक्रम कहा जाता है । इन्होने अपने तीन पदों से पृथ्वी को क्रमित कर लिया था । इसी प्रकार इन्द्र ने वृत्रासुर का वध कर उसके द्वारा रोकी गई जलराशि को पृथ्वी में प्रेषित किया था । विष्णु इन्द्र के सखा हैं । वे जगत् के रक्षक एवं समस्त धर्मों के धारक हैं । यजमान विष्णु के उस परम पद से अपने हृदय को प्रकाशित करते हैं । वे शम्बरासुर की अनेक पुरियों को नष्ट करने में इन्द्र की सहायता करते हैं ।[74]

ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक विष्णु के मुख्य कार्यों का अवतारवाद के युग में विष्णु के अवतारों और उनके सहायकों पर आरोपित किया गया है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि कृपालु विष्णु मनुष्य का रूप धारण कर भगत, भूमि, भूसुर और देवताओं के हित के लिए मनुष्य का

शरीर धारण कर नाना प्रकार का चरित्र धारण करते हैं । अवतारवाद के उक्त प्रयोजनों में वैदिक विष्णु और इन्द्र के कार्यों और पराक्रमों की ध्वनि देखी जा सकती है ।[75]

महाकाव्यकाल में अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन देव-शत्रुओं का वध रहा है । देवगण विष्णु से प्रर्थना करते हैं कि इस संसार में देवताओं के शत्रुओं का वध आप ही को करना है । रावण सम्प्रति देव और ऋषियों को त्रास दे रहा है । वह बहुत ही दुराघर्ष है जिसका वध आपही को करना है ।[76] किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार विप्र, धेनु, सुर और सन्त इत्यादि सभी के निमित्त असुरों का वध एक मात्र प्रयोजन प्रतीत होता है ।[77] श्रीमद्भगवद्गीता 4.7 के अवतारवादी प्रयोजन से भी स्पष्ट है कि असुरों के उत्थान और धर्म के पतन को रोकने के लिये ही हरि का अवतार होता है । गीता के अनुसार धर्मोत्थान के लिए ही ईश्वर के अवतार की आवश्यकता होती है । साधुओं के परित्राण, दुष्टों के विनाश और धर्म-स्थापन की यह आवश्यकता युग–युग में रही है ।[78] गोस्वामी तुलसीदास ने भी गीता का अनुसरण करते हुए कहा है कि जब–जब धर्म की हानिहोती है और अधम–अभिमानी असुरों की वृद्धि होती है अवर्णनीय अनीति का विस्तार होता है । जिससे विप्र, धेनु, सुर और धरती दुःखी होते हैं तब तब प्रभु विविध शरीरों को धारण कर सज्जनों की पीड़ा का हरण करते हैं । गोस्वामी तुलसीदास ईश्वर के अवतार को हेतु रहित और जग का उपकार भी करने वाला बतलाते हैं । भक्तों के प्रेम में वशीभूत होकर भी वे अवतार लेते हैं और सब जगह भी समान रूप से व्यापक हैं । तुलसीदास का यह

भी कथन है कि वे केवल भक्तों के हित के लिए अनुरागवश अवतार ग्रहण करते हैं ।[79]

तुलसीदास ने अवतारवाद और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया है । भक्ति सम्बन्धित सम्वलित अवतारवादी प्रवृत्तियों में वेद, ब्राह्मण, पृथ्वी और गो रक्षा आदि की भावनायें विद्यमान रही हैं । पुराणों में भी यही प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं । फिर भी भक्त के निमित्त हरि का अवतार अत्यधिक मात्रा में प्रचारित हुआ है । विशेषकर भारत के सहस्रों तीर्थ-स्थानों में स्थापित असंख्य अंशावतारों की पौराणिक कथाओं ने भक्ति के प्रसार में विशेष सहायता पहुंचाई है । इस प्रकार उपर्युक्त अनुशीलन से जहाँ एक ओर भक्ति अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में मान्य हुयी है तो दूसरी ओर विष्णु तथा उनके राम कृष्ण आदि अवतार उपास्य रूप में प्रचलित हुए हैं । इस परिवर्तन का फल यह हुआ है कि विष्णु के परम्परागत विरोधी असुर तथा जिन्हें विष्णु ने कतिपय अवतारों में मारा था, वे उनके जय विजय नाम के पार्षद द्वारपालों के अवतार माने गये हैं । भागवत के अनुसार उनका अवतार सनकादि के शाप के कारण हुआ था । गोस्वामी तुलसीदास ने इस पौराणिक प्रयोजन को भी अन्य प्रयोजनों में से एक माना है । गोस्वामी तुलसीदास रचित राम–चरित–मानस में राम को ही विष्णु का अवतार माना गया है । इसलिए गोस्वामी जी ने राम जन्म के अनेक हेतुओं पर विचार किया है । वे कहते हैं कि राम जन्म के अनेक हेतु हैं वे एक से एक और परम विचित्र हैं ।[80] इसी क्रम में उन्होंने सर्वप्रथम हेतु के रूप में विप्र द्वारा शापित जय और विजय का उल्लेख किया है । यही क्रमशः हिरण्याक्ष

और हिरण्यकशिपु के रूप में वराह और नृसिंह अवतारों द्वारा मारे गए थे । यहाँ कल्पानुसार कथा बतलाते हुए अवतार हेतुओं का उल्लेख किया गया है । वे ही दोनो असुर पुनः कुम्भकर्ण और रावण के रूप में अवतरित होते हैं । जिनका राम के द्वारा संहार किया गया था ।

दूसरे कल्प की कथा के अनुसार हरि के अवतार के निमित्त जलंधर और शिव का संग्राम माना जाता है । तदनुसार जलंधर की पत्नी के शापवश इन्होंने रामावतार का रूप धारण किया और जलंधर रावण के रूप में अवतीर्ण होकर इनके हाथों मारा गया था ।[81] एक दूसरे कल्प में नारद जी के शाप के कारण भी राम का अवतार होता है । इस प्रकार गोस्वामी जी ने प्रत्येक कल्प में रामावतार का अस्तित्व माना है ।[82] फलस्वरूप इन विभिन्न कल्पों में प्राप्त कथाओं के अनुसार अवतार के विभिन्न प्रयोजनों की सम्भावना होती है । हरि भक्तों के सुख के लिए राम के रूप में अवतीर्ण होते हैं और नरों के अनुरूप पावन चरित्र करते हैं ।

मध्य काल में लीला की अधिक व्याप्ति होने के कारण भक्तों के रंजन के निमित्त लीला और चरित्र भी एक प्रकार के प्रयोजन के रूप में मान्य हुए हैं । राम उपास्य और इष्टदेव हैं, इसलिए अवतार चरित्र में भवसागर से तारने वाले तत्वों को भी प्रयोजनात्मक मान्यता प्राप्त हुई ।[83] इसलिए इस युग में अवतार यदि उपास्य हुए हैं तो प्रयोजन उनके पावन लीला चरित्र के रूप में परिवर्तित हो गये हैं । जिसके फलस्वरूप उनके विरोधी असुर भी हरि के विशिष्ट रूप हो गये और दोनो में कोई अन्तर नहीं रहा ।[84] यह वेदान्ती

एकात्मवाद का ही पुष्पित और पल्लवित दर्शन है जिसका पर्यवसान अद्वैतवाद में होता है ।

तुलसीदास और अवतारवाद –

अवतारी उपास्य राम –

मध्य काल में जिस प्रकार कृष्ण का उपास्य रूप सन्त साहित्य में चर्चित रहा है उसी प्रकार कृष्ण के समान ही राम का उपास्य रूप गोस्वामी तुलसीदास एवं अन्य संतों के साहित्य में गृहीत हुआ है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस बात को अत्यधिक दृढ़ता के साथ कहा है कि जो ब्रह्म व्यापक, विरज, अज, अकल, अनीह और अभेद है जो वेदों द्वारा भी ग्रहण करने योग्य नहीं है, वही व्यापक ब्रह्म राम है । जो भक्तों के हित के लिए अवतरित हुआ है ।[85] वे आगे कहते हैं कि वही राम उनके इष्टदेव रघुवीर हैं जिसे धीर मुनिगण सदा ध्यान करते हैं ।[86] वही राम निर्गुण, अरूप, अलख और अज होते हुए भी भक्त के प्रेमवश आकार धारण करते हैं । तुलसीदास का यह भी कथन है कि वह चिन्मय अविनाशी ब्रह्म राम सबसे परे होते हुए भी सबके हृदय में निवास करता है । उसे ही वेदों में नेति–नेति कह कर निरूपित किया गया है । उसी राम के वाम भाग में आदि शक्ति सीता जिनसे असंख्य लक्ष्मी, और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं, सुशोभित हो रही हैं । अपने अंशों के सहित तथा आदि शक्ति माया के साथ वही प्रकट हुआ है ।[86] कौशल्या के अनुरोध पर वह शिशु लीला भी करता है । मायातीत और गुणातीत होने पर भी वही विप्र, धेनु, सुर और सन्तों के लिए अपनी इच्छा से मानव रूप

धारण करता है । वह व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण एवं अज है । कौशल्या की गोद में प्रेम भक्ति के कारण वह लक्षित हो रहा है । उसके अखण्ड अद्भुत रूप के रोम, रोम में कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड विराजमान हैं ।[87] सभी देवता उसके सामने भयभीत हाथ जोड़े खड़े हुए हैं, वही व्यापक, अकल, अनीह, अज, निर्गुण और बिना नाम रूप वाला होते हुए भी भक्तों के हित के लिए नाना प्रकार का चरित्र करता है ।[88] कुटिल राजाओं को और भयानक असुरों को काल के समान, पुरवासियों को श्रेष्ठ पुरुष, नारियों को उनकी रुचि के अनुसार, पण्डितों को विराट् रूप, योगियों को परम तत्वमय, शान्त, शुद्ध, सम सहज प्रकाश–स्वरूप तथा भक्तों को उनके इष्टदेव के समान दिखाई देता है ।[89] उसके सभी कर्म अमानुषिक उसका शुद्ध सच्चिदानन्द चरित्र संसार सागर में सेतु के समान है । राम ब्रह्म का पारमार्थिक रूप अविगत, अलख, अनादि और अनूप तथा सकल भेदों से रहित है । वही भक्त, भूमि, भूसुर और सुरभि के निमित्त मानव शरीर धारण कर अनेक चरित्र करता है । चिदानन्द देह युक्त राम प्राकृत राजा के समान अनेक चरित्र करता है । आर्तरोगियों के लिए वह करुणामय प्रतीत होता है । विरज, व्यापक और अविनाशी होते हुए भी वह सभी के हृदय में निरन्तर निवास करता है । उसकी लीला-रति नवधा भक्ति को दृढ़ बनाती है । वह ध्यानातीत होकर भी मायामृग के पीछे दौड़ रहा है । उसकी लीला परहित होते हुए भी हेतु रहित है ।[90] वह राम 'माया–मानुष' रूप है । इस अखिल भुवनपति ने विश्व को तारने के लिए तथा धर्म के निमित्त मानव शरीर ग्रहण किया है । सुर, पृथ्वी, गो और द्विज के लिए अपनी इच्छा से वह

आविर्भूत होता है । इनके डर से काल भी डरता है । यह मनुष्य का रंजन करते हैं, खलों को नष्ट करते हैं तथा वेद एवं धर्म के संरक्षक हैं ।[91]

राम ने अपने पूर्व अवतारों में मधु कैटभ और महावीर दिति सुत को मारा था तथा बलि को बांध लिया था और सहस्र–भुज का संहार किया था । वही पृथ्वी का भार हरण करने के लिए अवतरित होता है ।[92] यह एक मात्र भगवान् सदा स्वतन्त्र होते हुए भी नट के समान नाना प्रकार का चरित्र करता है ।[93] पूर्व काल में इन्होंने ही मीन, कूर्म, शूकर, नृसिंह, वामन और परशुराम इत्यादि के रूप में अवतार ग्रहण किया था ।[94] द्वापर युग में इन्होने ही श्री कृष्ण के रूप में अवतार लिया था । यह स्वभाव से भक्त वत्सल और कृपालु हैं । इन्होने धरा पर आविर्भूत होकर अखिल लोक के दारुण दुःख को दूर कर दिया था । अतएव इसी सच्चिदानन्द घनराम ने राजा राम का रूप भक्तों के निमित्त ही धारण किया था। जिस प्रकार नट अनेक वेष धारण कर विभिन्न प्रकार का नाटक करता है वैसे ही साधारण नर के समान इन्होने भी अपने पावन चरित्र को प्रकट किया है । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में राम का अवतार होता है, इनका बाल विनोद अपरम्पार है । इनके उदर में नाना प्रकार के ब्रह्माण्ड स्थित है । ये करोड़ो ब्रह्मा के समान सृष्टि की रचना करने वाले हैं । करोड़ो विष्णु के समान अलख तथा करोड़ो रुद्र के समान संहार करने वाले हैं । फिर भी यह सुख के निधान, करुणा-यतन भगवान्, भाव के वश में रहते हैं ।[95] उपर्युक्त उद्धरणों से उपास्य राम के अवतारी रूप और अवतार रूप दोनो स्पष्ट हो जाते हैं । अवतारी रूप में वे अद्वैत ब्रह्म राम हैं और अवतार रूप में वह नटवत् चरित्र करने वाले प्राकृत

रूप में राजा राम हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास के पश्चाद्‌वर्ती कवियों की दृष्टि में अवतारी राम –

गोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् अवतारी राम का सम्बन्ध दो वर्गों में विभाजित साहित्य में दिखाई देता है । उनमें प्रथम तो इनका साम्प्रदायिक रूप है, जिसका राम भक्ति सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के समानान्तर विकास हुआ । दूसरा रूप रीति-कालीन परम्परा में आने वाले केशव सेनापति आदि राज-दरबारी कवियों की रचनाओं में दिखाई देता है ।

राम-भक्ति-शाखा के परवर्ती कवियों में उपास्य राम का ही विकास हुआ है किन्तु जहाँ तुलसीदास मे राम-चरित्र का यथेष्ट विस्तार हुआ है वहां अग्रदास, नाभादास आदि कवियों में अर्चातत्व युक्त राम के युगल रूप का अधिक प्रचार हुआ है । अर्चा–विशिष्ट होने के कारण राम का यह रूप नित्य माना गया है । श्री अग्रदास के एक पद में राम को भक्त–वत्सल, जानकी–रमण तथा अयोध्या का नायक कहा गया है । वे कल्पसिन्धु हैं और अपनी अल्प सेवा को भी वे मेरू के समान मानते हैं । वे गौतम की पत्नी और गज ग्राह को तारने वाले तथा अपने सहायक विभीषण तथा अन्य कपियों के शरणदाता हैं । इनके नित्य रूप की चर्चा करते हुए अग्रदास कहते हैं कि सन्तों की रक्षा के लिए ये अहर्निश धनुषवाण लिये रहते हैं ।[96]

मध्य युग में श्रीकृष्ण के युगल रूप और उसकी अष्ट–याम सेवा के समान राम–भक्ति शाखा में राम और जानकी युगल उपास्य के रूप में गृहीत

हुए हैं । लच्छनदास ने मिथला में स्थित राम के युगल रूप का वर्णन अति मधुरता के साथ अपने पदों में किया है ।[97] नाभादास ने भी राम के नित्य युगल रूप की महत्ता बतलाते हुए कहा है कि यह नृप मण्डली नित्य है और अवधअखण्ड विहार भूमि है । नित्य प्रभु के सभी अवतार चारों ओर से इनकी सेवा करते हैं ।[98] यह धाम जानकी बल्लभ लाल का जीवन धन है । वे समस्त गुणों के विश्रामस्थल अनेक रस एवं अनेक प्रकार की लीलाओं के धाम हैं ।[99] उनके ऐश्वर्य के अतिरिक्त उनके माधुर्य रूप का भी चित्रण किया गया है । जिसमें संयोग, वियोग युगल सन्धि, माधुर्य, रति तथा नित्य दिव्य सुख भोग की कल्पना भी की गई है ।[100] नाभादास ने कुंज बिहारी श्री कृष्ण के समान राम के कुंज सुख का वर्णन भी किया है । अयोध्या भी वृन्दावन के समान उनका नित्य लीला धाम है । अन्तर केवल इतना ही है कि वृन्दावन में कोई सुभट उसकी रखवाली नहीं करता किन्तु अयोध्या धाम की रक्षा बड़े बड़े सेनापति करते हैं ।[101]

मध्य काल के इसी सम्प्रदाय में राम के युगल रूप को लेकर सखी भाव का विस्तार भीदेखने को मिलता है । जिसके अनुसार अग्रदास आदि भक्तगण सहचरी–भाव से युगल–रस में लीन हो गये थे । इसके अतिरिक्त श्री किशोरी जी की क्रमशः श्री प्रसादा, श्री चन्द्रकला, श्री मदनकला श्री विश्व मोहिनी, श्री चम्पकला, श्री रूपकला और श्री चन्द्रवती आदि आठ सखियाँ मानी गई हैं और श्री राम लला की भी क्रमशः चारु शीला, श्री हेमा, श्री क्षेमा, श्री वरारोहा, श्री पद्मगन्धा, श्री सुलोचना, श्री लक्ष्मणा, श्रीसुभगा आदि अष्ट

सखियाँ भी मानी गई हैं ।[102] किन्तु श्री राम की सखियों का यह रूप अधिक परवर्ती प्रतीत होता है । किन्तु कृष्ण भक्ति शाखा में इस रूप की अवतारणा बहुशः मिलती है और राम-भक्ति-शाखा में ऐसी कोई प्रवृत्ति बहुशः लक्षित नहीं होती ।

केशव की रामचन्द्रिका में अवतारी राम –

कविवर केशव ने अपनी राम चन्द्रिका में पूर्ण ब्रह्म अवतारी राम को अपना पात्र बनाया है । उन्होने राम को पुराण पुरुष के रूप में चित्रित किया है ।[103] वेदों में उन्हें नेति नेति कहा गया है । वे उपास्य राम अष्टसिद्धि भक्ति और मुक्ति के प्रदाता हैं । वे अवतार मणि, परब्रह्म और अवतारी हैं ।[104] उनकी ज्योति से अखिल विश्व आलोकित है । इन्होने मधुकैटभ, नरकासुर का वध किया था और राजा बलि से याचना भी की थी । यह बड़े बड़े दानियों के समान स्वभाव वाले, सप्तद्वीपों के राजा गौ और ब्राह्मणों के दास तथा देवताओं का पालन करने वाले हैं ।[105] केशवदास का अग्रेतर कथन है कि श्रीराम निर्मल अनन्त और अनादि हैं वेद उनके सम्पूर्ण भेद को नहीं जानते वे समदर्शी हैं । किसी से वैर तथा स्नेह नहीं रखते हैं किन्तु फिर भी सब भक्तों के निमित्त वे अवतार ग्रहण करते हैं । केशवदास आगे कहते हैं कि ब्रह्मा इत्यादि देवता भी इनका अन्त नहीं पा सके हैं । वेदों ने अनेक प्रकार से इनकी स्तुति की है । इस प्रकार वे राम केवल ब्रह्म है, वे अधर्म का नाश करते हैं और धर्म का प्रचार करते हैं । इन्होने अपनी इच्छा से पृथ्वी पर देह धारण किया है । रावण को मारकर इन्होने तपस्वियों की रक्षा की है तथा उन्हें निर्भय यज्ञादि करने का

अवसर प्रदान किया है । कविवर केशवदास श्री राम को क्षीरसायी के रूप में अभिहित करते हैं । उनके अनुसार ब्रह्मा इत्यादि देवताओं की प्रार्थना सुनकर क्षीरसायी भगवान् ने दशरथ पुत्र के रूप में अपने अवतार लेने की घोषणा की थी । उनका कथन है कि इन्हें वेदों में पूर्ण-काम कहा गया है तथा ये विश्व के रचयिता पालक और संहारकर्ता हैं फिर भी इन्होने अत्यन्त कृपा करके मनुष्य शरीर में अवतार ग्रहण किया है । ये देवताओं में श्रेष्ठ और राक्षसों के विनाशक और मुनियों के संरक्षक हैं ।[106] कविवर केशवदास इनके एकेश्वरवादी रूप की भी चर्चा करते हैं इसलिए गरुड़, कुबेर, यम, राक्षस, देवता, दैत्य और राजा अनेक इन्द्र तथा अनेक शिव, करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा अपने को राम जी का दास मानते हैं । केशव-दास ने इनकी नर लीला की चर्चा करते हुए यह कहा है कि श्री रघुनाथ जी सर्वव्यापी और सर्वत्र विद्यमान होने पर भी मनुष्य की तरह लीला करके मूढ़ों को मोहित कर रहे हैं ।[107] केशव ने इसके आगे इन्हें यज्ञ पुरुष, नारायण इत्यादि शब्दों से अभिहित किया है । वे सदा शुद्ध, समदर्शी करुणा निधान विश्व के आदि मध्य और अन्त होकर भी अनेक रूप धारण कर विश्व को धारण कर रहे हैं । केशव के अनुसार श्रीराम अन्तर्यामी चतुर्दश लोकों के आनंददाता तथा निर्गुण और सगुण स्वरूप वाले हैं । यही विश्व रूप भी हैं और अखिल विश्व इन्हीं में वर्तमान है । विश्व की मर्यादा के भंग होने पर इनका अवतार होता है, यह विश्व रहस्य के ज्ञाता आदि देव हैं ।[108]

कविवर केशवदास का कथन है कि रघुपति राम के अंशावतार ब्रह्म, शम्भु, रवि, चन्द्रमा और अग्नि इत्यादि देवता हैं । ब्रह्मा से लेकर परमाणु

पर्यन्त सभी के आदि अन्त हैं ।[109] उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कविवर केशव के उपास्य एवं अवतारी ब्रह्म राम तुलसीदास के राम से भिन्न नहीं प्रतीत होते । गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के सम्बन्ध में ब्रह्म और उपास्य सम्बन्धी जितने उपादानों का प्रयोग किया है । तदनुसार कविवर केशवदास ने भी उनका यथावत् उपायोग किया है ।

इस प्रकार केशव और तुलसी राजदरबार और ठाकुरदरबार के या दो स्कूलों के होते हुये भी राम के अवतारत्व की दृष्टि से अभिन्न और एक रूप प्रतीत होते हैं । राम–चन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में केशव ने तुलसीदास के इस सिद्धान्त से सहमति प्रकट की है कि निर्गुण रूप की चर्चा करते हुये वे कहते हैं कि जिसके न रूप है न रेख और न गुण हैं, जो न वेदों में गेय है और न गाथाओं में, वही रघुनाथ रंगमहन में राजश्री के साथ हैं ।[110]

इस प्रकार तुलसीदास के पश्चात् आने वाली रीतिकालीन परम्परा में राम अवतार मात्र न होकर उपास्य ब्रह्म और अवतारी रूप में गृहीत हुये हैं ।

इस युग के अन्तिम चरण के कवि सेनापति ने राम को कतिपय स्थलों पर पूर्णावतार से सम्बोधित करते हुये भी उपास्य और अवतारी रूप को यथोचित स्थान दिया है । उन्होंने अपने ग्रन्थ 'कवित्त–रत्नाकर' के प्रारम्भ में इनके उपास्य रूप का परिचय देते हुये कहा है कि सर्वत्र जिसकी ज्योति व्याप्त है और वेदो, इतिहासों एवं पुराणों में जिनका गुण गाया गया है वह पूर्ण पुरूष का पूर्णावतार है ।[111] देवताओं ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये जिससे

प्रार्थना की थी उस लोक-पति ब्रह्म ने मनुष्य रूप धारण किया है ।[112] उन्होंने अपनी कविता में राम के उपास्य रूप को अभिव्यक्त किया है । सेनापति की रचनाओं के अनुसार राम, महावीर, धीर, धर्म-धुरन्धर, सारंग धनुष धारण करने वाले, दानवों के दल को नष्ट करने वाले, कलिमल का मन्थन करने वाले देव, द्विज और दीनों के दुःख को दूर करने वाले पूर्ण पुरूष के पूर्ण अवतार हैं ।[113] सेनापति के अनुसार श्रीराम परम कृपालु, दिग्पालों के रक्षक पाताल और स्वर्ग के विशाल आधार स्तम्भ हैं । ये परम उदार, पृथ्वी का भार हरण करने वाले और मनोकामना के अनुसार पूजा ग्रहण करने वाले हैं । सेनापति ने जामवन्त की प्रासंगिक कथा के अनुसार सभी अवतारों में राम को ही सर्वगुण-सम्पन्न कहा है । तदनुसार उनका कथन है कि जामवन्त ने सर्वप्रथम बलि का दमन किया और वामनावतार की परिक्रमा की । इसके बाद उन्होंने परशुराम का दर्शन किया, राम जी के अनुचर बने द्वापर में कृष्ण को जामवन्ती प्रदान की और अन्य अवतारों से मिलने के पश्चात् उन्होंने जानकीनाथ श्री राम का ही सेवक होना उचित समझा था । इस प्रकार सभी अवतारों में राजा राम ही गुण धाम कहकर गाये गये हैं ।[114] सेनापति ने अपने उपास्य राम को जीव-जगत् का स्रष्टा, विश्व रूप प्रदर्शक, निराकार, निराधार, सर्वव्यापी तीनों लोकों का आधार पूर्ण पुरूष और हृषिकेश आदि परब्रह्म के रूप से अभिहित किया है ।[115] सेनापति प्रह्लाद एवं गजग्राह इत्यादि का उद्धार करने वाले सूर्य, चन्द्र और पवन इत्यादि देवों द्वारा सेवित, पररूप से अभिहित रघुवीर राम से अपना दुःख निवेदन करते हैं ।

उपर्युक्त उद्धरणों और विवेचन से तुलसी और केशव की परम्परा

में आने वाले अवतारी और अवतार से भी परे उपास्य या इष्ट देव राम की स्पष्ट झांकी मिलती है । सेनापति ने इष्टदेव राम की परम्परा में गृहीत हुये तुलसीदास और केशव के द्वारा प्रतिपादित उनके एकेश्वरवादी एवं ब्रह्म रूप से चर्चित किये जाने वाले उपादानों का आश्रय लिया है । मध्यकाल में राम के अवतारत्व से परिपूर्ण उनके उपास्य रूप का पर्याप्त प्रचार स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है । इस युग में राम के जिन रूपों की अभिव्यक्ति दिखायी देती है, उनमें तुलसी के निकट केशव और सेनापति अधिक संयुक्त रूप से दिखायी देते हैं ।

कृष्ण-भक्ति-शाखा :-

ऐतिहासिकता :-

दशावतारों में श्री कृष्णावतार का अतिशय महत्व है । श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरूष और पुरूषोत्तम थे । वैदिक साहित्य से लेकर पुराण, महाभारत और रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों में कृष्ण की व्याप्ति दिखायी देती है । भारतीय वाङ्मय में भागवत–पुराण तक अनेक कृष्ण नाम के व्यक्तियों का उल्लेख मिलता हैं । विविध कृष्ण नाम वाले व्यक्तियों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में हुआ है । ऋग्वेद के आठवें मण्डल के कतिपय सूक्तो के रचयिता का नाम कृष्ण अंगिरस है । छान्दोग्योपनिषद् 3.17.6 में कृष्ण, देवकी के पुत्र और आँगिरस के शिष्य बतलाये गये हैं । ऋग्वेद 6.9.1 में कृष्ण अर्जुन का उल्लेख आया है । अर्थववेद संहिता 1.2.3.1 में राम और कृष्ण का उल्लेख आया है । पाणिनीय अष्टाध्यायी 4.3.98 में पाणिनि के सूत्र 'वासुदेवार्जुनाभ्याम् वुञ्' में वासुदेव कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख हुआ है । जिससे कृष्ण और अर्जुन के

साहचर्य की बात का उल्लेख हुआ है । महाभारत में कृष्ण और अर्जुन का सह्चर्य सर्व–विदित ही है गीता 10.37 में श्रीकृष्ण कहते हैं कि पाण्डवों में मैं अर्जुन हूँ । इन सभी उपर्युक्त उद्धरणों और उल्लेखों से यह विदित होता है कि महाभारत कालीन कृष्ण से उन्न उपर्युक्त कृष्ण नाम के व्यक्तियों का कुछ साम्य और कुछ वैषम्य दिखायी देता है । पौराणिक काल में इन सभी कृष्ण नामक व्यक्तियों के और उनके गुणों के एकीकरण का प्रयास किया गया है । अष्टाध्यायी का रचनाकाल ईसापूर्व सप्तम अथवा अष्टम शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है । उसमें वासुदेव कृष्ण और अर्जुन का एक साथ उल्लेख है । जिससे कृष्ण का प्राचीन ऐतिहासिक रूप सिद्ध होता है ।

वासुदेव कृष्ण महाभारत के महानायक हैं इन्हें महाभारत 1.67. 151 में विष्णु या नारायण का अवतार माना गया है । उनके देवत्व में कोई सँदेह नहीं है । यद्यपि इस विषय में कुछ लोगों की मत–भिन्नता भी प्रकट हुई है ।

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने अष्टाध्यायी 4.3.98 में प्रयुक्त वासुदेव और अर्जुन के रूप में भक्ति का संकेत माना है ।[116] ईसा पूर्व से पूर्व दूसरी शताब्दी से होने वाले महाभाष्यकार, पतंजलि ने 'बलि–बन्ध' और 'कंसवध' इत्यादि नाटकों का उल्लेख किया है । जिससे श्री कृष्ण की वीरता प्रकट होती है । इससे ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में कृष्ण के अवतार कथाओं का पता चलता है ।[117] छान्दोग्योपनिषद् और गीता के वर्णनों में बहुत साम्य है इसलिये उत्तर वैदिक काल से लेकर ईसवीं पूर्व तक जिस कृष्ण का और उनके धर्म का प्रचार हो चुका था, वे कृष्ण महाभारत के महानायक वासुदेव कृष्ण ही थे । फिर भी

वैदिक कृष्ण, उपनिषद् कृष्ण, महाभारत कृष्ण, द्वारका कृष्ण, और गोकुल कृष्ण की एकता की समस्या अग्रेतर खोज की अपेक्षा रखती है । जहाँ तक महाभारत और द्वारका कृष्ण और गोकुल कृष्ण की एकता का प्रश्न है उसमें कोई मतभेद नहीं है ।

मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में राधा-कृष्ण और गोपाल-कृष्ण की अधिक चर्चा हुई है इस काल के पूर्व ही भागवत आदि पुराणों में श्रीकृष्ण का अवतारवादी रूप व्यापक प्रसार पा चुका था । राम एक ओर तो वे विष्णु के अंशावतार के रूप में प्रसिद्ध हुये तो दूसरी ओर उन्हें भगवान् और ब्रह्म शब्द से भी अभिहित किया गया ।

भक्तकवियों में अवतार रूप :—

अवतारवाद की दृष्टि से मध्यकालीन कवियों में प्रायः दो प्रकार के श्री कृष्ण मिलते हैं । उनमें से प्रथम हैं पुरूष नारायण और विष्णु के नाम से अभिहित, क्षीरशायी विष्णु के अवतार कृष्ण तथा द्वितीय हैं श्रीकृष्ण या हरि उपास्य ब्रह्म के अवतार श्री कृष्ण डॉ0 दीनदयाल गुप्त का कथन है कि 'धर्म संस्थापन के लिये जो अवतार होता है वह चर्तुव्यूहात्मक है । संसार को आनन्द देने के लिये जो अवतार होता है वह उनका रस–रूप है । कृष्ण अवतार में इनके मतानुसार कृष्ण ने चर्तुव्यूहात्मक और रसात्मक दोनों रूपों से युक्त अवतार लिया था ।[118]

भागवत, सूर-सागर और नन्ददास कृत दशमस्कन्ध प्रायः तीनों में विष्णु का अवतार रूप सामान्यतः एक ही है । तीनों में पृथ्वी गोरूप धारण कर

देवताओं और ब्रह्मा के पास जाती है और इनकी प्रार्थना सुनकर आकाशवाणी से क्षीरशायी नारायण या विष्णु के कृष्णावतार के होने की सूचना देती है ।[104] इस रूप में श्रीकृष्ण भू-भार हरण करने के लिये आविर्भूत होने के कारण असुरों और राजाओं के संहारक हैं ।

सूरदास और श्री कृष्णावतार :-

भक्त-कवि सूरदास ने अपने उपास्य देव परब्रह्म हरि के ही ब्रह्मत्व सम्पृक्त अवतार लीलाओं या अवतारी कार्यो का गान किया है । उसमें एक ओर तो उसके प्रयोजन है और दूसरी ओर उसी में सन्निविष्ट उसकी लीलायें हैं फलतः हरि ही अन्तर्यामी हैं और ब्रह्मवादियों का निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म है । सूरसारावली में इस अविगत, आदि, अनन्त, अनुपम अलख और अविनाशी ब्रह्म का वर्णन करते हुये सूरदास ने कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्म प्रकट पुरूषोत्तम नित्य अपने लोक में विलास करता है जहां विनश्वर वृन्दावन और उनकी कुंजलतायें फैली हुई हैं । जहाँ वेद रूप भ्रमर गुंजन करते हैं वहीं प्रिय और प्रियतम दोनों विहार कर रहे हैं।[120]

कविवर सूरदास का अग्रेतर कथन है कि इसी हरि पुरूष से सृष्टि या लीलात्मक अवतारवाद का आविर्भाव होता है।[121] श्रीकृष्ण चतुर्भुज विष्णु के अवतार हैं । वे उद्धार करने वाले और असुरों का संहार करने वाले अन्तर्यामी एवं त्रिभुवन-पति हैं ।[107] वे पूर्वकाल में किये हुये तप के फलस्वरूप भूतल में अवतरित हुये हैं । यह अखिल विश्व का आधार और ब्रह्म आदि के मूल रूप हैं । ब्रह्म शिव सनकादि भी जिसका अन्त नहीं पा सके हैं । वे ही भक्तों के लिये

नाना प्रकार के वेश धारण करते हैं । शिवसनकादि और शुक्रादि के लिये भी जो हरि अगोचर हैं वही अवतरित हुये हैं ।[122]

अन्तर्यामी श्री कृष्ण :—

सगुणवादी कवियों में श्रीकृष्ण पर अन्तर्यामी का आरोप किया है सूरदास का कथन है कि जो प्रभु आदि सनातन और परब्रह्म परमेश्वर है तथा अन्तर्यामी हैं एवं घट–घट में व्याप्त हैं वहीं तुम्हारे यहां अवतरित हुये हैं ।[123] सूरदास श्रीकृष्ण के लिये अन्तर्यामी शब्द का प्रयोग बहुशः करते हैं । उनका कथन है कि वे मन की बात जानते हैं । नन्ददास उन्हें ब्रह्म से लेकर कीट पर्यन्त सबके अर्न्तमन की बात जानने वाले श्रीकृष्ण को सर्वान्तस्यामी कहा है ।[124] गोपियों के जल में खड़े होने का तात्पर्य अन्तर्यामी श्री कृष्ण बहुत शीघ्र समझ लेते हैं और जल के भीतर उनकों दर्शन देते हैं ।[125] इस प्रकार जिसका आदि अन्त नहीं है, निगम जिसकी महिमा को नेति–नेति कहते हैं वह अन्तर्यामी प्रभु सबका स्वामी है । सूरसागर में अनेक पदों में श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी कहकर सम्बोधित करते हैं ।

कविवर सूरदास और नन्ददास श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रतिपादित श्री कृष्ण के गुणों का अपने काव्य में बड़ी मधुरता से वर्णन करते हैं । वे श्री कृष्ण के ब्राह्य और अभ्यन्तर जागतिक रूपों की चर्चा करते हैं । उदाहरण के लिये माता यशोदा श्री कृष्ण के मुख में अखिल विश्व की देखती है ।[125] श्रीकृष्ण करोड़ों ब्रह्माण्डों को अविलम्ब आत्मसात् कर लेते हैं तथा इनके विराट् शरीर के एक–एक रोम में करोड़ों ब्रम्हाण्ड है । श्री कृष्ण के सहवासी गोपजन

गोवर्धन पूजा के समय सहस्र भुजों से युक्त इनके प्रत्यक्ष रूप को देखते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों और प्रसंगों से कवि श्री कृष्ण के ईश्वरत्व को सुसज्जित कर प्रस्तुत करते हैं । इससे उनके काव्यों से श्री कृष्ण के पूर्णावतार एवं उपास्य ब्रह्म की झलक मिलती है ।

अवतारी कृष्ण :–

अवतारी श्री कृष्ण स्वयं विष्णु के समान अनेक अवतार धारण करते हैं । कविवर सूरदास बालकृष्ण लीला का वर्णन करते हुये इनके अवतारी कार्यों और शक्तियों का उल्लेख करते हैं । वे कहते हैं कि जिस प्रभु ने मीन रूप में जल से वेदों का उद्धार किया है, कूर्म के रूप में पर्वत धारण किया है, वराह रूप में पृथ्वी को अपने दाँतों पर पुष्प के समान रखा है नरसिंह रूप में जिसने हिरण्य-कशिपु का वक्ष–स्थल विदीर्ण किया है, वामन के रूप में बलि को बांधा हैं और परशुराम के रूप में विप्रों का राज-तिलक किया है और राम के रूप में जिसने दशमुख रावण के शिरों को काटा है वे ही बाल-कृष्ण अब इस घर की देहली पर चढ़ नहीं पाते ।[126]

सूरसारावली में सूरदास का कथन है कि जब–जब दानव प्रकट हुये हैं तब तब श्री कृष्ण ने अवतार धारण कर उनका संहार किया है । उनका यह भी कथन है कि जितने अंशावतार और कलावतार हुये हैं वे सब श्री कृष्ण के ही अवतार है ।[127] भक्त नन्ददास और श्री हरि व्यास आदि भक्त कवियों ने भी श्री कृष्ण के अवतारी रूप का मधुर चित्रण किया है ।

उपर्युक्त उद्धरणों और मंथन से यह स्पष्ट है कि कृष्ण भक्त

कवियों ने श्रीकृष्ण के जिस अवतारी रूप का प्रतिपादन किया है उसके अनुसार वे केवल अवतार ही धारण नहीं करते हैं अपितु वृन्दावन में अपने विविध अवतारों के द्वारा नित्य सेवित भी होते हैं ।

श्रीकृष्ण का अवतार परिचय :–

श्री कृष्ण की लीलाओं का गान करते हुये कवियों ने एक ओर तो उनकी लीलाओं का गान किया है और दूसरी ओर उनके अवतारत्व की मीमांसा भी प्रस्तुत की है । भक्त कवि कुंभनन्दास 'दान लीला' के प्रसंग में कहते हैं कि दान माँगते समय श्रीकृष्ण अपने अवतारी रूप का स्वयं प्रदर्शन करते हैं । वे गोपियों को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि तुम गवांर गोपी हो मुझे क्या समझा रही हो । शिव, विरंचि, सनकादि और निगमादि मेरा अन्त नहीं पा सकते मैं भक्तों की इच्छा पूर्ण करूगां और 'कंस' तथा 'केशी' आदि असुरों का संहार करूंगा ।

'नन्ददास' के 'भ्रमर-गीत' में गोपियां श्री कृष्ण के वर्तमान और पूर्व अवतारी रूपों की चर्चा करती हैं । वे कहती हैं कि 'रामावतार' में इन्होंने विश्वामित्र का यज्ञ कराने जाते समय ताड़का को मार डाला था । वामनावतार में इन्होंने राजा बलि का बंधन किया था । परशुरामावतार में इन्होंने अपनी माता का वध कर दिया था तथा क्षत्रियों का संहार कर दिया था । नृसिंह के रूप में इन्होंने हिरण्यकशिपु का शरीर विदीर्ण कर दिया था और श्री कृष्ण के रूप में इन्होंने श्री कृष्ण की होने वाली पत्नी रुक्मिणी का हरण कर लिया था । ये बड़े निष्ठुर हैं यह गोपियों के उक्त कथन का व्यंग्यार्थ हैं ।[128] सूरसागर में सूरदास

ने श्रीकृष्ण के विविध अवतारी कार्यो का वर्णन किया है । कुंभनदास के अनुसार त्रिभुवन-पति श्री कृष्ण जल, थल, एवं घट–घट में निवास करने वाले हैं । वे असुरों के संहार मुनियों का त्राता, गोरक्षा और संतों के हित के लिये तथा धर्म की स्थापना के लिये ब्रज में अवतरित हुये हैं ।[129]

श्रीकृष्ण का लीलावतार :–

संतों का कथन है कि परब्रह्म विश्वमोहक मानव रूप धारण कर अवतार लीलायें करता है । कविवर सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का बड़ी मधुरता के साथ चित्रण किया है । वे कहते हैं कि जो ब्रह्म आदि सनातन अविनाशी और सदैव घट–घट में व्याप्त है पुराण जिसे पूर्ण ब्रह्म कहते हैं ब्रह्म और शिव जिसका अन्त नहीं जानते हैं जो आगम निगम से परे है, यशोदा उसे गोद में खिला रही है । जो पुराण पुरूष है तथा जप–तप संयम और ध्यान से परे हैं वहीं नन्द के आंगन में दौड़ रहा है जो बिना नेत्रों, रसना, नासिका और बिना हाथ पैर का है, विश्वम्भर जिसका नाम है । वही घर–घर मे गोरस चुरा रहा है । जो निराकार है वही गोपियों का रूप निहार रहा है जो जरा मृत्यु अथवा माता या पिता आदि किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से रहित है, ज्ञानियों के हदय में जिसका निवास स्थान कहा जाता है वही बछड़ों के पीछे डोल रहा है ।[130]

सूरदास का अग्रेतर कथन है कि जिससे अखिल सृष्टि, पाँच तत्वों और पंचभूतों की उत्पत्ति हुई है तथा जिसकी माया सारे विश्व को मोहित कर रही है, शिव समाज में भी जिसका अंत नहीं पाते वहीं गोपों की गाय चराते

हैं । जो नारायण अच्युत, परमानन्द सुखदायक, सृष्टि का कर्ता, पालक और संहारक है वहीं ग्वालिनों के संग लीला कर रहा है जिससे काल भी डरता है वह माता यशोदा के द्वारा ऊखल में बांध दिया गया है । जो गुणातीत है वहीं गोपियों के संग रास रचा रहा है । जो निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के रूप धारण करता है और क्षण मात्र में अखिल सृष्टि को लुप्त करने की क्षमता रखता है, वही वन–वीथियों में कुटी बना रहा है । जो रमा के द्वारा सेवित, अगम अगोचर और लीला–धारी है वही राधा का वशवर्ती और कुंज–बिहारी है । वे ब्रजवासी बड़े भाग्यशाली हैं जिनके साथ अविनाशी परमेश्वर खेल रहा है । जो रस ब्रह्मा इत्यादि के लिये दुर्लभ है वह गोकुल की गलियों में बह रहा है संत कवि सूरदास का कथन है कि अपनी इस लीला को स्वयं गोविन्द ही समझ रहे हैं ।[131] सूरदास के द्वारा प्रकट उक्त पदों से यह स्पष्ट है कि अवतारी श्री कृष्ण की लीलायें ब्रह्म-तत्व से पूर्णतः सम्पृक्त हैं । सूरदास के उक्त पदों से श्रीकृष्ण के लीलात्मक रहस्यों का स्पष्ट परिचय मिलता है ।

भक्त परमानन्द दास का कथन है कि श्रीकृष्ण के द्वारा गाय चुराना, माखन चुराना, वंशी बजाना, नृत्य करना हंसना गोपियों के साथ रास करना आदि सभी अवतार लीलायें भक्तों को आनन्द देने के लिये होती है ।[132] ब्रम्हा, रूद्र, इन्द्रादि देवता उसका निरन्तर चिन्तन करते हैं । वही सबका स्वामी पुरूषोत्तम यह लीला अवतार धारण करता है ।[133] इससे स्पष्ट है कि भक्त शिरोमणि परमानन्ददास ने भी उपास्य श्री कृष्ण के ही लीलावतार रूप का गान किया है ।

भक्त प्रवर नन्द दास का कथन है कि योगी लोग करोड़ो जन्म तक वन में जाकर अनेक प्रकार के प्रयत्नों से श्रीकृष्ण के लिये जिस हृदय को निर्मल करते हैं । वहां जाते हुये हरि संकोच करते हैं तथा दूर ही रहते हैं किन्तु वे ही ब्रज की नारियों के वस्त्र पर बड़े प्रेम से बैठे रहते हैं ।[134] उद्धव ब्रज की गोपियों से श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व का परिचय कराते हुये कहते हैं कि जिसे तुम लोग कृष्ण कहती हो उसका कोई माता–पिता नहीं है, वह तो अखिल विश्व का कर्ता, पालक और संहारक है । उसने लीला के निमित्त ही अवतार धारण किया है ।

भक्त कवि रसखान का कथन है कि जिस ब्रह्म को शेष, महेश, गणेश, दिनेश इत्यादि देवता निरन्तर गाते रहते हैं, जिसे वेद अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य और अभेद्य बतलाते हैं, नारद, शुक, व्यास आदि जिसकी महिमा का गान करते करते भी अनन्त नहीं पा सके हैं उसे अहीरों की छोकरियाँ नाच नचा रही हैं ।[135] परमानन्द दास यशोदा का भाग्य सराहते हुए कहते हैं कि जो स्वरूप ब्रह्मादि के लिए दुर्लभ है वहीं आकर यशोदा के घर में प्रकट हुआ है जिससे मिलने के लिए शिव, नारद शुक और सनकादि अनेक प्रयत्न करते हैं वहीं धूल धूसरित शरीर लिये हुए यशोदा की गोद से लिपटा रहता है ।[136] दूसरी ओर मीरा का कथन है कि तटस्थ सगुण ब्रह्म की भाँति लीलावतार श्री कृष्ण भी अनासक्त हैं । वह सहस्रों गोपियों द्वारा वरण किये जाने पर भी बाल ब्रह्मचारी हैं ।[137] संत कवि सूरदास का कथन है कि बाल कृष्ण ने अपने लीला रूप में अखिल ब्रह्माण्ड की महिमा का परित्याग कर दिया है । पृथ्वी जिनकी

तीन पैरों में भी नहीं आ सकी उसे यशोदा चलना सिखा रही हैं । जिसकी चितवन से काल भी डरता है उसे यशोदा लकुटि दिखाकर धमकाती हैं । जिसका नाम करोड़ों भ्रम को दूर करने में समर्थ है उसके भ्रम को राई–नोन से उतारती हैं ।[138] निगम और आगम जिसके अनन्त गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हैं उस प्रभु को यशोदा गोद में लेकर मंद–मंद मुस्करा रही हैं । परम कुशल और कोविद लीला–नट श्रीकृष्ण अपनी अभूतपूर्व मुस्कान से लोगों का मन हर लेते हैं । इस अद्भुत लीला को जो जानता है वही जानता है । जो धर्म, अर्थ, काम आदि चारों पदार्थों को देने वाला है वह प्रातः उठ कर अपनी माता से माखन रोटी मांगता है । यह सब उन्हीं प्रभु की लीला है जिसे निगम नेति नेति कहते हैं ।[139] जो मूर्ति जल और थल में सर्वत्र व्याप्त है उसे यशोदा चुटकी देकर अपने आँगन में नचा रही हैं । अतः यह उसकी अवतार लीला ही है ।

श्री कृष्ण के उक्त समस्त कार्य श्री कृष्ण के मन की बात है और ये उस लीलाधर की मधुर लीलाएं हैं । जो उनके मन में आता है वैसे ही वे नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं । श्री कृष्ण की ये लीलाएँ उपास्य ब्रह्म की ही विभिन्न लीलाएं हैं । इनमें जहाँ एक ओर उपास्य ब्रह्म रूप प्रतिबिम्बित होता है वहीं दूसरी ओर उनकी मनुष्योचित मधुर लीलाएं जन–गण का मन हरण करती हैं । इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में लीलावतारी श्री कृष्ण के लीलागान की परम्पराओं में उनके ब्रह्मत्व को ध्वनित करने का प्रयास किया गया है ।

अवतार प्रयोजन –

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में श्री कृष्ण के अनेक अवतार प्रयोजनों के मध्य उनके उद्धार की प्रवृत्ति प्रमुख प्रयोजन प्रतीत होती है यद्यपि कवियों ने उनके अवतार के परम्परागत प्रयोजनों की भी यथेष्ट चर्चा की है किन्तु वे उद्धारवादी प्रभाव से पृथक् नहीं हो सके । इसीलिए असुर-संहार विष्णु के अवतारों का प्रथम प्रयोजन रहा है वह असुर उद्धार के रूप में परिणत हो गया है ।[140] श्री कृष्ण अनेक जन्मों में भक्त के निमित्त आविर्भूत होता है भक्तों के लिए वे स्वयं बंधन स्वीकार करते हैं, वे मायाधीन हो जाते हैं किन्तु वे अपने भक्तों को मायातीत और मुक्त कर देते हैं । भक्त ही उनके अवतार का प्रबल प्रयोजन प्रतीत होता है । भक्त के प्रेमवश उन्हें अवतीर्ण होना पड़ता है । श्री कृष्ण ने अतिशय प्रीति के कारण ही देवकी के गर्भ में निवास किया था । प्रेम में वशीभूत होकर यशोदा के हाथ से दुग्धपान किया था । वे श्रीकृष्ण प्रेम के कारण ही अवतार लेते हैं और प्रेम के कारण ही वे वन में धेनु चराते हैं । प्रेम के कारण ही वे नन्द के आँगन में खेलते हैं । प्रभु की प्राप्ति का हेतु भी प्रेम ही है ।[141]

इस युग के अन्य कवियों ने भी श्री कृष्ण के जिन अवतार प्रयोजनों की चर्चा की है वे उपास्य श्री कृष्ण के ही प्रयोजन हैं । नन्ददास का कथन है कि श्री कृष्ण अपने अद्भुत अवतार, विश्व प्रतिपालन के अतिरिक्त अपने भक्तों को दुर्लभ मुक्ति सुलभ करने के हेतु अवतार को धारण करते हैं । वे भूमि के ऊपर भार स्वरूप नृपदल और असुरदल का संहार करते हैं तथा संतों की

रक्षा करते हैं ।[141] मीरा बाई के अनुसार श्री कृष्ण देवताओं के कार्य के लिए तो आविर्भूत होते हैं परन्तु भक्त वत्सल होने के कारण भक्त के भाग्य से उनकी सहायता के लिए प्रायः उनकी प्रत्येक आपत्ति में प्रकट होते हैं ।[142] इस प्रकार उस 'अधम उधारन सब जग तारन' श्री कृष्ण ने सभी भक्तों का कार्य किया है ।

भक्त कवि रसखान के अनुसार प्रेम और हरि में कोई अन्तर नहीं है । इसलिए प्रेम हरि स्वरूप है और हरि प्रेम स्वरूप है ।[143] यद्यपि अखिल विश्वहरि के आधीन है किन्तु हरि स्वतः प्रेम के आधीन है ।[144] सुदामा चरित के रचयिता कविवर नरोत्तम दास का कथन है कि श्री कृष्ण अनाथों के नाथ हैं और वे अपने भक्तों की दरिद्रता का हरण अवश्य करते हैं ।[145] वे अपने भक्तों का मनोरथ भी अवश्य पूर्ण करते हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्री कृष्ण के अवतार का प्रयोजन सभी सम्प्रदायों और साम्प्रदायिक कवियों के अनुसार उनका उद्धार कार्य है । इसीलिए मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में उन्हें दीनानाथ, अनाथ निवाजन, भक्त वत्सल और गरीब-निवाज की उपाधियाँ प्राप्त हुई हैं ।[146]

बुद्धावतार –

दशावतारों में जिस बुद्ध को स्थान मिला है उनका अवतारवाद की दृष्टि से भारतीय साहित्य में विचित्र स्थान है वे ऐतिहासिक महापुरुष हैं । इतिहासकार इनका जन्म 448 ई0पू0 मानते हैं । ये नवीन धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक रहे हैं । मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में इनका भी वर्णन प्राप्त होता है ।

पृथ्वी राज रासों के अनुसार 'कीकट' प्रदेश में असुरों को यज्ञ विहीन करने के लिए इनका अवतार हुआ था। कविवर सूरदास ने सूरसागर में बुद्धावतार की चर्चा करते हुए कहा है कि अदिति पुत्रों के कार्य के निमित्त हरि ने बुद्ध रूप धारण किया था। उस समय यज्ञ में पशुओं की हिंसा होती थी। उन्होंने इसके स्थान पर दया धर्म का पालन करने का उपदेश दिया था। उनके अनुसार दया धर्म ही कलि धर्म का मूल है। यह कह कर उन्होंने समाज से पाखण्डवाद को दूर कर दिया था। गोस्वामी तुलसीदास ने भी बुद्धावतार का वर्णन किया है। अपनी दोहावली, दोहा क्रमाँक 462 में वे कहते हैं कि बुद्धावतार वेद निन्दक था किन्तु वह विनय पत्रिका में कहते हैं कि बुद्ध ने पाखण्ड और दम्भ से व्याकुल संसार में यज्ञादि कर्म–काण्डों का तिरस्कार कर दिया था। वे निर्मल, ज्ञान, दान आदि सर्वगुणों से सम्पन्न हैं।

कल्कि अवतार –

यह कहा जाता है कि कलियुग में पाप के अधिक बढ़ जाने पर युगान्त में किसी ब्राह्मण के घर में एक महान् शक्तिशाली बालक अवतीर्ण होगा। जिसका नाम होगा 'विष्णु–यशा कल्कि' उसके अवतार का प्रयोजन म्लेच्छों का विनाश तथा कलियुग का अन्त बतलाया गया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि 'विष्णु-गुप्त' के रूप में कल्कि अवतार हो चुका है। पृथ्वीराज रासो सूर सागर और विनय–पत्रिका इत्यादि में कल्कि अवतार का वर्णन प्राप्त होता है। जिसका प्रयोजन कलिजनित-मल का निवारण है।

उक्त उद्धरणों और विवरण से यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन हिन्दी

साहित्य में दशावतारों का बहुशः काव्यात्मक वर्णन मिलता है । सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य और संत-साहित्य हरि के उक्त दशावतारों के वर्णन से न केवल महिमा मंडित हुए हैं वरन् आस्तिक भारतीय जनता के कण्ठहार बन गये हैं ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

सप्तम अध्याय

उपसंहार

दशावतार

निष्कर्ष –

दशवतार भारतीय संस्कृति का हृदय प्रदेश है । शब्दान्तर में यह भी कहा जा सकता है कि दशावतार भारतीय संस्कृति के प्राण–तत्त्व के सदृश हैं । जैसे प्राण–तत्व के विद्यमान होने के कारण ही जीवन्तता की कल्पना हो सकती है उसी प्रकार इस तत्व के कारण भारतीय संस्कृति आज भी सजीव रूप से पल्लवित और पुष्पित हो रही है । अनेकानेक देव–मन्दिरों में विद्यमान दशावतारों की मूर्तियाँ समाज में आज भी सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से न केवल एकता का पुरश्चरण कर रही हैं अपितु जीवन से निराश थके हुए और चिन्तित अभावग्रस्त लोगों के दुःखों को दूर कर उनके हृदयों में जिजीविषा की आशा का संचार कर रही हैं ।

दशातार–परम्परा में प्रतीयमान अवतारवाद के बीज हमें वैदिक काल से ही मिलने लगते हैं । जहाँ इन्द्र अपनी माया से अनेक रूपों में रूपान्तरित होता है । ब्राह्मण–ग्रन्थों में वर्णित मत्स्यावतार, कूर्मावतार और वराहावतार की मधुर कथायें प्रारम्भिक काल में विद्यमान अवतारवाद की भावना के प्रबल प्रमाण हैं कि अवतारवाद प्राचीनकाल से ही भारतीय जनमानस को प्रभावित करता रहा है । ऋग्वेद में वर्णित विष्णु द्वारा वामनावतार का रूप धारण कर तीन लोकों का पद–चंक्रमण अवतारवादी भावना की सुदृढ़ बुनियाद है ।

ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णित 'पुरुष सूक्त' में अजन्मा पुरुष को जन्म लेने वाला बतलाया गया है जिससे भी वैदिक काल में अवतारवाद की विद्यमान भावना का परिचय प्राप्त होता है । केनोपनिषद् में यक्षावतार की कथा से अवतारवादी प्रयोजन प्रस्फुटित हो जाता है जिससे इसे किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए अवतार की आवश्यकता प्रतीत होती है । उपनिषदों में दिव्य देह के विकास में अवतारशील और उत्क्रमणशील उभयविध प्रवृत्तियों में अवतारवाद के बीज खोजे जा सकते हैं । इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामावतार की कथा को 'निगमागम—सम्मत' कहा है ।

महाकाव्यकाल में अवतारवाद के बीज पल्लवित और प्रस्फुटित हुए हैं । रामायण और महाभारत दोनो ही महाकाव्यों में देवासुर-संग्राम उनकी प्रमुख प्रतिपाद्य विषय-वस्तु हैं । इसमें विष्णु का राम और कृष्ण के रूप में क्रमशः अवतार एवं उनकी सहायता के लिए विविध अंशावतार अवतारवाद का चरमोत्कर्ष है ।

प्रयोजन की दृष्टि से धर्म की स्थापना के लिए, अधर्म का उन्मूलन करने के लिए, सज्जनों के परित्राण करने के लिए और सर्वोपरि दुष्टों का संहार करने के लिए अवतार की आवश्यकता प्रतीत हुई थी । राम के द्वारा रावण का वध और श्रीकृष्ण के द्वारा कंस का वध इसी का प्रतिफल है । महाकाव्यकाल के बाद पुराणों में भी अवतारवाद का अतिविकसित रूप दिखाई देता है । भागवत पुराण और विष्णु-पुराण में अवतारवाद के सर्वांगीण विवेचन से तत्कालीन समाज में अवतारवाद के लोकव्यापी स्वरूप का परिचय मिलने

लगता है ।

मध्यकाल में अवतार-भावना के प्रेरणा-स्रोत रामायण, महाभारत और पुराण आदि ग्रन्थ रहे हैं । दशावतारों में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि को ही प्रमुखता दी गई है । यद्यपि अवतार संख्या में विद्वानों में और कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में मतमतान्तर भी प्राप्त होते हैं । किन्तु उक्त दशावतारों की समाज में प्रतिबद्धता अधिक दिखाई देती है । क्षेमेन्द्र विरचित 'दशावतार-चरितम्' और रस-सिद्ध सुप्रसिद्ध कविवर जयदेव विरचित 'गीत-गोविन्द' की परम्परा से यही प्रतीत होता है कि समाज में उपर्युक्त दशावतारों की ही मान्यता अत्यधिक रही है । गुप्त काल के निकटवर्ती काल में देवगण में निर्मित दशावतार मन्दिर से उक्त बात की पुष्टि भी होती है । इसी प्रकार बौद्ध और जैन साहित्य में भी अवतारवाद की प्रवृत्ति दिखाई देती है । जहाँ पर बुद्ध के विविध शरीरों में अवतरित होने की कथा और चर्चा विशेष रूप से उल्लेखनीय है । जैन साहित्य में भी तीर्थंकरों के अवतार की बात कही गई है ।

पूर्व मध्यकालीन भारत में नाथ-सम्प्रदाय में शिव शक्ति का विशेष महत्व रहा है । नव नाथों की परम्परा में गोरखनाथ को शिव का अवतार माने जाने की परम्परा में भी पूर्वमध्य काल में विद्यमान अवतारवाद की भावना की व्यापकता इस परम्परा के प्रबल प्रमाण हैं ।

अवतारवाद की उक्त व्यापक परम्परा का अजस्र स्रोत मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भी प्रवहमान प्रतीत होता है । हिन्दी महाकाव्य 'पृथ्वीराज

रासो' के दशम अध्याय में दशावतारों के विस्तृत वर्णन से दशावतारों की व्यापकता के प्रमाण मिलते हैं ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के निर्गुण संतों के पदों में भी दशावतारों का कहीं प्रासंगिक और कहीं विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है । यद्यपि ये निर्गुण संत अवतारवाद के विरोधी रहे हैं । किन्तु इनमें से कुछ ऐसे भी संत है । जिन्होंने सगुणोंपासक भक्तों की भाँति दशावतारों का वर्णन और नामोल्लेख किया है । निर्गुणधारा के प्रमुख संत कवि कबीरदास दशावतारों की निन्दापरक चर्चा करते हैं और अवतारवाद का खंडन करते हैं । वे अवतारवाद के पक्षधर नहीं है और इसे मायावाद का प्रपंच कहते हैं । वे दशावतारों की संपूर्ण सृष्टि को माया की रचना और मिथ्या मानते हैं । किन्तु इन्होंने जिन दशावतारों की चर्चा और उनका खण्डन अपने काव्य में किया है उससे विदित होता है कि तत्कालीन समाज में अवतारवाद की भावना अपने पूर्ण यौवन में थी । कबीरदास की परम्परा में होने वाले संत मलूकदास संत कवि रज्जब और संत कवि सुन्दरदास दशावतारों के अस्तित्व का खण्डन करते हैं । इससे भी दशावतारों की समाज में रूढ़िबद्ध परम्परा का ज्ञान होता है ।

उक्त निर्गुण संत कवियों की दशावतार सम्बन्धी आलोचना इस बात का प्रमाण है कि उनके युग में समाज में दशावतारों की उपासना का व्यापक प्रचार और प्रसार था ।

मध्यकाल में कुछ ऐसे भी संत हुये हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में अवतारवाद का अस्तित्व स्वीकार किया है । 'गुरू-ग्रन्थ-साहब' में गुरू अर्जुन

देव जी ने दशावतारों में से आठ अवतारों का उल्लेख किया है जिससे भी इस युग में अवतारवाद की प्रतिष्ठा के संकेत मिलते हैं । इनके समकालीन लक्ष्मण पाठक और कविवर मयूर-भट्ट दशावतारों के समर्थन में कतिपय पदों से दशावतार के प्रभाव का वर्णन किया है । धर्म–पुराण के वर्णन से प्रतीत होता है कि हिन्दी से इतर क्षेत्रों में भी दशावतारों का पर्याप्त प्रभाव था ।

मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति और उनके समाकालीन भक्त कवि चण्डीदास आदि दशावतारों का श्रद्धा-पूर्वक वर्णन करते हैं और उनका नामोल्लेख करते हैं ।

मध्यकालीन हिन्दी के संतकवि सूरदास दशावतारों का यथेष्ट वर्णन करते हैं । इससे विदित होता है कि कविवर सूरदास के युग में दशावतार-परम्परा फल फूल रही थी । सूर के ग्रन्थों में न केवल अवतारवादी विचार मिलते है प्रत्युत दशावतार-संबन्धी वर्णन सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । राम भक्ति–शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास अपने प्रसिद्ध काव्य 'विनय–पत्रिका' में दशावतारों का सविस्तार वर्णन करते हैं । उन्होंने क्रमानुसार दशावतारों का वर्णन किया है । इसी प्रकार तुलसीदास के अनन्तर कविवर केशव-दास ने भी अपनी राम–चन्द्रिका में श्री राम की स्तुति करते हुये दशावतारों का वर्णन करते हैं । इसके अतिरिक्त तत्कालीन अन्य कवियों ने भी दशावतार सम्बन्धी अपनी धारणायें व्यक्त की हैं ।

कविवर चन्द्र बरदायी तथा धर्म–ठाकुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पंडित द्वारा वर्णित दशावतारों से यह विदित होता है कि दशावतारों का

मध्यकाल में भी लोक–व्यापी प्रचार और प्रसार हो चुका था और दशावतार सम्बन्धी विचार की भौगोलिक सीमा विस्तृत हो गयी थी ।

हिन्दी में दशावतारों की परम्परा रीति-कालीन युग तक मिलती है । हिन्दी की दशावतार परम्परा में निर्गुण और सगुण भक्त कवियों तथा रीति कालीन कवियों का विशिष्ट योगदान रहा है । पक्ष या विपक्ष में दशावतारों की चर्चा, अवतारवाद की आलोचना तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित अवतारवादी स्वांगों से दशावतार परम्परा की लोक-प्रियता प्रतीत होती है । दशावतार–परम्परा का उत्कर्ष आठवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक अविच्छिन्न- दिखायी देता है । हिन्दी साहित्याकाश में चन्द्रवरदायी से लेकर मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के संत कवियों के युग में दशावतारों का उत्कर्ष काल रहा है । किन्तु धीरे–धीरे रामावतार और कृष्णावतार के अधिक लोक–प्रिय हो जाने के कारण दशावतारवादी भावना का ह्रास भी होने लगा था ।

दशावतार–परम्परा से प्रेरित अवतारवाद की यह भावना परवर्तीकाल में अन्य क्षेत्रों में भी विकसित हुई है, तदनुसार महापुरूषों, गुरूओं और संतों को भी अवतार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी थी । मध्यकालीन हिन्दी संत साहित्य में उत्क्रमण-वाद की प्रवृत्ति का उदय दिखायी देता है जिसके अनुसार मनुष्य भी उत्कृष्ट कर्म करते–करते अपने ऊर्ध्वगामी गुणों और विचारों के कारण ईश्वर के समान या उसका पर्याय प्रतीत होने लगा था । अवतारवाद की परम्परा में अवतारवाद का विकास महापुरूषों में निहित कतिपय ऊर्ध्वगामी, उत्कर्षोन्मुख और अति–मानवीय श्रेष्ठ प्रवृत्तियां रहीं हैं । इसी से समाज में

मनुष्य की देवत्व के रूप में प्रतिष्ठा हुई और देवताओं का मानवीयकरण होने से उनका मानव रूप जगत् में प्रतिष्ठित हुआ है । निर्गुणोपासक संतों में भी ऐसे विचार प्राप्त होते हैं जो अवतारवादी परम्परा के अनुकूल हैं । जहां एक ओर सगुणवादी संत महापुरूषों में ऊपर से अवतरित ईश्वर या भक्ति की कल्पना करते हैं तो वहीं दूसरी ओर निर्गुण निराकारवादी संत भी अपने उत्क्रमणशील साधक् योगी एवं संत-शिरोमणि महापुरूषों में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करते हैं ।

मध्य युग में साधना की सफलता ही मनुष्य की श्रेष्ठता एवं उसके चमोत्कर्ष का कारण रही है । साधना के फलस्वरूप जो पद मनुष्य ने प्राप्त किया वह देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते थे । इसीलिये इस युग में संत अपने संत-भाव में ब्रह्म और ईश्वर से किसी प्रकार कम नहीं रहा है । कबीरदास ऐसे संतों को राम से अभिन्न मानते हैं तथा सगुण प्रतीक की अपेक्षा संतों को ही प्रत्यक्ष देवता स्वीकार करते हैं । ऐसे संतों को अवतार की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । गुरू और गोविन्द में कोई भेद नहीं माना जाता है । संत और भगवान् में अभेद सम्बन्ध है । निर्गुण संतकवियों के अनुसार ईश्वर ही एक आदर्श संत के रूप में प्रतिभासित होता है । ऐसे संत लोक–परलोक में दुर्लभ हैं । इसलिये संत देवताओं और अवतारों से श्रेष्ठतर हैं । इसीलिये गुरूवर नानक कबीरदास और दादूदयाल में अवतारत्व की भावना समाज में निरन्तर प्रतिष्ठित हुई थी । जो कार्य और प्रयोजन अवतारवाद में बतलाये गये हैं वही कार्य और प्रयोजन इन संतों के भी प्रतीत होते हैं । इस प्रकार संत कवियों ने

संतों को ही ईश्वर का अवतार माना है, जिससे भी समाज में विद्यमान अवतार भावना के प्रबल–प्रमाण मिलते हैं ।

दशावतार–परम्परा के तारतम्य में यह भी उल्लेखनीय है कि इससे प्रभावित होकर उक्त साहित्य में सामूहिक रूप से अवतरित होने की प्रवृत्ति भी विकसित हुई । रामावतार और कृष्णावतार की कथा में उनकी सहायता के लिये अन्य देवताओं के सामूहिक अवतरण की बात दृष्टिपथ में अवतरित होती है । गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'राम–चरित–मानस' में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि विष्णु के अवतारी राम के साथ तत्कालीन यक्ष, नाग, इन्द्र, सूर्य, वायु, शिव और ब्रह्मा इत्यादि देव विविध शरीरों को धारण कर सामूहिक रूप से राम और कृष्ण की सहायता के लिये अवतरित होते हैं ।

अवतारवादी भावना से प्रेरित होकर हिन्दी के महाकवि चन्द्रबरदाई अपने महाकाव्य पृथ्वीराज रासों में पृथ्वीराज को अजित नाम के किसी दानव पुरूष का अवतार मानते हैं । पृथ्वीराज के सहायक भी पूर्ववर्ती वीर पुरूषों के अवतारी थे । उनकी पत्नियाँ अप्सराओं का अवतरण थीं । सामूहिक अवतारवादी यह परम्परा इस युग में प्रचलित अवतारवाद को प्रमाणित करती है । इसी परम्परा में लिखे गये 'परमाल रासो' महाकाव्य में पृथ्वीराज को दुर्योधन का अवतार बतलाया गया है और उनकी माता देवल को दुर्गा का अवतार कहा गया है ।

गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरित–मानस और संत कवि सूरदास के सूरसागर में सामूहिक अवतार की प्रवृत्ति दिखायी देती है जिसके

कारण उक्त महाकाव्यों के अनेक पात्र तद् देवताओं के अवतार माने जाते हैं । ब्रज के सभी गोप देवरूप हैं और गोपियाँ श्रुतियों का अवतार हैं । 'धरा' धेनु का अवतार है इसी प्रकार कविवर नन्ददास भी सामूहिक अवतार की चर्चा करते हैं ।

रामायण, महाभारत और पुराणों में वर्णित दशावतार और सामूहिक अवतारवाद का प्रभाव मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों पृथ्वी-राज रासो, परमाल रासो, रामचरित–मानस, सूरदास–प्रणीत सूरसागर और सूर–सारावली, केशव की राम-चन्द्रिका आदि ग्रन्थों में दिखायी देता है । इन्हीं ग्रन्थों में दशावतार–परम्परा के प्रचुर वर्णन प्राप्त होते हैं । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में न केवल अवतारवाद पर प्रचुर सामग्री मिल जाती है अपितु दशावतार-परम्परा का वर्णन भी भरपूर मिलता है । दशावतारों में मत्स्यावतार, वराहावतार, कूर्मावतार, नरसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामवतार के यत्र–तत्र स्फुटित वर्णन होते हैं । किन्तु रामभक्ति–शाखा साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त काव्य–जातीय ग्रन्थों में और कृष्ण–भक्ति–शाखा साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त साहित्य में रामावतार और कृष्णावतार के सविस्तर वर्णन प्राप्त होते हैं किन्तु बुद्ध और कल्कि के अवतारों का यथेष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता किन्तु यत्र तत्र द्रुततर-गति से इनके वर्णन हैं । यद्यपि बौद्ध-साहित्य में बुद्धावतार का भरपूर वर्णन किया गया है ।

इससे यह विदित होता है कि अवतारवाद भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है । सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति अपनी अन्य विशेषताओं के साथ

अवतारवाद से चक्रारपंक्ति की तरह घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध प्रतीत होती है । इसीलिये मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवतारवाद के साथ–साथ दशावतार–परम्परा पूर्ववर्ती संस्कृत-ग्रन्थों से प्रभावित होकर प्रवहमान है ।

अवतारवाद की इस प्रवृत्ति के कारण निराकारवादी और निर्गुण संतों में भी बाद में अवतारत्व की प्रतिष्ठा हो गई थी । जिसके फलस्वरूप गुरूदेव नानक, संत कबीर और दादू दयाल आदि को उनके अनुयायियों ने उन्हें ईश्वर का अवतार ही मान लिया था । ऐसे संत ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अवतार माने जाने लगे थे । इससे यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समाज और साहित्य में दशावतार परम्परा से प्रेरित होकर अवतारवाद अग–जग में व्याप्त हो गया था । अवतारवाद के विविधि रूप हैं और वह अंश, कला, विभूति, आवेश पूर्ण, व्यूह लीलारूप युगल रूप, रसरूप और अर्चारूप आदि से मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वर्णित है । इससे अवतारवाद की व्यापकता और उसके विविध रूप मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में दर्शनीय है ।

अवतारवाद का मूल्यांकन :–

आधुनिक ज्ञान के आलोक में अवतारवाद का मूल्यांकन किया जा सकता है । सृष्टि एवं सभ्यता के प्रसार का अध्ययन करते समय अध्ययन की प्रक्रिया को विकासवाद से जोड़ा जा सकता है । विकास-वाद की मूल प्रक्रिया उत्पत्ति और प्रसार की क्रियाओं पर निर्भर करती है । यदि तात्विक दृष्टि से उत्पत्ति और प्रसार के अतिरिक्त अनुवांशिक प्रकृति को देखा जाये तो यह स्पष्ट विदित होगा कि विकासवाद का सिद्धान्त अवतारवाद का सिद्धान्त है । सृष्टि

क्रम और पुरानी सभ्यता के जीर्ण शरीर से ही नई सृष्टि और नई सभ्यता का प्रादुर्भाव होता रहा है। सृष्टि एवं सभ्यता के विकास से तात्पर्य है– आदि काल से लेकर अब तक प्रत्येक युग में नई भौतिक शक्तियों तथा प्रतिभा शक्तियों का अवतरण। अक्षर या आकश तत्व से वायु का, वायु से अग्नि का, अग्नि से जल का और जल से मिट्टी के भौतिक पदार्थो का अवतरण प्रायः सांख्य मत में भी देखने को मिलता है। आधुनिक भूगर्भ-शास्त्री सूर्य से अग्नि, अग्नि खण्ड से जल और पृथ्वी की अवतारणा स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इनके आविर्भाव के साथ–साथ अनेक भूगर्भादि धातु एवं पदार्थ शक्ति स्रोतों के रूप में आविर्भूत होते रहे हैं और अब तक निरन्तर होते जा रहे हैं, सृष्टि एवं सभ्यता के विकासादि अध्ययन के क्रम में 'विकास' की अपेक्षा 'अवतार' अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। प्राकृतिक विज्ञानों के विकास और अवतारवादी विकासवाद में प्रमुख साम्य यह प्रतीत होता है कि दोनों सूर्य से पृथ्वी ग्रह का अवतरण और पृथ्वी पर जल जीवों का आविर्भाव मानते हैं।

थियोसॉफिस्ट विदुषी एनीबेसेन्ट अपने 'अवतारवाद नाम पुस्तक में अवतारवाद की दृष्टि से युगों का सम्बन्ध स्थापित किया है। जिसका इस प्रसंग में उल्लेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है उन्होंने सृष्टि युग का निम्नांकित चार युगों में विभाजन किया है। 1– मत्स्य युग 2–कूर्मयुग 3– वराह युग 4–नृसिंह युग। इसी प्रकार उन्होंने वामन आदि मानव अवतारों को भी विभिन्न विकास युगों के परिचायक रूपों में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। तथा प्रत्येक अवतार को एक युग विशेष के द्योतक रूप में माना है।

अवतारवाद में प्रतीकों का विकास :—

मध्यकालीन अवतारवाद पर अनेक तथ्यों का प्रभाव किसी न किसी रूप में लक्षित होता है । भारत वर्ष अनेक जातियों की संस्कृति और सभ्यता का संगम रहा है । अनेक सांस्कृतिक उपादानों के साथ–साथ देवमूर्ति के लिये प्रचलित कतिपय प्रतीक निश्चय ही परस्पर गृहीत होते रहे हैं । सम्मिश्रण की यह क्रिया वैदिक वाङ्मय से ही परिलक्षित होने लगती है । इन अवतार प्रतीकों को निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है ।

(1) जन्तु-प्रतीक, (2) पशुमानव-प्रतीक (3) दैवी— कृत मानव प्रतीक ।

(1) जन्तु प्रतीक के अन्तर्गत क्रमशः तीन अवतार माने जा सकते है । (1) मत्स्य (2) कूर्म (3) वराह ।

(2) पशु-मानव प्रतीक – इसके अन्तर्गत नरसिंहावतार को रखा जा सकता है ।

(3) दैवी-कृत-मानव प्रतीक के अन्तर्गत राम और कृष्ण के अवतार रखे जा सकते हैं । इनमें उत्तरोत्तर विकास की गति देखी जा सकती है प्रथम अवस्था से द्वितीय अवस्था, द्वितीय अवस्था से तृतीय अवस्था के विकास का क्रम समझा जा सकता है ।

अवतारवाद प्रतीक, प्रतिमा और बिम्ब का आदि और अन्त दोनों है । ब्रह्म-तत्व की अभिव्यक्ति से इन तीनों का आरम्भ होता है और ब्रह्म तक की ही अभिव्यक्ति में, चरम सीमा पर पहुँच कर इनकी इति भी हो जाती है ।

'एकोऽहम्, द्वितीयोनास्ति' यदि यह वैदिक वाक्य, प्रतीक प्रतिमा और बिम्ब का आदि है तो 'सर्वमृखल्विदं ब्रह्म' जैसे वैदिक वाक्य इनका अंत भी है । क्योंकि प्रतीक, प्रतिमा और बिम्ब इन तीनों की एक अनिवार्य विशेषता है अनन्त या असंख्य में से 'एक' की ओर इंगित करना । इसलिये जहां भी 'एक' का सर्व में अन्तर भाव हो जाता है, वहीं पर प्रतीक प्रतिमा और बिम्ब इन तीनों का विसर्जन हो जाता है । अतएव तीनों में एकत्व को सुरक्षित रखकर ही अपने अस्तित्व को बनाये रखने की क्षमता प्राप्त हो सकती है । इस एकत्व की सुरक्षा निरन्तर आविर्भाव, अभिव्यक्ति और अविष्कार द्वारा सम्भव है । ये तीनों क्रियायें अवतारवादी क्रियायें हैं ।, क्योंकि ये तीनों आविर्भूत वस्तु को नई आवश्यकता और प्रयोजन की पृष्ठ भूमि में प्रकट किया करती हैं । ब्रह्म या भौतिक वस्तु या दोनों का अवतरण प्रायः अवतारवाद के पृष्ठों को ही परिपक्व करता है । हम प्रथम को आध्यात्मिक अवतारवाद और दूसरे को भौतिक अवतारवाद की संज्ञा दे सकते हैं । इन प्रतीकों को दशावतारों के मध्य घटित कर समझा जा सकता है ।

दशावतारों में विकासवाद :-

अवतारवाद में प्रतीकों से पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने सृष्टि-क्रम में मानव के विकास के सम्बन्ध में जिस मत का प्रतिपादन किया है उसका स्थूल-रूप हमारे प्राचीन साहित्य में वर्णित अवतार-क्रम से बहुत कुछ मिलता जुलता है । पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मत से आज का 'नर' 'प्रागैतिहासिक-युग' के 'वा-नर' का विकास है । इसी प्रकार 'वानर' भी इसी अपेक्षा-कृत कम चेतन

प्राणी का विकास है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चौरासी लाख पशु–पक्षी सरीसृप योनियाँ प्राणी के क्रमिक विकास की श्रृंखलायें हैं । विकास की यह वैज्ञानिक कल्पना भारतीय ज्ञान क्षेत्र में नवीन नहीं है । भारतीय साहित्य का अवतार–निरूपण भी इसी विकास क्रिया का आलंकारिक वर्णन है । जिसके अन्तर्गत जन्तु प्रतीक, पशु-मानव प्रतीक, मानव-प्रतीक, बल-प्रतीक, पुरूषोत्तम प्रतीक, लीला एवं ललित-कला प्रतीक, आदि विविध प्रतीकों की परिकल्पना की जा सकती है ।

दशावतार- परम्परा के अवतार क्रम में प्रथम मत्स्यावतार है । इसका तात्पर्य यह है कि निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने पर सर्वप्रथम जिन प्राणियों की सृष्टि होती है, उनमें मत्स्य एक स्थूल मान दण्ड है । मत्स्य से भी छोटी असंख्य जीव–जातियाँ है, किन्तु मानव के विकास में प्राणियों की मुख्य आठ दशाओं में मत्स्यावतार प्रतिनिधि रूप में प्रथम है । जलीय सृष्टि में क्रमिक परिवर्तन के फलस्वरूप ज्यों–ज्यों जल–भाग सूखता गया और स्थल भाग ऊपर आया त्यों–त्यों मत्स्य का विकास कच्छप के रूप में हुआ । क्योंकि अर्धजल और अर्ध-स्थल प्रदेश में मत्स्य की अपेक्षा कच्छप अधिक सफलता से रह सकता है । अतः कच्छपावतार विकास की द्वितीय दशा है । स्थल भाग का अधिक विस्तार होने पर जब पृथ्वी पर जंगलों का बाहुल्य हुआ तब अन्य पशुओं के प्रतिनिधि स्वरूप वराह का विकास हुआ । जंगल का पुष्टकाय वराह मानव के क्रमिक विकास में उस दशा का प्रतिनिधि है, जब केवल शारीरिक बल ही सब

कुछ था । यह वरहावतार तृतीय मानव दशा है । इसके बाद क्रमशः 'पशु' का अर्धमानव' में विकास हुआ । शारीरिक अवयवों में केवल बल के अलावा चपलता कार्य क्षमता आदि गुणों का विकास हुआ । 'नरसिंहावतार में हम यही बात पाते हैं । अधोमुख और चतुष्पाद पशु अब द्विपाद होकर ऊर्ध्वमुख हो गया । उसके कार्य अब अधिक भयंकर थे । नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु के वध में दुष्ट दमन है, अतः सद् असद् विवेक का उदय भी अर्ध–मानव नरसिंह में दिखायी देता है अतः नरसिंहावतार चतुर्थमानव- दशा है ।

किन्तु अभी भी 'मानव' में चतुरता तथा दूरदर्शिता का अभाव था । इसकी पूर्ति के लिये 'नरसिंह' 'वामन' बना, चतुरता चालाकी और दूरदर्शिता के बल पर लघुकाय और दुर्बल मानव इस प्रकार विकराल और आत्माभिमानी दानव को नीचा दिखा सकता है इसका सुन्दर उदाहरण हमें बलि–वामन की कथा में दिखायी देता है । मानव विकास की पंचम दशा वामनावतार में बुद्धि–बल का महत्व दिखायी देता है । किन्तु केवल बुद्धि–बल से ही काम नहीं चलता, इसके साथ–साथ पर्याप्त शारीरिक बल भी होना चाहिये । अतः परशुरामावतार में मानव विकास की षष्ठ दशा का प्रादुर्भाव हुआ । बुद्धि और शारीरिक बल दोनों के समन्वय से समस्त पृथ्वी पर किस प्रकार विजय पायी जा सकती है इसका दिग्दर्शन परशुरामावतार में दिखायी देता है । परशुराम में जिन उदात्त मानव गुणों की कमी थी वे गुण 'राम मानव' में पाये जाते हैं । मानव विकास की सप्तम–दशा 'रामावतार' में मानव, बुद्धि और शारीरिक बल के साथ–साथ कर्तव्य परायणता, त्याग–भाव, सदाचरण,

अनुकम्पा और मर्यादा–पालन आदि मानवोचित उदात्त गुणों का विकास अवलोकनीय है । इसी से राम को मर्यादा पुरूषोत्तम कहा जाता है । फिर भी राम का मानवत्व कुछ अंशों में अपूर्ण प्रतीत होता है । उनमें ललित–कला रूचि तथा माधुर्य का अभाव है । मानव विकास की अष्टम दशा कृष्णावतार में ये गुण पर्याप्त रूप में विद्यमान है । मुरलीधर श्री कृष्ण का ललित–कला प्रेम और पार्थसारथी श्री कृष्ण की राजनीतिज्ञता सर्वविदित है । योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता में जिस उच्च जीवन दर्शन का उपदेश दिया है उसका महत्व विश्व विश्रुत है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण मानवता के विकास की चर्मावस्था के प्रतीक है । इसी से उन्हें ईश्वर का पूर्णावतार कहा जाता है । अंशावतार नहीं । उनमें मानव–धर्म पूर्णता के साथ विद्यमान है । नवम बुद्धावतार में अंहिसा, अस्तेय और अपरिग्रह इत्यादि गुणों का विकास हुआ है जो अतिशय शांत और तथागत के रूप में प्रसिद्ध हैं । दशम अवतार कल्कि के भविष्य में आविर्भूत होने की प्रतीक्षा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि महान् वैज्ञानिक डारविन के विकासवाद की कथा हमारे दशावतारों की कथा में झलकती है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में व्याप्त दशावतार–परम्परा, अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित और अपने अस्तित्व के लिये आकुल–व्याकुल मानव के जीवन जीने की प्रबल आस्था को संचार करने वाली है । उसमें अवतारवाद शक्ति, सक्रियता और संतुलन का जीवन दर्शन है । वास्तविक रूप से यह कहा जा सकता है कि अवतार वाद में अतिरिक्त शक्ति

का आवाहन है । जिसकी आवश्यकता महान् विघ्न पर विजय पाने के लिये होती है । विष्णु से लेकर उनके सभी अवतारों के अवतार कार्यो में प्रायः आसुरी व्यापारों का दमन कर अस्तित्व वादी समतुलन की प्रवृत्ति रही है। अनेक ऐतिहासिक संघर्ष और संस्कृति विनाश के बाद भी मानव समुदाय को सक्रिय और यथेष्ट रूप में जीवित रखने वाला भारतीय अवतारवाद आज भी जीवन्त प्रतीत होता है जिसके अन्तर्गत दशावतारों का प्रभाव विशेष रूप से रामावतार, कृष्णावतार और बुद्धावतार का प्रभूत प्रभाव भारतीय जनमानस में आज भी तरंगित हो रहा है । आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये और राष्ट्र राज्य की रक्षा के लिये आज भी किसी विशिष्ट अवतार की अपेक्षा प्रतीत होती है । इसलिये आज भी अवतारवाद की प्रासंगिकता बनी हुई है ।

मध्यकालीन साहित्य में अवतारवादी उदात्तता भारतीय रमणीय कला की विशिष्ट देन है । मनुष्य की रमणीय कल्पना ऊर्ध्वोन्मुख होकर जिस पर-ब्रह्म तक जा सकती है वहां तक अवतारवादी उदात्तता की पहुँच है । आविर्भूत होने वाला ब्रह्म निष्क्रिय तटस्थ केवल द्रष्टा ब्रम्ह नहीं है अपितु वह अखिल सृष्टि का सृष्टा, संचालक, पोषक और विनाशक है । वह सृष्टि में कर्ता, भोक्ता और भोग्य तीनों में विद्यमान है । वह लीला और संतुलन के लिये विभिन्न प्राणियों और जीवों में अवतार ग्रहण करता है । फलस्वरूप उक्त दशावतार भारतीय साहित्य और कला में उपस्थापित अवतारवादी रमणीय कलात्मकता के और उदात्त भावना के परिचायक है । इसलिये सज्जनों के परित्रांण के लिये, दुष्टों के संहार के लिये तथा सर्वोपरि धर्म की संस्थापना के

लिये और आसुरी शक्तियों के विनाश तथा राष्ट्र राज्य की सुरक्षा के लिये आज भी किसी विशिष्ट अवतार की महती आवश्यकता प्रतीत होती है । अशान्ति की यह आंधी बिना किसी विशिष्ट अवतार के शांत होती प्रतीत नहीं होती । इसलिये दशावतारों की भांति आज भी किसी विशिष्ट अवतार की प्रासंगिकता प्रतीत होती है ।

पाद टिप्पणी

प्रथम अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– अवेतृस्त्रोर्घञ् पा0– 3.3.120 अवतार : कूपादेः
–अवस्तारोजवनिका । अष्टाध्यायी 3.3.120

2– संस्कृत साहित्य का इतिहास । बल्देव उपाध्याय
संवत 2012 पृष्ठ 134 ।

3– हिन्दी विश्वकोष खण्ड दो पृष्ठ 179 ।

4– विशोऽवतारीर्दासीः । ऋग्वेद संहिता 6.25.2 ।

5– ऋग्वेद 6,25,2 सायण भाष्य 'यज्ञादि कर्मकृते यजमानायावतारीः विनाशय ।'

6– अवतर नदी व, शुक्ल–यजुर्वेद संहिता, 17.6

7– इन्द्रो मायामिः पुरूरूप ईयते ।
इन्द्रो ह्यस्य हरयः शता दश ।। ऋग्वेद संहिता 6.47.18.

8– वेदान्तसार सदानन्द पृष्ठ सं0 10

9– सांख्यकारिका–ईश्वर कृष्ण भूमिका, पृ0 4

10– जगृहे पौरूषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
सम्भूतं शोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया
श्रीमद्–भागवत 1.3.1 ।

11– एतन्नावतारणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्–नरादयः ।।
वाल्मीकिरामायण 16.3

12– ऋग्वेद 1.22.16

13— वही— 1.12.28.1.28.19

14— ऋग्वेद— 7.40.5;10.1.2.

15— ऋग्वेद— 7.10.4

16— ऋग्वेद— 7.10.6

17— अथर्ववेद 12.1.10.

18— इन्द्रोमायाभिः पुरूरूप ईयते ।। ऋग्वेद 6.48.18.

19— अजायमानो बहुधा विजायते— शुक्ल यजुर्वेद, पृ0 35.

20— महानारायण उपनिषद् 2.1

21— केनोपनिषद् 3.2.

22— श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।

लता ओट तब सखिन लखाये । श्यामल गौर किशोर सुखाये ।।

'रामचरित मानस' 1.228.1 एवं 231.21 ।

मनि जाहिं राचेउ मिलिहि सोबरू सहज सुन्दर सांवरों ।

रामचरितमानस 1.235.5 ।

23— भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी ।

हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी ।।

रामचरितमानस 1.191.1 ।

24— ऐतरेयोपनिषद् 3.1.4

25— ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति वेदान्तसार, पृ0 25 संस्करण,

26— सोई जानै जेहि देहु जनाई । जानत तुमहिं तुमहिं हो हि जाई ।

रामचरित-मानस 2.126.2.

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीपशिखा सोइ परम प्रचंडा

रामचरित-मानस 7.117.1

27— वृहदारण्यकोपनिषद्— 4.4.20

28— कठोपनिषद्— 1.2.23

29— छान्दोग्योपनिषद्— 6.3.2

30— रामचरितमानस, बालकाण्ड श्लोक सं0—7

31— कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञस्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ।।

वाल्मीकि रामायण 1.1.2

32— विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः

वही, 1.1.18

33— तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः ।

वा0रा0 1.76.12

34— वही, 3.12.33.

35— वही, 1.1.1—100

36— मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ।

वा0रा0 1.17.1—23

37— अक्षय्यं मधुहंतारम् जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।।

वा0रा0 1.76.17.

38— सूर्यस्यापि भवेत सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।

दैवतम् देवतानाम् च भूतानाम् भूतसत्तमः ।।

वा0रा0 2.44.15.

39– सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।

पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।।

वा0रा0 5.51.39.

40– वही– 5.51.44

वा0रा0 युद्ध– काण्ड, 111.11–13.

वाल्मीकि रामायण– 6.30,–20–33.

वही, 6.120,14.

वाल्मीकि रामायण 1.18.19–24.

रामचरित मानस, बालकाण्ड श्लोक संख्या–7.

ऋग्वेद 1.22.19.

श्रीमद्भगवद्गीता, दशम् अध्याय

वही, दशम अध्याय

41– महाभारत– 2.26.14.

42– वही, 3.12.20.

43– वही, 3.12.18.

44– वही, 12.347.17.79

45– महाभारत– 14.54.16.

46– महाभारत– 14.55.16.

47– बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।

गीता 4–3.

48— पुराण विमर्श— बल्देव उपाध्याय, संस्करण 1987, पा0 10 174–175.

49— भागवत पुराण, 1.2.23

50— वही, 1.2.3.

51— वही, 1.2.33.

52— वही, 4.1.2.34

53— भागवत पुराण तत्वदीप निबन्ध, पृ0 27,

54— वही, 1.1.3.

55— वही, 1.3.5.

56— विष्णु पुराण, 1.4.17 एवं 4.8.67.

57— विष्णु पुराण, 1.2.23 एवं 5.1.50.

58— वही, 5.1.50.

59— वही, 5.1.22.

60— वही, 1.8.17–33 एवं 1.9.34.35

61— विष्णु पुराण, 1.9.142

62— वही, 1.9.143–44.

63— वही, 1.9.143–44 एवं 9.1.45

64— वही, 5.2.4 एवं 5.7.38–40

65— शंकर दिग्विजय सर्ग 15 श्लोक–76 ।

66— गीता शांकरभाष्य, पृ0 14 ।

67— हिस्ट्री ऑफ तिरुपति, पृ0 82 ।

68— रामचरित मानस, बालकाण्ड–श्लोक सं0–7, गीता प्रेस संस्करण सम्वत् 2045, पृ0–2 ।

द्वितीय अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– गोरखबानी, पृ0 228 ।

2– कौल ज्ञान निर्णस, पृ0 78

3– हिन्दी साहित्य, रामचन्द्र शुक्ल पृ0 24 ।

4– नाथ सम्प्रदाय, पृ0 61 ।

5– पाटल संत साहित्य विशेषांक, वर्ष 3, 1955, अंक 5 पृ0 91 ।

6– सिद्ध साहित्य, पृ0 30–33 ।

7– नाथ सम्प्रदाय, पृ0 61 ।

8– मत्स्येन्द्र पद शतकम्, पृ0 11 ।

9– वही–श्लोक संख्या 1 एवं 12 ।

10– वही– श्लोक संख्या 2 ।

11– वही–श्लोक संख्या 3 ।

12– वही–श्लोक संख्या 4 ।

13– वही–श्लोक संख्या 6–8 ।

14– वही–श्लोक संख्या 19 ।

15– वही–श्लोक संख्या 61 ।

16– नाथ सम्प्रदाय, पृ0 36–38 ।

17– वही, पृ0 48 ।

18– वही, पृ0 25 ।

19– हिन्दुत्व, पृ0 707 ।

20— नाथ सम्प्रदाय, पृ0 159—160 ।

21— अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत ।

योगमार्ग—प्रचाराय मया रूपमिदं धृतम् ।।

सिद्ध—सिद्धान्त—पद्धति पूर्णनाथ, पृ0 13 ।

22— स्थापयित्वा च यो धर्मान् सज्जनान् अभिरक्षति ।

स्वात्मस्वरूप बोधेन गोरक्षोऽसौ निगद्यते ।।

वर्ध, पृ0 15 ।

23— सि0सि0स0, पृ0 69 ।

24— गोरक्ष सि0स0, पृ0 69 ।

गोपीनाथ कविराज ।।

25— योगीसम्प्रदायाविष्कृति, पृ0 12 ।

26— वही, पृ0 14 ।

27— नाथ सम्प्रदाय, पृ0 25 ।

28— योगिसम्प्रदायाविष्कृति, पृ0 14 ।

29— वही, पृ0 15 ।

30— दी वैदिक एज, पृ0 162 ।

31— वाल्मीकि रामायण, 1, 35—36 ।

32— महाभारत, 3.39. 1—2 ।

33— महाभारत, 1.67. 72—73 ।

34— भंडारकर जर्नल, 4, पृ0 165 ।

35— वही, पृ0 165—166 ।

36– वही, पृ0 1–2 ।

37– वही, पृ0 1–2 ।

38– नाथ सम्प्रदाय, 159 ।

39– शिव संहिता, पृ0 5 अ0 9.54 ।

40– गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ, पृ0 60 ।

41– सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, पृ0 30 ।

42– नाथ सम्प्रदाय, पृ0 103 ।

43– शिव संहिता, पृ0 12 1. 72–75 ।

44– पाटल संत साहित्य अंक, 1955 अंक 4, पृ0 92 ।

45– शिव संहिता, पृ0 14.1.82 ।

46– वही, पृ0 83 ।

47– गोरखबानी, पृ0 10 ।

48– शिव संहिता, पृ0 14.1.84 ।

49– वही, 1.85 ।

50– वही, 1.86 ।

नाथ सम्प्रदाय, पृ0 50 ।।

51– सिद्ध सिद्धान्त पद्धति पूर्णनाथ, पृ0 37 ।

52– गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह कविराज, पृ0 47–48 ।

53– हिन्दी विश्वकोष नगेन्द्र नाथ बसु भाग 2, पृ0 279 ।

54– रा शक्तिरिति विख्याता म शिवः परिकीर्तितः ।

शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म राम रामेति गीयते ।।

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ सं0, पृ0 162

गोपीनाथ कविराज सं0 पृ0 47–48 ।

55– वही, पृ0 163 ।

56– यस्यावतार कर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः ।

न यं विदन्ति तत्वेन तस्मै भगवते नमः ।।

भागवत 2.6.37 ।

57– वही, 2.6.38 ।

58– वही, 2.6.41 ।

59– गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ सं0 पृ0 242 ।

60– वही, पृ0 243 ।

61– सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, पृ0 67–68 ।

62– वही, पृ0 218 ।

63– महाभारत, वनपर्व 188 अध्याय, उद्योग पर्व 131 अध्याय, भीष्मपर्व 25 ।

गीता अध्याय 11 शान्ति पर्व, 50–52 अध्याय ।।

64– ऋग्वेद, 10.81.3 ।

65– अथर्व वेद, 9.7.25 ।

66– वही, 10.7.17 ।

67– वही, 11.8.31 ।

68– मुडंकोपनिषद् उ0 2.1.4 ।

69– ऐतरेव उपनिषद्, 1.1–4 ।

70– गोरखबानी, पृ0 15–38 ।

71— वही, पृ0 16 पद 17 ।

गीता, 10.7 ।।

72— गोरखबानी, पृ0 7 पद 17 ।

73— भारतीय दर्शन डॉ0 उपाध्याय, पृ0 367 ।

74— गोरखक्ष सिद्धान्त संग्रह गोपनीनाथ कविराज, पृ0 33,43,44 ।

75— वही, पृ0 45 ।

76— गोरखबानी, पृ0 94 ।

77— वही, पृ0 149 ।

78— वही, पृ0 152—153 ।

79— वही, पृ0 6 ।

80— वही, पृ0 103 ।

81— कौल ज्ञान निर्णय, पृ0 29. 9.8 ।

82— नाथ सिद्धान्त, पृ0 49 पद 1.5 ।

83— वही, पृ0 50 पद 6 ।

84— गोरखबानी, पृ0 66—67 ।

85— वही, पृ0 41—62 ।

86— नाथ सिद्धान्त, पृ0 107 ।

87— गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, पृ0 20 ।

88— नाथ सिद्धान्त, पृ0 122 ।

89— गोरखबानी, पृ0 100 ।

90— वही, पृ0 135—136 ।

91– वही, पृ0 148 ।

92– वही, पृ0 102 ।

93– श्री सिद्ध धीरज नाथ चरित्र, पृ0 3 श्लोक 8 ।

94– महायान, पृ0 17 ।

95– ललित विस्तर, पृ0 132 अध्याय 7 ।

96– वही, पृ0 136–137 ।

97– बुद्धचर्या, पृ0 86–89 ।

98– वही, पृ0 165 ।

99– वही, पृ0 130 ।

100– वही, पृ0 26 ।

101– ललित विस्तर, पृ0 251 ।

102– महापुराण जी0 1.10.5.14 ।

तृतीय अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– भण्डारकर जर्नल 4, पृ0 58 ।

2– वही, पृ0 59 ।

3– ए स्टडी आफ वैष्णविज्म के0 जी0 गोस्वामी 1956, पृ0 36 ।

4– हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 493 ।

5– पृथ्वीराज विजय, पृ0 200, 2.43 ।

6– भण्डारकर कलेक्टेड वर्क्स, पृ0 301 ।

7– दशावतार चरित्र मत्स्यावतार श्लोक संख्या 2, पृ0 1 ।

8– गीतगोविन्द, प्रथम सर्ग प्रथम प्रबन्ध ।

9– वही, पृ0 1–2 ।

10– प्रभावक चरित्र, पृ0 1 श्लोक 4 ।

11– पृथ्वीराज विजय, पृ0 161 ।

12– हिन्दी काव्य, पृ0 457 ।

13– नाथ सिद्धान्त, पृ0 107 पद 13 ।

14– धर्म पूजा विधान, पृ0 205 ।

15– वही, पृ0 206 ।

16– धर्मपुराण मयूर भट्ट, पृ0 37 ।

17– धर्मपूजा विधान, पृ0 206 ।

18– वही, पृ0 207 ।

19– पृथ्वीराज रासो नागरी प्राचारिणी सभा दूसरा एवं दशम समय ।

20– वही, सर्ग 45 छन्द 145 ।

21– वही, पृ0 218–233 ।

22– कबीर बीजक, पृ0 31 पद 8 ।

23– वही, पृ0 31 पद 8 ।

24– वही, पृ0 31 पद 8 ।

25– कबीर वचनावली, पृ0 13 ।

दस औतार निरंजन कहिये, सो अपना न कोई ।

यह तो अपनी करनी भोगे, कर्ता और ही कोई ।।

26– दस औतार कहां ते आये, किन के गढ़े करतार ।

तथा– दस औतार देखि मत भूलो ऐसे रूप घनेरे ।।

मलूकदास का बानी, पृ0 118 पद 77 ।

27– एक कहै औतार दस, एक कहै चौबीस ।

रज्जब सुमिरे सो धनी, जो सब ही के सीस ।।

रज्जब की बानी, पृ0 118 पद 77 ।

28– कहत दस औतार जग में, औतरे भाई ।

काल तेऊ झपटि लीने, बस नही कोई ।।

सुन्दर दास ग्रन्थावली, भाग 2 पृ0 298 पद 6 ।

29– वही, पृ0 1082–1083 ।

30– हिन्दी को मराठी सन्त साहित्य की देन भूमि का पृष्ठ 3 ।

31– वही, पृ0 45–46 ।

32– धर्मपुराण, पृ0 37 ।

33— विद्यापति खगेन्द्र नाथ मित्र, पृ0 132—133 ।

34— बुद्ध रूप धरि चिन्तले निरंजन ।

श्रीकृष्ण कीर्तन, पृ0 92 ।

35— हिन्दी साहित्य का इतिहास संवत् 2005, पृ0 168 ।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल एवं भागवत 10.40.17—22 ।।

36— सूरसागर, पृ0 304 पद 10.127 ।

37— भागवत 10.2.40 ।

38— परमेश्वर पुरूषोत्तम स्वामी यशुमति सुत कहलाया हैं ।

मच्छ कच्छ वराह औ वामन रामरूप दर्शाया है ।।

खम्भ फारि प्रकट नरहरि जग प्रह्लाद छुड़ाया है ।

परशुराम बुध निःकलंक हो भुव का भार मिटाया है ।।

परमानन्द कृष्ण मनमोहन चरण कमल चित लाया है ।

रागकल्पद्रुम जी0 2, पृ0 88 ।

39— तुलसी ग्रन्थावली खण्ड 2 विनय पत्रिका 404 पद 52 ।

40— भक्तमाल, रूप कला जी, पृ0 48 ।

दुइ वनचर, दुइ वारिचर, चार विप्र दो राउ ।

तुलसी दस यश गायकै, भवसागर तरि जाउ ।।

41— श्रीमद् भागवत दशम स्कन्ध सुबोधिनी 10.2.40 की व्याख्या ।

42— रामचन्द्रिका, केशव कौमुदी पूर्वार्द्ध, पृ0 360—361 ।

43— वही, पृ0 360—361 ।

44— रागकल्पद्रुम जी0 1. पृ0 679 ।

45– वाल्मीकि रामायण 1.16.25 ।

'वधाय देवशत्रुणाम्' ।।

महाभारत 1.64.54 ।

विष्णु पुराण 8.7.28 ।। भागवत 10.1.22 ।

46– वाल्मीकि रामायण 1.17. 7–22 ।

47– महाभारत आदि पर्व एव अशावतरण पर्व ।

48– पृथ्वीराज विजय, पृ0 240.6.29 ।

49– पृथ्वीराज रासो, पृ0 260 ।

50– वही, पृ0 296 ।

51– वही, पृ0 312 ।

52– परमाल रासो, पृ0 961 ।

53– वही, पृ0 236 ।

54– तब ब्रह्म धरनिहि समुझावा ।

अभय भई भरोस जिय आवा ।।

जिन लोकहि विरंचि गे देवन्ह इहै सिखाइ ।

वानर तनु धरि–धरि महि हरिपद सेवहु जाइ ।।

रामचरितमानस पृ0 96.187 ।

55– धेनु रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव विरंचि के द्वारा ।

सब मिलि गये जहां पुरूषोत्तम, जिहिं गति अगम अपारा ।।

सूरसागर 2009, पृ0 267 पद 10.4 ।

56– वही, पृ0 278 ।

57— वही, पृ0 256 ।

58— वही, पृ0 415 ।

59— वही, पृ0 819 ।

60— वही, पृ0 663 ।

61— नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 220 ।

62— वही, पृ0 221 ।

63— सूरसागर पद 2223 ।

64— भागवत 1.3 एवं 2.7 ।

65— विष्णु पुराण, 2.8.89—90 ।

66— अध्यात्म रामायण, 1.4 17—18 ।

67— शंकर दिग्विजय, पृ0 166 सर्ग 1 48.56 ।

68— वही, सर्ग 1 48.56 ।

69— वही, सर्ग 3.8 ।

70— सम्प्रदाय प्रदीपालोक, पृ0 48 ।

71— भक्त माल, पृ0 257—258 ।

72— वही, पृ0 261 ।

73— वही, पृ0 557 ।

74— सम्प्रदाय प्रदीप, पृ0 45 ।

75— वही, पृ0 1 ।

76— विवेक चूनामणि, पृ0 38 ।

77— सम्प्रदाय प्रदीपालोक, पृ0 68 ।

78– भक्तमाल, पृ0 290 ।

79– वही, पृ0 282 ।

80– सम्प्रदाय प्रदीपा लोक, पृ0 94 ।

81– भक्तभाल, पृ0 288 एवं 294 ।

82– सम्प्रदाय प्रदीपा लोक, पृ0 81 ।

83– वही, पृ0 59 ।

84– वही, पृ0 60 ।

85– वही, पृ0 110 ।

86– कुम्भनदास पद संग्रह, पृ0 39 पद संख्या 83 ।

87– नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 326 पद संख्या 9 ।

88– अष्टछाप संवत् 2006, पृ0 296 ।

89– कुम्भनदास पद संग्रह, पृ0 32 पद 62 ।

90– सोलहवी शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णवी कवि, पृ0 172 ।

91– चेतन्य चरितावली, पृ0 3 ।

92– मानमाधुरी, पृ0 8 ।

93– भक्तमाल, पृष्ठ 553–554 छन्द 72 ।

94– वही, पृ0 554 ।

95– चेतन्य चरितावली, पृ0 32 ।

96– त्रिपथगा, सितम्बर, 1956, पृ0 122 ।

97– हिन्दी अनुशीलन, वर्ष अंक 4, पृष्ठ 24 ।

चतुर्थ अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– कबीर ग्रन्थावली, पृ0 283 पद संख्या 65 ।

'इस देही को सिमरही देव'

दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ0 155 ।

पद 363 मलूकदास की बानी, पृ0 11 ।

2– ऋग्वेद 4.34.3 ।

3– वही, 10.90 ।

4– गीता, 6.46–47 ।

5– वही, 10 अध्याय ।

6– वही, 11.8 ।

7– संत रविदास और उनका काव्य, पृ0 113 पद 39 ।

त्रिगुण योनि अचेत सम्भव पाप पुण्य असोच ।

मानुषावतार दुर्लभ तिहूं संगति पोच ।।

8– कबीर ग्रन्थावली, पृ0 205 ।

9– कल्याण संत अंक, पृ0 116 । वर्ष 6 सं0 2 ।

10– दी रेलिजन आफ मेन, पृ0 59 ।

11– कबीर ग्रन्थावली, पृ0 273 ।

''संत को मति कोई निंदहु संत राम है एकौ'' ।

12– कबीर ग्रन्थावली, पृ0 44 साखी 5 ।

जेती देखों आतमा, तेता सालिगराम ।

साधू प्रतपि देव है, नहि पाथर सू काम ।।

13– गीता अनाशक्ति योग, पृ0 50.6 ।

14– जिही घटि राम रहे भरपूर, ताकि मैं चरनन की धूरि ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 128 पद 124 ।

15– सोई संत जि भावै राम, संत गोविन्द कै एकै काम ।

गुरू ग्रन्थ साहब, पृ0 867 ।

16– दादूदयाल की बानी भाग 1, पृ0 64 ।

17– मलूक सो माता सुंदरी, जहां भक्त औतार ।

और सकल बाँझै भई, जनमें खर कतवार ।।

मलूकदास की बानी, पृ0 35 ।

18– जहां राम तहं संत जन, जहां साधु तहं राम ।

दादू दुन्यूं एक है, अरस परस बिसराम ।।

दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ0 64–65 ।

19– सुन्दर जन हरि को भजे हरिजन को आधीन ।

पुत्र न जीवै मात बिन माता सुत सो लीन ।।

भाग 2, पृ0 680 ।

20– वही, पृ0 744 । साखी 26 ।

21– वही, पृ0 744 साखी 27 ।

22– वही, पृ0 747 साखी 43 ।

23– वही, पृ0 745 साखी 44 ।

24– वही, साखी 45 ।

25— साध की महिमा वेद न जानहि ।

जेता सुनहि तेता बखिआनहिं ।।

गुरू ग्रन्थ साहब पृ0 272 ।

26— वही, पृ0 272 ।

27— वही, पृ0 273 पद 6 ।

28— वही, पृ0 273 पद 7 ।

29— वही, पृ0 273 पद 6 ।

30— जिहि घरि साध न पूजिये हरि की सेवा नाहि ।

ते घर मरघट सारषे, भूत बसै तिन–माहि ।।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 53 साखी 3 ।

31— संत मंडल ठाकुर बिश्राम ।

नानक ओति पोति भगवानु ।

गुरू ग्रन्थ साहिब, 1146.4.24.37 ।

32— रज्जब जी की बानी, पृ0 73 अंक 31 साखी 3 ।

33— साधु जन उस देस का, कौ आया यहि संसार ।

दादू उस कूं पूछिये, प्रीतम के समाचार ।।

दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ0 166 साखी 98 ।

34— वही, भाग 1, पृ0 164 साखी 47 ।

35— सुंदर ग्रन्थावली भाग 2, पृ0 743 साखी 17 ।

36— पर उपकारी संत सब, आये यहि कलि माहिं ।

पिवै पिलावैं राम रस, आप सवारथ नाहिं ।।

दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ0 162 साखी 51 ।

37— वही, दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ0 168 साखी 116 ।

38— पलटू साहिब की बानी भाग 1, पृ0 15 ।

39— कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 125 ।

40— कबीर ग्रन्थावली, पृ0 106 पद 58 ।

41— कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई ।

हिन्दू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई ।।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 106.58 ।

42— वही, पृ0 164 ।

43— कठोपनिषद् 2.2.12 ।

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।।

44— वृहदारण्यकोपनिषद्, 3.7.3 ।

45— वही, 3.7.4—23 ।

46— रज्जब जी की बानी, पृ0 116 साखी 46 ।

47— हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप ।

निस बासुरिं सुख निध्य लहया, जब अंतरि प्रगटया आप ।।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 15 साखी 30 ।

कौन बिचारि करत हौ पूजा ।

आतम राम अवर नहिं दूजा ।।

वही, पृ0 131 पद 135 ।

48— ऐसो राम राइ अंतरजामी ।

जैसे दरपन माहिं बदन परबानी ।।

संत काव्य–नामदेव, पृ0 149 ।

49— दी वैष्णव उपनिषद्, पृ0 306.1.4 ।

50— कबीर ग्रन्थावली, पृ0 44 साखी 5 ।

51— संत सुधा सार की प्रस्तावना, पृ0 15 ।

52— दादू दयाल की बानी भाग 2, पृ0 46 ।

53— वही, भाग 2, पृ0 188 पद 441 ।

54— वही, पृ0 167 पद 392 ।

55— दास कबीर को ठाकुर ऐसो, भगत को सरन उबारे ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 202–203 पद 340 ।।

56— गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 1156 गुरू अर्जुन ।

57— कबीर ग्रन्थावली, पृ0 125 पद 117 ।

58— दादू दयाल की बानी, भाग 2 पृ0 27 पद 63 ।

59— हरि जननी मै बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा ।

सुत अपराध करे दिन केते, जननी के चित रहे न तेते ।।

कहे कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 123 पद 111 ।।

60— गुरू ग्रन्थ साहब, पृ0 95 ।

61— कबीर ग्रन्थावली, पृ0 106 पद 57 ।

62— संतकाव्य, पृ0 135 ।

63— कबीर, पृ0 16 ।

64— कबीर ग्रन्थावली, पृ0 216—218 पद 390 ।

65— गुरू ग्रनसाहब, पृ0 995 ।

66— वही, पृ0 1083 पद 6 ।

67— वही, पृ0 7 ।

68— है हरिभंजन को प्रबान ।

नीच पावै ऊंच पदवी, बाजते नीसान ।।

भजन को प्रताप ऐसो, तिरे जल पाखान ।

अधम चील अजाति गनिका, चढ़ै जात विमान ।।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 190 पद 301 ।

69— संतो देखत जग बौराना ।

आतम मारि पषानहि पूजे । उनमहं कहूँ न ग्याना ।।

हिंदू कहै मोहि राम पियारा । तुरक कहैं रहिमाना ।।

आपस मे दोउ लरिलरि मूये । मर्म न काहू जाना ।।

कबीर बीजक, पृ0 29—30 पद 4 ।

70— संत प्रह्लाद की पैज जिन राखी हरनाखुश नख विद्रयो ।।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 302 पद 129 ।

71— कल्याण संत वाणी अंक वर्ष 29 संख्या 1, पृ0 219 ।

72— सुन्दर भजि भगवंत को उधरे संत अनेक ।

सदा कसौटी सीस पर, तजी न अपनी टेक ।।

सुन्दर ग्रन्थावली, पृ0 680 साखी 44 ।

73— सबका कारण आदि नारायण । कारिज में औतार ।।

रज्जब कही विचारि कर, तामे फेर न सार ।।

रज्जब जी की बानी, पृ0 114 साखी 10 ।

74— वही, पृ0 115 साखी 24 ।

75— वही, पृ0 115 साखी 23 ।

76— वही, पृ0 116 साखी 46 ।

77— विष्णु पुराण 1.17.15, 7.17. 77—78 ।

78— खम्भा में प्रगटयों गिलारि, हरनाकस मारयो नख बिदारि ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 214 पद 379 ।

79— गुरू ग्रन्थसाहब, पृ0 1105 ।

80— वही, पृ0 617 ।

81— रैदास और उनका काव्य, पृ0 138 पद 17 ।

82— छाकि परयो आतम मतिपारा, पीवत राम रस करत विचारा ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 111 ।

83— आतम माहिं जब भये अनंदा, मिटि गये तिमिर प्रगटे रघुचंदा ।

रामानन्द, पृ0 11 ।

84— ना दसरथ घरि औतरि आवा ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 243 ।।

85— दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ0 129 साखी 140 ।

अध्यात्म रामायण 1.1. 41—43 ।

86— कबीर बीजक, पृ0 18 ।

87— सिरजन हार न ब्याही सीता, जल पषान नहीं बंधा ।

कबीर बीजक, पृ0 31 पद 8 ।।

88— वही, पृ0 35 पद 18 ।

89— मुये कृष्ण मुये करतारा एक न मुआ जो सिरजन हारा ।

कबीर बीजक, पृ0 45 पद 45 ।।

90— गुरू ग्रन्थसाहब, पृ0 943 ।

91— संत गोविन्द के एकै काम ।

वही, पृ0 867 पद 5 ।।

92— वही, पृ0 988 ।

93— वही, 988—नामदेव ।

94— गुरू गोविन्द तो एक है, दूजा यह आकार ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ0 2 साखी 26 ।।

95— दादू काढ़े काल मुक अंधे लोचन देइ ।

दादू ऐसा गुरू मिल्या जीव ब्रह्म कर लेइ ।।

दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ0 1 साखी 7 ।

96— संत सुदासार, पृ0 212 पद 5 ।

97— हमरे गुरू की अद्भुत लीला, न कछू खाय न पीवै ।

ना वह सोवै न वह जागै, ना वह मरे न जीवै ।।

बिन तरूवर फलफूल लगावे, सो तो वा का चेला ।

छिन में रूप अनेक धरत है, छिन में रहे अकेला ।।

मलूकदास की बानी, पृ0 102 शब्द 2 ।

98— सुन्दर दास ग्रन्थावली, भाग 1 पृ0 217 ।

99— धर्मदास की शब्दावली, पृ0 3 शब्द 9 ।

100— धन हो धन साहेब बलिहारी ।

काशी में हांसी करवाई, गनिका संग लगाई ।।

हरि के पग धरत उबारे, अपने चरन जल ढ़ारी ।

मगहर में एक लीला कीन्हीं, हिन्दू तुरूक व्रतधारी ।।

कबर खोदाइ के परचा दीन्हीं, मिटि गयो झगरा भारी ।

धरम दास शब्दावली, पृ0 4 शब्द 10 ।

पंचम अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– तिहि कुल में ईश्वर अवतरे, अंश कला विभूति करि भरे ।

नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 199 ।

2– यस्यानन्तावतारश्च कला-अंश-विभूतयः ।

आवेश-विष्णु- ब्रह्मेशः परब्रह्मस्वरूप भः ।।

वैष्णव धर्म रत्नाकर, पृ0 125 ।

3– अंस कला अवतार जेते सेवत हैं ताहि ।

ऐसे वृंदाविपिन को मन वचके अवगाहि ।।

ध्रुव दास ग्रन्थावली, वृन्दावन शतक, पृ0 5 ।

4– राधा वल्लभ मूल फल, और फूल दल डार ।

व्यास इनहिं ते होत है, अंस कला अवतार ।।

भक्त कवि व्यास, पृ0 414 ।

5– हमतो श्री विट्‌ठलनाथ ही जाने ।

कोऊ भजो अंस कला अवतारि कोऊ अक्षर क्षर थाने ।।

राग कल्पद्रुम भाग–2 पृ0 179 ।

6– रसिक माल, पृ0 51 ।

7– गीता शांकर भाष्य पृ0 14 'अंशेन कृष्णः किल सम्बभूव'

8– बाल्मीकि रामायण 1, 15, 26 महाभारत 2,36, 13–18, गीता 4,8, मा' 11, 4,20 ।

9— एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकरूपं बहुधा यः करोति ।

कठोपनिषद 2,2, 9—12 ।

10— संभू विरंचि विष्णु भगवाना, उपजहि जासु अंस ते नाना ।

रामचरित मानस ना0प्र0सं0पृ0— 76 ।

11— विधि विष्णु शंभु रवि ससि उदार सब पांवकाहि अंशावतार ।

रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ0 374 ।

12— ऋग्वेद 10, 90, 3 ।

13— छान्दोग्योपनिषद् 2, 12, 6।

14— महाभारत 1,67, 110—113 ।

15— महाभारत 1,67,116 और 1.67, 151 ।

16— वाल्मीकि रामायण 1, 17 और 6,30, 20—33 ।

17— वही 1,15, 30—31 ।

18— रामचरित मानस, नागरी प्रचारिणी सभा पृ0 97 ।

19— विष्णु पुराण 5,1,62 ।

20— वही, 1, 9, 53 ।

21— कलाः सर्वे हरेरेव' ।

भागवत 1,3,27 ।

22— वही, एते चांश-कलाःपुंसः भागवत 1,3,28 ।

23— ब्रहदारण्यकोपनिषद् 1,5,14 ।

24— जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः

सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया' ।

भागवत 1,3,1 ।

25– वही 1,3,5 और 2,6,41 ।

26– बीस कमल परगत देखियत है राधा नन्द किशोर ।

सोरह कला संपूरन गोह्यौ, ब्रज अरुनोदय भोर ।

सूर-सागर पृ0 685।

27– रामचरित मानस बालकाण्ड ।

28– गीता 10, 19 ।

29– वही, शांकर भाष्य योगैश्वर्य सामर्थ्यं सर्वज्ञत्वं योगजं योग उच्चते ।

30– गीता 10, 7,रामानुजाचार्य भाष्य ।

31– गीताडॉ0 राधाकृष्णन्, पृ0 158 ।

32– ऋग्वेद 10, 90 ।

33– विष्णु पुराण1,22,16–22 ।

34– भागवत 11,16,22 ।

35– भागवत 11,16,39।

36– तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं हृस्त्यागः सौभगं मनः ।

वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ।।

भागवत 11,16, 40 ।

37– गीता 10,40,41 ।

38– वही 10, 40, 42–43 ।

39– विष्णु पुराण एवं महाभाष्य 10, 1 ।

40– भागवत 1,3,27 ।

41– भागवत सुबोधिनी भाष्य 1.3.27 ।

42— चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ0 15 ।

43— भक्तमाल पृ0 391, छ0 49 ।

44— एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

भागवत 3,28 ।

45— अतएवाऽवतारो यं पूर्णभावोमया धृतः ।

आनन्द रामायण राज्य उत्तरकाण्ड सर्ग 20, 67 तथा 20, 82 ।

46— वासुदेव यों कहत वेद में हैं पूरण अवतार ।

प्रकट भए दशरथ ग्रह पूरण चर्तुव्यूह अवतार ।

सूरसारावली, पृ0 6 ।

47— परमात्मा ब्रह्म नररूपा । हाइहि रघुकुल भूषन भूपा ।

रामचरित-मानस नागरी प्रचारिणी सभा पृ0 519 ।

48— जान्यौ अवतार भयौ पुरुष-पुरान को ।

तुलसी-ग्रन्थावली गीतावली पृ0 264 ।

49— पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण ।

बतावै न बतावै और उक्ति को ।

राम-चन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ0 3,3 ।

50— सूरन के सूर एई पूरन हैं रामचन्द्र मारे अन्धकार अरु कंदरा पठाए हैं ।

हनुमन्नाटक, पृ0 125–126 ।

51— देहि धरि प्रभु सूर विलसत, ब्रह्म पूरन सार ।

सूरसागर पृ0 1201 पद 3454 ।

52— गोविन्द स्वामी पद संग्रह पृ0 2 पद 2 ।

53— सूर सारावली पृ0 13 पद 383 ।

54— वही, पृ0 13, पद 364 ।

55— कुंभनदास पद संग्रह पृ0 31 पद 59 ।

56— भागवत 55, 17, 14 ।

57— वही, 10, 40, 7 ।

58— रामोत्तर तापनीयोपनिषद् पृ0 328, 2, 5–8 ।

59— सूरसारावली, पृ0 14, 158–159 ।

60— चौबीस प्रथम हरिबपु धरे, चतुर्व्यूह कलियुग प्रगट ।

भक्तमाल पृ0 257–158 ।

61— भगत भूमि भूसुर, सुरभि सुर-हित लागि कृपाल ।

करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ।।

तुलसी ग्रन्थावली, दोहावली पृ0 95 दोहा क्रमांक 124 ।

62— अस्य प्रयोजनं केवलं लीला तत्वत्रय पृ0 89 ।

63— वही, पृ0 90 ।

64— भागवत पृ0 1 श्लोक 1 ।

65— महाभारत 3,12,54 ।

66— निर्गुन सगुन रूप धरि आए ।

सूरसागर, पृ0 388 पद 1004 ।

67— परम कुसल कोविद लीला-नट, मुसकनि मन हर लेत ।

सूरसागर, पृ0 313, पद 772 एवं पृ0 389, पद 1006।

68— वही, पृ0 13 ।

69— अंश कला अवतार बहुत विधि राम कृष्ण अवतारी ।

सदा बिहार करत ब्रज मंडल नंद सदन सुखकारी ।।

सुरसारावली, पृ0 13 ।

70— नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 38 दोहा क्रमांक—8 ।

71— लीला सगुन जो कहहिं बखानी, सोइ स्वच्छता करै मल हानी ।

रामचरित मानस, पृ0 23 ।

72— कहौ सुनहु अब रघुपति लीला ।

वही पृ0 59 एवं पृ0 66 ।

73— व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।

भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ।

वही पृ0 105 ।

74— नट इव कपट चरित कर नाना, सदा स्वतंत्र एक भगवाना ।

वही पृ0 454 ।

75— महाभारत 1,67,151 एवं 1, 67 ।

76— बाल्मीकि रामायण 2,60,13 ।

77— विष्णु पुराण 1,8,35 ।

78— वही 1,9,141 ।

79— राधा हरि आधा आधा तनु, एकै है द्वै ब्रज में अवतरि ।

सूर श्याम रस भरी उमंगि अंग, वह छवि देखि रह्यों रति पति ।।

सूरसागर 843, पद 2311 ।

80— राधा कान्ह कान्ह राधा ब्रज है रह्यो अतिहि लाजति ।

वही, 848, पद 2327 ।

81— जा कारन बैकुण्ठ विसारत निज स्थल मन मैं नहि भावत ।

राधा कान्ह देह धरि पुनि जा सुख कौ वृन्दावन आवत ।।

सूरसागर 994, पद 2803 ।

82— जनम जनम जिनके सदा, हम चाकर निशि भोर ।

त्रिभुवन पोषण सुधाकर, ठाकुर जुगुल किशोर ।।

युगल शतक पृ0 3 पद 7 ।

83— वही, पृ0 4 पद 10 ।

84— बहुत रूप धरि हरि प्रिया, मन रंजन रस हेत ।

मन्मथ मन मोहन मिथुन, मण्डल मधि छवि देत ।।

वही पृ0 8 पद 23 ।

85— जोरी गौरी श्याम की, थोरी रचन बनाय ।

प्रतिबिम्बित तन परस्पर, श्रीभट उलट लखाय ।।

वही पृ0 22, पद 54 ।

86— सदा सनातन एक रस जोरी सतचित् आनन्दमयी स्वरूप ।

महावाणी, पृ0 173 पद संख्या 4 ।।

87— वही, पृ0 174 पद 4 ।

88— माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम घन-दामिनी जैसे ।

केलिमाल, पृ0 6 पद सं0 1 ।

89— वही, पृ0 13 पद 26 ।

90— श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन ।

संग ते होत नहीं कहुँ न्यारे, भए रहत अति लीन ।।

सूरसागर, पृ0 626 पद 1678 ।

91— वही, पृ0 994 पद सं0 2803 ।

92— नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 40 पद संख्या 26 ।

93— वृन्दावन हरि यहि विधि क्रीड़त राधिका संग ।

सूरसारावली, पृ0 38 ।।

94— युगल शतक, पृ0 8,23 ।

95— त्रिगुन रहित निज रूप जो, लख्यौ न ताको भेव ।

मन बानी तै अगम जो, दिखराबहु सो देव ।।

सूरसागर, पृ0 663 पद 1703 ।

96— नरसिंह पुराण, पृ0 30 ।

97— काढ़ि कृपान कहूँ काल कराल विलोकिन भागे ।

राम कंह सब ठाऊँ है खंभ में हाँ सुनि हांक नृकेहरी जागे ।।

वैरी विदारि भये विकराल कहे प्रह्लादहि के अनुरागे ।

प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तवते सब पाहन पूजन लागे ।।

तुलसी-ग्रन्थावली कवितावली, पृ0 193,127 ।

98— भक्तमाल, रूपकला पृ0 199 ।

99— कल्याण श्री कृष्णांक, वर्ष 6, पृ0 47 ।

100— तत्वत्रय, पृ0 118 ।

101— वैष्णवमताब्ज भाष्कर, पृ0 117 ।

102— वही, पृ0 118 ।

103— भागवत सम्प्रदाय, पृ0 263 ।

104— उभयबीच सिय सोहइ कैसी ।

ब्रह्मजीव बिच माया जैसी ।।

रामचरित मानस, पृ0 330 ।

रूप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं ।

मुनि वेष किये किधौं ब्रह्म जीव माय हैं ।।

तुलसी ग्रन्थावली, गीतावली, पृ0 282 ।

105— रामाष्टयाम, पृ0 3 दोहा क्रमांक 4 ।

106— वही, पृ0 3 दोहा क्रमांक 9 ।

107— भक्त कवि व्यास, पृ0 58 ।

108— अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ0 513 ।

109— वही, पृ0 514 ।

110— गोवर्धन नाथ की प्राकट्य वार्ता, पृ0 1 ।

111— भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरूचतुर नाम वपु एक ।

भक्त माल, पृ0 37 ।

112— कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ ।

तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष-बाण लो हाथ ।।

अष्टछाप कंठमणि शास्त्री, पृ0 579 ।

षष्ठ अध्याय

पाद–टिप्पणी

1– भागवत 10, 2, 40 ।

2– मध्यकालीन भारतीय संस्कृति 1951 संस्करण, पृ0 13 ।

3– सूरदास सूरसारावली पृ0 3–11, सूरसागर पृ0 125–127, पद 378 ।

4– एक कहै अवतार दस, एक कहै चौबीस, रज्जब जी की बानी, पृ0 118 ।

5– सूरसागर, पृ0 126, पद 378 ।

6– राग कल्पद्रुम, पृ0 519 ।

7– पृथ्वीराज रासो, दूसरा समय ।

8– सुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्यौ, सदा ही भक्त संकट निवारयौ ।

चतुरमुख कह्यो संख असुर स्तुति लै गयो, सत्यव्रत कह्यौ परलै दिखायौ।।

भक्त वत्सल, कृपाकरनख असरनसरन, मत्स्य को रूप तब धारि आयौ ।

सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, पद 442 ।

9– वारिचर–वपुषधर भक्त–निस्तार पर, धरनि कृत नाव महिमाति गुर्वी ।

तुलसी ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, पृ0 404 ।

10– अवतार लीला, पृ0 31, मीनावतार ।

11– पृथ्वीराज रासो, पृ0 193 ।

12– ब्रह्मा हरि पद ध्यान लगायौ, जब हरि बपु बराह धरि आयौ ।

ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौ ल्यायौ, सूरदास त्यौंही सुक गायौ ।

सुरसागर, पद 391 ।

13– वही, पद 392 ।

सूर सारावली, पृ0 1, 18 ।

14– तुलसी ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, पृ0 404, पद 52 ।

राम चन्द्रिका, पृ0 360–361 ।

15– पृथ्वीराज रासो, पृ0 189–191 दूसरा समय ।

धरि कच्छप को रूप, भूप दानव संहारे ।

16– सूरसागर, पृ0 172, पद 434 ।

17– सूर अरु असुर मथन कीन्हों निधि चौदह रत्न विकार ।

पर्वत पीठ धरेउ हरि नीके लियो कूर्म अवतार ।

सूरसारावली पृ0 4 ।

18– कमठ, अति विकट तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत, मंदर कंडु सुख मुरारी ।

तुलसी-ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, पृ0 40, पद 52 ।

19– पृथ्वीराज रासो, पृ0 202, दूसरा समय ।

20– सूरसागर, पृ0 162, पद 421 ।

21– कटि/तब खंभ भयौ है फारि विकसे हरि नरहरि वपु धारि ।

सूर सागर, पृ0 164, पद 421 ।

22– वही, पृ0 165, पद 421 ।

23– वही, पृ0 165, पद 421 ।

24– वही, पृ0 165, पद 421 ।

25– वही, पृ0 167, पद 424 ।

सूरसारावली, पृ0 5, 132 ।

26— अतुल मृगराज वपु धरित, विच्छरित अरि, भक्त प्रह्लाद अह्लाद कर्ता ।

तुलसी ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, पद 52 ।

27— राम चन्द्रिका पूर्वार्द्ध, पृ0 360—361 ।

28— पृथ्वीराज रासो, पृ0 202 दूसरा समय ।

29— हरि हित उन पुनि बहुतप करयौ, सूर श्याम वामन बपुधरयो ।

सूरसागर, पृ0 176, पद 439 ।

30— गोविन्द स्वामी पद संग्रह, 49 ।

31— छलन बलि कपट बठु रूप वामन ब्रह्म, भुवन पजंत पद तीन करन ।

तुलसी ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, 52 ।

32— दोहावली, दोहा क्रमांक—394—396 ।

33— दी वैदिक एज, सं0 1951, पृ0 289 ।

34— जमदग्नि सुतन दुज धर दियन, परसराम अवतार धर ।

क्षत्रियन मारि वृंदह वरिय, करी टूक अज सहस कर ।

पृथ्वीराज रासो, पृ0 205, दूसरा समय ।

35— सूरसागर, पृ0 190, पद 457 एवं सूरसारावली, पृ0 11 ।

36— छत्रियोधीस—करि—विकरि—वर केसरी, परसुधर— विप्र—ससि जलद रूपं ।

तुलसी-ग्रन्थावली, विनय पत्रिका, पद 52 ।

37— राम चन्द्रिकाख केशव कौमुदी पूर्वार्द्ध, पृ0 360—361 ।

38— ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, विंटरनित्य, पृ0 508—509 ।

39— वही, पृ0 496 ।

40— महाभारत 12, 339, 77—90 ।

41– विष्णुना सदृशोवीर्ये ।

वाल्मीकि रामायण 1, 18 ।

42– वही 1, 15, 31 ।

43– कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पृ0 65 ।

44– राम कथा, वुल्के, पृ0 146 ।

45– कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पृ0 66 ।

46– हिस्ट्री ऑफ तिरुपति, पृ0 158 एवं पृ0 169।

47– डिवाइन विज्डम ऑफ द्रविड़ सेन्टस, पृ0 154 ।

48– हिस्ट्री ऑफ तिरुपति, भाग –1, पृ0 301 ।

49– वही, पृ0 154 ।

50– वही, पृ0 308 ।

51– रामपूर्व-तापनीय उपनिषद् 8–10 ।

52– अत्र, रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशः ।

सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ।।

प्रतिमा नाटक, मोतीलाल बनारसी दास संस्करण, पृ0 106, अंक–4

श्लोक सं0–4 ।

53– दी क्लासिकल एज, पृ0 416–417 ।

54– हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 121, संस्करण 2005 ।

55– तेहि अवसर भंजन महि भारा । हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा ।

रामचरित मानस, पृ0 30 ।

56— वधाय देव शत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ।

एव मुक्तस्तु देवेशो विष्णुः त्रिदश पुंगव ।।

वाल्मीकि रामायण 1,15,26 ।

57— अध्यात्म रामायण 1,2,24 ।

58— भगत भूमि, भूसुर, सुरभि, सुरहित लागि कृपाल ।

करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जंजाल ।।

तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड—1, पृ0 95 , दोहा क्रमांक—113 ।

59— रामचरित मानस, पृ0 31 ।

60— एतास्मिन्नन्तरे विष्णुरूपायतो महाश्रुतिः ।

शंख चक्र गदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ।।

वाल्मीकि रामायण 1,15,16 ।

61— अध्यात्म रामायण 1,2,7 ।

62— रामचरित मानस, पृ0 74 ।

63— प्रथम सो कारन कहहु विचारी, निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी ।

वही, प10 61 ।

64— वही, पृ0 63 ।

65 वही, पृ0 105 ।

66— नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ।।

रामचरित मानस, पृ0 454 ।

67— वही, पृ0 531—572 ।

68— देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखण्ड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।।

वही, पृ0 103 ।

69— वही, पृ0 103 ।

70— नारि विलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप ।

जनु सोहत श्रृंगार धरि मूरति परम अनूप ।।

वही, पृ0 119 ।

71— वही, पृ0 513 ।

72— वही, पृ0 513 ।

73— प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा ।

वही, पृ0 534—535 ।

74— ऋग्वेद 1/22/16, 18, 19, 21 ।

75— तुलसी ग्रन्थावली, पृ0 95, दोहा क्रमांक—123 ।

76— वाल्मीकि रामायण 1/15/25 ।

77— असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।

जगविस्तारहि विषद जस राम जन्म कर हेतु ।

रामचरित मानस, पृ0 99 ।

78— गीता 4/7, 8 ।

जब जब होइ धरम की हानि, बाढहिं असुर अधम अभिमानी ।

करहिं अनीति जाइ नहि बरनी, सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ।।

तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।

रामचरित मानस, पृ0 66 ।

79— वही, पृ0 95 एवं पृ0 11।

80— राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक ते एका ।।

रामचरित मानस, पृ0 66 ।

81— कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना विधि करहीं ।।

वही पृ0 74 ।

82— तुलसी ग्रन्थावली, पृ0 94 दोहा क्रमांक—113 ।

83— वही दोहा क्रमांक—116 ।

84— वही दोहा क्रमांक—115 ।

85— रामचरित मानस, दोहा क्रमांक—50 ।

86— वही, पृ0 76 ।

87— वही, पृ0 103 ।

88— वही, पृ0 121 ।

89— वही, पृ0 122 ।

90— सकल अमानुष करमु तुम्हारे ।

वही, पृ0 177 ।

91— धर्महेतु अवतरेउ गोसाई ।

वही, पृ0 366 ।

92— जेही बली बांधि सहस भुजमारा ।

सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ।।

वही, पृ0 416 ।

93— वही, पृ0 454 ।

94— वही, पृ0 500 ।

95— वही, पृ0 500 ।

96— रागकल्पद्रुम, पृ0 531 पद सं0 6 ।

97— वही, पृ0 548 पद सं0 14 ।

98— रामाष्टयाम, पृ0 1 दोहा, 3 ।

99— वही, पृ0 1 दोहा क्रमांक 4 ।

100— वही, दोहा क्रमांक 5 ।

101— वही, पृ0 47 दोहा क्रमांक 58 ।

102— वही, पृ0 48 ।

103— पूरण पुराण अरू पुरूष पुराण परिपूरण ।

रामचन्द्रिका, पृ0 93 दोहा क्रमांक 3 ।

104— वही, पृ0 7,17,

105— वही, पृ0 76 ।

106— वही, पृ0 176,15 ।

107— वही, पृ0 319,15 ।

108— वही, पृ0 374,54 ।

109— वही, पृ0 374,55 ।

110— जाके रूप न रेख गुण, जानत बेद न गाथ ।

रंगमहल रघुनाथ जे, राजश्री के साथ ।।

वही, पृ0 133,45 ।

111— तेज पुंज रूरौ, चंद मुरौ न समान जाके, ।

पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरूष कौ ।।

कवित्त रत्नाकर, पृ0 76 ।

112– वही, पृ0 18 तरंग 55 ।

113– वही, पृ0 75–76 चाथी तरंग ।

114– वही, पृ0 94–95 ।

115– वही, पृ0 97 पांचवी तरंग 1 ।

116– इण्डिया ऐेज नोन टू पाणिनि, पृ0 358 ।

117– वही, पृ0 359 ।

118– अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग दो, पृ0 404 ।

119– सूरसागर, पृ0 297 पद सं0 622 ।

120– सूरसारावली, पृ0 1 पद संख्या 1 ।

121– वही, पृ0 1 पद 1 ।

122– सूरसागर, पद 633 ।

123– सूरसागर, पद संख्या 704 ।

124– सूरसागर, पद संख्या 870 ।

125– वही, पद 1386 ।

126– वही, पद संख्या 745 ।

127– सूरसारावली, पृ0 2 पद 35–36 ।

128– नन्ददास ग्रन्थावली भ्रमर गीत, पृ0 180,181 ।

129– कुम्भन दास पद संग्रह, पृ0 15 पद सं0 14 ।

130– सूरसागर, पद सं0 621 ।

131– वही, पद सं0 वही ।

132– अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग 2, पृ0 422 ।

133– वही, पृ0 412 ।

134– नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 131 ।

135– सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावै ।

जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सु वेद बतावै ।।

नारद से सुक व्यास रटे, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै ।

ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछपै नाच नचावै ।।

रसखान कल्याण 29, पृ0 340 में संकलित ।

136– बृज माधुरी सार संवत् 2003 पृ0 141 पद 7 ।

137– मीरा बृहत् पद संग्रह पृ0 160 पद 254 ।

138– सूरसागर, पृ0 305 पद 747 ।

139– वही, पृ0 315 पद 777 ।

140– वही, पृ0 576 पद 1533 ।

141– वही, पृ0 942–943 पद 3635 ।

142– नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 226 ।

143– रसखान प्रेम वाटिका, पृ0 824 ।

144– वही, पृ0 11–12 ।

145– द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ।

सुदामा चरित, पृ0 14 ।।

146– कल्याण सन्तवाणी अंक, पृ0 289 ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

संदर्भ–ग्रन्थ विवरणिका

हिन्दी ग्रन्थ

1— अष्टछाप — सम्पादक कंठ मणि शास्त्री

2— अष्टछाप — सम्पदाक प्रभु दयाल मित्तल

3— अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय — डॉ0 दीन दयाल गुप्त

4— उत्तरी भारत की परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी

5— कबीर ग्रन्थावली — सम्पादक श्याम सुन्दर दास

6— कबीर वचनावली — सम्पादक अयोध्या सिंह उपाध्याय

7— कबीर बीजक — सम्पादक हंस दास शास्त्री

8— कबीर सागर — सम्पादक युगलानन्द

9— कबीर आचार्य — हजारी प्रसाद द्विवेदी

10— कवित्र रत्नाकर — सेनापति उमाशंकर शुक्ल

11— कुम्भन दास पद संग्रह — सम्पादक ब्रज भूषण शर्मा

12— गीता रहस्य — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

13— गुप्त साम्राज्य का इतिहास — वासुदेव उपाध्य

14— गुरू ग्रन्थ साहब — अमृतसर

15— गोरखबानी — सम्पादक डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

16— गोविन्द स्वामी पद संग्रह — सम्पादक श्री ब्रज भूषण शर्मा

17— घनानन्द ग्रन्थावली — सम्पादक विश्व नाथ प्रसाद मिश्र

18– चारों युगों में योगी राज – सम्पादक शंकर नाथ योगी

19– चैतन्य चरितामृत – श्री राधा चरण गोस्वामी

20– चौरासी वैष्णव की वार्ता – सम्पादक द्वारिका दास

21– छीत स्वामी पदसंग्रह – सम्पादक ब्रज भूषण शर्मा

22– जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल

23– जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक माता प्रसाद गुप्त

24– जैन साहित्य का इतिहास – नाथू राम प्रेमी

25– तामिल और उसका साहित्य – पूर्ण सोम सुन्दरम्

26– तुलसी ग्रन्थावली – सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल

27– दादू दयाल की बानी – इलाहाबाद

28– दो सौ बावन की वैष्णव की वार्ता – बम्बई

29– धरमदास की शब्दावली – इलाहाबाद

30– ध्रुवदास ग्रन्थावली – सम्पादक रामकृष्ण वर्मा

31– नन्ददास ग्रन्थावली – सम्पादक ब्रजरत्नदास

32– नाथ सम्प्रदाय – डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

33– नाथ सिद्धों की बानियां – डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

34– पद्मावत – डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल

35– पृथ्वीराज रासों – श्याम सुन्दर दास

36– परमाल रासों – सम्पादक श्याम सुन्दर दास

37– प्रेमवाटिका – रसखान सम्पादक किशोरी लाल गोस्वामी

38– बुद्ध चरिया – सम्पादक राहुल सांकृत्यायन

39– बौद्ध धर्म – पं0 बलदेव उपाध्याय

40– बृज माधुरीसार – सं0 वियोगी हरी

41– भक्त कवि व्यास – वासुदेव गोस्वामी

42– भक्त माल – नाभादास, टीरूपकला

43– भागवत सम्प्रदाय – पं0 बलदेव उपाध्याय

44– मध्यकालीन धर्म साधना – डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

45– मलूकदास की बानी – प्रयाग

46– योगी सम्प्रदायाविस्कृति – भद्रनाथ योगी

47– रज्जब जी की बानी – बम्बई

48– रामचरितमानस – शम्भू नारायण चोबे

49– रामचरितमानस – गीता प्रेस गोरखपुर

50– रामचन्द्रिका केशव कौमुदी – सं0 लाला भगवानदीन

51– तुलसी ग्रन्थावली – नागरी प्रचारणी सभा

52– रामाष्टयाम – नाभादास

53– रामकथा – कामिल बुल्के

54– रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना – भुवनेश्वर मिश्र मधुप

55– विद्यापति – सं0 खगेन्द्र नाथ मिश्र

56– वैदिक साहित्य – रामगोविन्द त्रिवेदी

57– वैदिक इन्डेक्स – मैक्समूलर, अनु0 रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

58— वैदिक साहित्य और संस्कृति — बलदेव उपाध्याय

59— वैदिक माइथालाजी — रामकुमार राय

60— चौखम्बा विद्याभवन — वाराणसी

61— मीरा वृहत् पद संग्रह — सं0 पदमावती

62— संत दादू दयाल की बानी — सं0 चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी

63— संत रविदास और उनका काव्य — स्वामी रामानन्द

64— संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय

65— सुदामा चरित्र — नरोत्तमदास

66— सूरसाहित्य — डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

67— सूरसागर — सम्पादक नन्ददुलारे बाजपेयी

68— सूरसारावली — सम्पादक राधा कृष्ण दास

69— सूरसारावली — सं0 प्रभु दयाल मितल

70— हनुमन्नाटक — हदय राम

71— हिन्दी साहित्य — डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

72— हिन्दी साहित्य का इतिहास — राम चन्द्र शुक्ल

73— हिन्दी को मराठी सन्तों की देन — आचार्य विनय मोहन शर्मा

74— हिन्दी साहित्य कोश — धीरेन्द्र वर्मा

75— हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय — सं0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

76— हिन्दी सूफी कवी — सरला शुक्ल

संस्कृत ग्रन्थ

1— ऋग्वेद संहिता — सातवलेकर संस्करण

2— यजुर्वेद संहिता — सातवलेकर संस्करण

3— अथर्ववेद संहिता — आनन्दाश्रम सीरीज़

4— शतपथ ब्रह्मण — आनन्दाश्रम सीरीज़

5— ऐतरेय उपनिषद् — गीता प्रेस

6— छान्दोग्य उपनिषद् — गीता प्रेस

7— कठोपनिषद् — गीता प्रेस

8— भागवत महापुराण — गीता प्रेस

9— विष्णु पुराण — गीता प्रेस

10— अग्निपुराण — गीता प्रेस

11— वाल्मीकि रामायण — गीता प्रेस

12— आनन्द रामायण — वेंकटेश्वर प्रेस

13— अध्यात्म रामायण — वही

14— देवी भागवत — गीता प्रेस

15— ब्रह्म वैवर्त पुराण — गीता प्रेस

16— महाभारत — गीता प्रेस

17— मत्स्य पुराण — गीता प्रेस

18— कल्कि पुराण — बम्बई ।

19— कौल ज्ञान निर्णय — सं० प्रबोधचन्द्र बागची

20— गीता — गीता प्रेस गोरखपुर

21— गीता शांकर भाष्य — गोरखपुर

22— गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह — पूर्णनाथ

23— गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह — गोपी नाथ कविराज

24— प्रतिमानाटक — चौखम्बा संस्करण

25— पृथ्वीराज विजय — कलकत्ता

26— बुद्धचरितम् — अश्वघोष चौखम्बा संस्करण

27— लघुभागवतामृत — रूप गोस्वामी

28— शंकर दिगग्विजय — बलदेव उपाध्याय

29— सातत्व तंत्र — चौखम्बा सीरीज़

30— सद्धर्म पुंडरीक — पीटर्सवर्ग

31— सिद्ध सिद्धान्त पद्धति — पूर्ण नाथ संस्करण

32— सिद्ध सिद्धान्त पद्धति — गोपी नाथ संस्करण

33— हिस्ट्री ऑफ तिरूपति — एस0के0 आयंगार

34— हिम्स आफ दी आल्वार्स — जे0एस0एम0 हूपर

35— हिन्दी विश्वकोष — नगेन्द्र नाथ बसु

36— धर्मपुराण — मयूरभट्ट

37— धर्मपूजा विधान — रमाई पंडित

38— चैतन्य चरिता अमृत — कृष्णदास कविराज

पत्रिकायें

1–	कल्याण	– गीता प्रेस गोरखपुर उपनिषदांक, संतवाणी अंक, भक्त चरितांक, श्रीकृष्णांक इत्यादि ।
2–	त्रिपथगा	– लखनऊ
3–	नागरी प्रचारणी पत्रिका	– काशी
4–	भारती	– बम्बई
5–	पाटल	– पटना
6–	इण्डियन ऐन्टीक्वेरी	– बम्बई
7–	न्यू इण्डियन ऐन्टीक्वेरी	– बम्बई
8–	जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल	– कलकत्ता, बंगाल
9–	जर्नल ऑफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट	– पूना
10–	जर्नल ऑफ गंगानाथझा रिसर्च इन्स्टीट्यूट	– इलाहाबाद